कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्र कृत

# कुमारपाल चरितम्

( हिन्दी शब्दार्थ अन्वयार्थ समन्वितम् )

हिन्दी शब्दान्वय कर्ता

श्रमण संघीय एवं अनेक ग्रन्थों के लेखक

स्व० जैन दिवाकर प्रसिद्धवक्ता मुनि श्री चौथमल जी

महाराज साहब के प्रशिष्य प्रिय व्याख्यानी तपस्वी

मुनि श्री मंगलचन्द्र जी म० सा०

के सुशिष्य

संस्कृतविशारद प्रवचनभूषण

श्री भगवती मुनि 'निर्मल'

सम्पादक

रूपेन्द्रकुमार पगारिया

ज्ञानपीठ पुष्प २७

पुस्तक :
कुमारपाल चरितम्

लेखक
कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्र सूरि

हिन्दी शब्दान्वय कर्ता :
भगवती मुनि 'निर्मल'

सम्पादक :
रूपेन्द्रकुमार पगारिया

उद्देश्य :
जीवन निर्माण कारक चरित्र कथन

विषय
चरित्रशैली में प्राकृत भाषा का अध्ययन

संस्करण
परीक्षोपयोगी छात्रों के अध्ययन हेतु

प्रकाशक
मन्त्री, श्री वर्द्धमान जैन ज्ञानपीठ (पंजीकृत)
निरपाल, जिला–उदयपुर (राज.)

अर्थप्रदाता
विभिन्न उदारमना सद्गृहस्थ

प्रकाशन वर्ष
१९८६ जनवरी
विक्रमाब्द २०४२ माघ

मूल्य
तीस रुपये मात्र (३० मात्र)

मुद्रक :
श्रीचन्द सुराना के निर्देशन में
एन. के. प्रिंटर्स, आगरा–२

Acharya Hemachandra Suri's

# KUMĀRPĀL CHARITAM

(Original Text, with literal Hindi meanings & Annotations)

Annotator

Jain Diwakar & Renowned orator

**Rev Late Sri Chauthmalji Maharaj's**

Grand Pupil

Muni Sri Mangal Chandraji Maharaj's

Worthy disciple

**Sanskrit Visharad Pravachana Bhushana**

**Sri Bhagavati Muni 'Nirmal'**

*Editor*

Rupendra Kumar Pagaria

*Publishers*

**Shri Vardhman Jain Gyanpith**

**TIRPAL, Distt. UDAIPUR (Raj.)**

**Gyanpith Publication 27**

☐ Book :
Kumarpal Charitam

☐ Author :
Kalikal Sarvagya Acharya Hemachandra Suri

☐ Hindi Annotator :
Sri Bhagavati Muni Nirmal

☐ Editor :
Rupendra Kumar Pagaria

☐ Aim :
Life Progressive character Narrative

☐ Subject:
Study of Prakrit Language through biographic style

☐ Edition :
Student's, Studying in various universities

☐ Publisher :
Secretary, Shri Vardhman Jain Gyanpith
Tirpal, Distt. Udaipur (Raj )

☐ Donation :
Various Liberal Clean Gentlemen

☐ Jan. 86, Vikram, 2042 Magh

☐ Printed :
Under the Guidance of
Srichand Surana
Enkay Printers, Agra-2

# समर्पण

जिनकी वाणी में ओज और प्रेरणा भरी है

जिनकी लेखनी में नव-नव उन्मेष की स्फुरणा है

जिनका तपःपूत जीवन स्वयं साधना का महाभाष्य है।

उन प्रवचन केशरी उपाध्याय प्रवर

**कविरत्न श्री केवल मुनि जी म० को**

तथा

जिनके अन्तरंग जीवन का कण-कण समतामय है

जिनके जीवन के ज्ञान का विमल आलोक फैला है

जिनकी सतत प्रेरणा से मेरा जीवन मंगलमय बना है

उन

*गुरुवर्य मुनि श्री मंगलचन्द्र जी म. सा. के*

पावन चरण-कमल में

यह ग्रन्थ सादर समर्पित

*—मुनि भगवती 'निर्मल'*

तपस्वीरत्न शान्तमूर्ति गुरुदेव
श्री मंगलचन्द जी महाराज

# प्रकाशकीय

जीवनामृत रसवन्ती के रस से सराबोर होने वाले प्रबुद्ध पाठकों, बुद्धिजीवियों के हाथों में बौद्धिक स्फुरणकर्तृक अमर रचना कुमारपाल चरितम् का हिन्दी अनुवाद समर्पित करते हुए हमे अत्यन्त हर्षानुभव हो रहा है। पुस्तक नामानुरूप ही अपने समय की महती श्लाघनीय उपयोगी रचना है।

साहित्य समुद्र के अथाह सागर में अतुलनीय भण्डार भरा पड़ा हुआ है। प्राचीन भण्डारों में अतुलनीय स्वर्गोपम भावो से युक्त रत्नगर्भित साहित्य छिपा हुआ है। आवश्यकता है—नवसृजन, नवरूप, अधुनातन सम्पादन द्वारा पाठकों के हाथो में पहुँचाया जाये। सीमित साधन होते हुए भी हमने यह कार्य हाथ मे उठाया है।

श्री वर्द्धमान जैन ज्ञानपीठ की स्थापना इन्ही उद्देश्यों को लेकर की गई है। इतस्ततः बिखरे हुए प्राचीन-अर्वाचीन साहित्य का सग्रह कर पाठको अध्येताओं अन्वेषको को सहयोग सहकार देना। उन्हें सर्व सामग्री एक ही स्थान पर मिले ऐसी व्यवस्था करना। भावी पीढी को धर्मसंस्कार मिले, अपने धर्म की ओर उनकी रुचि बढे अत धार्मिक अध्ययन केन्द्र चलाना। होनहार मेधावी छात्रों को छात्र-वृत्तियाँ देना।

उपरोक्त उद्देश्यो के लिए निरन्तर हमारी संस्था आगे बढ़ रही है। हमारे कार्यों को गतिमान करने के लिए आपका सतत सहयोग अपेक्षित है।

सस्था के मूल प्रेरक है स्व० जैन दिवाकर प्र० व. मुनिश्री चौथमलजी म. सा. के प्रशिष्य प्रिय व्याख्यानी तपस्वी मुनि श्री मगलचन्दजी म. सा. के सुशिष्य सस्कृत विशारद प्रवचन भूषण सुलेखक **श्री भगवती मुनिजी म. 'निर्मल'**।

महाराजश्री जी की मूल प्रेरणा ही हमारा सबल सहारा है।

बिना अर्थ-सम्बलता के कोई भी सस्था या कार्य सबल व स्थायित्व को प्राप्त नही कर सकते। अर्थ ही इसके स्थायित्व में मुख्य रीढ़ है। जिन-जिन उदार दानवीरों ने उदार हाथो से सहृदयतापूर्वक दान दिया है उनके लिए कृतज्ञता ज्ञापन करना मात्र औपचारिकता का निर्वाह करना है।

कुमारपाल चरितम् (द्वयाश्रय काव्यम्) के प्रकाशन की अनुमति प्रदान कर हमारे सस्थान को जो गौरव बढ़ाया है उसके लिए हम मुनिश्री के अत्यन्त आभारी

हैं। इस परीक्षोपयोगी ग्रन्थ के सफल होने पर अन्य ग्रन्थ भी निकालने की हमारी योजना है। इसके लिए हम उदार सहयोगियों के सहयोग की अपेक्षा रखते हैं।

सदा की भांति इस पुस्तक को सजाने सँवारने में जो परम सहयोगी बने हैं वे हैं स्नेही प्रवर मूर्धन्य कला विशेषज्ञ श्रीचन्दजी सुराना। पुस्तक को शुद्ध मुद्रित करने तथा सजाने सँवारने में जो सहयोग सहकार दिया है उसके लिए हम अत्यन्त आभारी हैं। भविष्य में भी इसी प्रकार के सहयोग की हम आशा करते है।

प्राकृत साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान डॉ० प्रेमसुमन जैन ने महत्वपूर्ण प्रस्तावना लिखकर ग्रन्थ का गौरव व्यक्त किया है, और हमारा उत्साह भी बढ़ाया है, हम आपके सदा कृतज्ञ रहेंगे।

प्रत्यक्ष किवा अप्रत्यक्ष में जिन-जिन उदारमना दानी सद्‌गृहस्थों से जो सहयोग श्रम से, समय से, अर्थ से प्राप्त हुआ है, उन सभी का हम आभार प्रकट करते है। भविष्य मे भी इसी प्रकार के सहयोग की आशा रखते है। सुज्ञेषु किं बहुना।

भवदीय
अध्यक्ष तथा मंत्री
श्री वर्द्धमान जैन ज्ञानपीठ (पजीकृत)
तिरपाल जि० उदयपुर (राज०)

□□

विद्वद्रत्न श्री भगवती मुनि 'निर्मल'
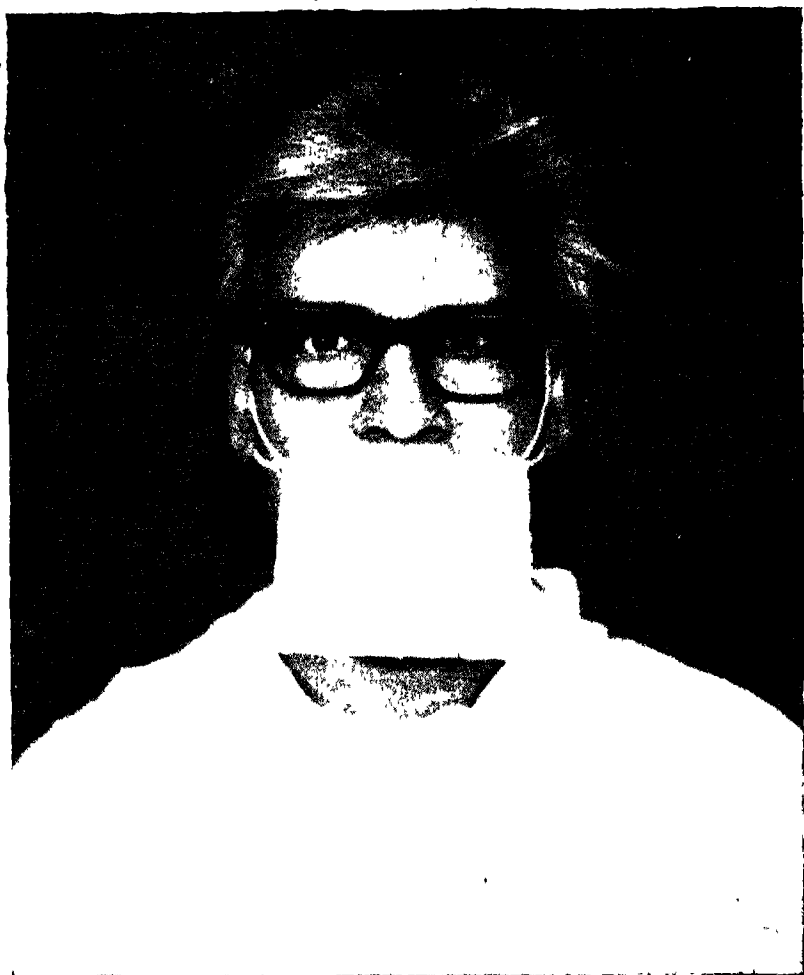
# अनुवादक के शब्दों में

साहित्य समाज का दीपक है। उसकी सांस्कृतिक विरासत, सभ्यता, भाषा वैभव, ज्ञान भण्डार, पुरातन काल की उसकी स्थिति आदि का दिग्दर्शन साहित्य के माध्यम से इस समय प्राप्त हो रहा है। भारतीय भाषा शास्त्रों के अध्ययन से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि पुरातन काल से समाज मे—देश में दो भाषाएँ प्रचलित थीं। विद्वानो पण्डितो की भाषा संस्कृत थी। सामान्यजन प्रकृति की भाषा प्राकृत भाषा मे ही अपना वाणी-विलास करते थे। प्राकृत भाषा में साहित्य रचनाएँ होने लगीं तो उसमे साहित्य-विद्वानो के, साहित्य-रसिकों के अनेको ग्रन्थ सामने आये।

श्रमण शिरोमणि भगवान महावीर जनभाषा के प्रबल वाहक थे। उनका उपदेश जनभाषा अर्द्धमागधी मे ही होता था। कालान्तर में अनेको देशों, प्रान्तों के विभाग से प्राकृत भाषा मे अन्तर अवश्यम्भावी रूप मे आ गया। प्राकृत भाषा जनभाषा से दूर हो गयी। उसका साहित्यिक रूप साहित्य में रह गया। प्राकृत भाषा मे जैन साहित्यकारो ने प्रचुर मात्रा में साहित्य रचा। कुन्दकुन्दाचार्य, समन्तभद्र, जिनसेन, वीरसेन, हेमचन्द्राचार्य, यशोभद्र सूरि आचार्यों ने साहित्य का श्री भण्डार भर के स्वर्ण युग का निर्माण किया है।

इन्ही युग निर्माणकर्तृक आचार्यों मे कलिकालसर्वज्ञ विरुद से विभूषित आचार्य हेमचन्द्र का नाम सर्वोपरि रूप से लिया जाता रहा है। भाषा ज्ञान में प्राकृत भाषा के अध्येताओं को व्याकरण ज्ञान कराने के लिए व्याकरण ग्रन्थ की रचना की है।

प्राकृत भाषा मे रचा गया कुमारपाल चरितम् यह द्व्याश्रय काव्य है। इस प्राकृत भाषा में लिखे गये साहित्यिक पाण्डुलिपियों से सम्बन्धित विभिन्न रीतियो का उल्लेख एव अवलोकन कथावस्तु जानने से पूर्व जानना अनिवार्य हो जाता है। पाण्डुलिपियों मे 'ए' व 'ओ' लिखने में अन्तर आया है। सयुक्त व्यंजन में वे पीछे आते हैं। यहाँ आचार्यश्री ने विकल्प रूप प्रयुक्त किये हैं। इन्होंने 'इ' व 'उ' का विकल्प रखा है। उन्होंने ८५ व आई ११६ तथा ४१० व ४११ इन नियमों के उत्साहजनक कामकाज का परिणाम पूर्णतः ठप्प रहा है। इसी कारण 'इ' व 'उ'

'ए' व 'ओ' के स्थान पर विकल्प रूप में सूचीबद्ध नहीं किये हैं। दूसरे प्राय 'ऊँ' के लिए 'ओ' प्रयुक्त हुआ है। परन्तु जब 'उ' के ऊपर का शून्य किसी कारण से गायब हो जाता है या निकाल दी जाती है तो इन विभक्तियों की उपेक्षा करके विषय सामग्री की गुणवत्ता की शक्ति पर ही सही पठन निश्चित किया गया है। तीसरे जैन लेखको के द्वारा 'य' श्रुति का उपयोग अन्यत्र तो सहा जा सकता है परन्तु प्रस्तुत कृति में कदापि नही जिसमे व्याकरण पद्धति का विशद वर्णन है। 'य' श्रुति के कारण विभक्तियाँ सूचीबद्ध नही बनी है। चौथे कुछ शब्दो या वर्णों मे अपवाद रखे गये हैं। जैसे कि हिँ को हि हिं या हिं जैसा चाहो वैसा लिख सकते हो। कही 'न्न' तो कही 'ण्ण' का प्रयोग हुआ है।

प्रस्तुत साहित्यिक कृति श्री कुमारपाल चरितम् प्राकृत द्वयाश्रय काव्य है। महाकाव्यो की श्रेणि मे है। आठ सर्ग है। प्रथम सात सर्गों में अणहिलपुरपट्टन के राजकुमारो का वर्णन है। साथ ही हेमचन्द्राचार्य प्रणीत सस्कृत व्याकरण के सात भागो या अध्यायो का विस्तृत विवरण भी है। प्राकृत भाषा के व्याकरण की विस्तृत व्याख्या भी है। सम्पूर्ण काव्य के प्रथम बीस पद सस्कृत मे है। अन्तिम आठ पद प्राकृत मे है।

आठ सर्गों वाला काव्य महाकाव्य माना जाता है। उसमे चरित्रनायक धीरोदात्त गुणशील नायक होता है। षट् ऋतुओ, नवरसो का वर्णन होता है। राजा कुमारपाल धीरोदात्त नायक है। युद्ध वर्णन है। राजा रानियो के वसन्त विहार, जलक्रीडा, उद्यान का वर्णन है। इस दृष्टि से हम देखते है कि कुमारपाल चरितम् एक महाकाव्य की श्रेणि का काव्य ग्रन्थ है।

कुमारपाल चरितम् अभी तक हिन्दी में प्रकाशित नही था। प्राकृत अध्येताओ के लिए यह अनिवार्य ग्रन्थ है। हिन्दी या गुजराती में कही से भी प्रकाशित नही था। मुझे स्मरण मे है कि एक महामुनिजी म एक महासतीजी म. को इसका अध्ययन करवा रहे थे। प्रत्येक गाथा के प्रत्येक शब्द का अर्थ शब्दकोष से समझा रहे थे। इस प्रकार एक ही गाथा को समझाने मे उन्हें एक दो घण्टे लग गये। तो पूर्ण ग्रन्थ को समझने के लिए महीनों चाहिए तो अन्य पाठ्य ग्रन्थो को समझने मे कितना समय चाहिए।

पालघर चातुर्मास के समय अहमदाबाद से स्नेही प० प्रवर रूपेन्द्रकुमारजी पगारिया आये थे। वर्षों से उनका हमारा प्रगाढ़ स्नेह सम्बन्ध रहा है। लेखन में उनका सहयोग सदा मिलता रहा है। वार्तालाप के मध्य उन्होने कहा—मुनिजी आपकी कितनी ही पुस्तकें, कहानियाँ, उपन्यास, चिन्तनपरक आगम की निकल

चुकी हैं। पर यह नवीन साहित्य हाथ में लें तो अतीव उपयोगी होगा। विद्यार्थियों, अध्येताओं, अध्यापकों के लिए अतीव उपयोगी होगा। मुझे भी बात जँच गई। प्रारम्भ में योजना थी कि मूल गाथा, अन्वयार्थ, भावार्थ, व्याकरण टिप्पणी सहित प्रकाशित कराया जाय पर इससे ग्रन्थ के आकार में परिवर्तन करना पड़ता था। परिस्थितिवश मूल योजना में परिवर्तन कर मूल गाथा, अन्वयार्थ व व्याकरण टिप्पणी का क्रम ही रखा। विचारानुसार कार्य की फल निष्पति है कि यह ग्रन्थ अध्येताओ पाठकों के हाथो में पहुँच रहा है।

मैं अपने परमाराध्य पूज्य गुरुवर्य प्रिय व्याख्यानी तपस्वी मुनिश्री मंगलचन्द जी म. सा. के मेरे पर कृत उपकारो को सीमित शब्दों मे असीमित भावों को बाँध नही सकता। जो कुछ बना हूँ यहाँ तक पहुँचा हूँ, गुरुदेव की कृपा कटाक्ष का ही प्रताप है। ऋण का उऋण हो ही नहीं सकता। प्रेरणा की प्रतिमूर्ति के सबल सहारे के उपकार को कृतज्ञता के अभिव्यक्त शब्दों को एक निश्चित दायरे में रखना असम्भव है।

इस ग्रन्थ के आद्य प्रेरणा स्रोत सम्पादन कला मर्मज्ञ रूपेन्द्रकुमार पगारिया तो इस ग्रन्थ के साथ प्रारम्भ से ही सलग्न रहे हैं। मेरी अस्वस्थता समयाभाव से मन्थर गति से कार्य को द्रुतविलम्बित गति प्रदान कर अल्पावधि में ही ग्रन्थ की प्रेस कॉपी सम्पादन आदि करके इसे पाठकों के हाथों मे पहुँचाने का श्रेय उनके कन्धो पर ही है। कृतज्ञता ज्ञापन की औपचारिकता कर स्तुत्य कार्य को कम अकन नही कर सकता।

श्रीयुत् स्नेही प्रवर मुद्रण कला विशेषज्ञ श्रीचन्द सुराना ने पुस्तक को सर्वांग सुन्दर बनाने मे जो सहयोग सहकार दिया है। उन्हें क्या धन्यवाद दूँ चूँकि अपने व्यक्ति को धन्यवाद क्या दिया जाये औपचारिकता का निर्वाह कृतज्ञता ज्ञापन करना है।

उदयपुर यूनीवर्सिटी के प्राकृत विभागाध्यक्ष स्नेह सौजन्यशील डा० श्री प्रेम सुमन जैन एम. ए., पी-एच डी. ने मेरे अनुरोध को स्वीकार कर भूमिका 'कुमारपाल चरितम् : एक मूल्यांकन' लिखी है। अल्प समय में ही विद्वत्तापूर्ण भूमिका लिखी है उसके लिए मैं अत्यन्त आभारी हूँ।

प्रत्यक्ष किंवा अप्रत्यक्ष मे जिन किन्हीं का भी मुझे सहयोग सहकार मिला है उनको धन्यवाद देता हूँ। भविष्य में इसी प्रकार के सहयोग सहकार की आशा आकांक्षा रखता हुआ विरमामि। सुज्ञेषु किं बहुना।

श्री वर्द्धमान स्था. जैनधर्मस्थानक — भगवती मुनि 'निर्मल'
(मेवाड़)

विक्रोली (वेस्ट), बम्बई-८३

# श्री वर्द्धमान जैन ज्ञानपीठ तिरपाल के सदस्यगण

## प्रमुख संस्थापक

श्री वर्द्धमान स्था. जैन श्रावक सघ — पालघर
श्रीमान धर्मप्रेमी दानवीर लाला रतनलाल जी जैन — बम्बई
श्रीमान धर्मप्रेमी दानवीर सेठ पुखराजमलजी जैन लूकड़ — बम्बई
श्रीमान धर्मप्रेमी दानवीर पद्मराजजी पोखरना — बम्बई

## प्रमुख संरक्षक

श्रीमान धर्मस्नेही दानवीर पी. एच. जैन — बम्बई
श्रीमान धर्मस्नेही दानवीर लाला सत्येन्द्रकुमार जैन — बम्बई
श्रीमती धर्मानुरागिणी विद्यावती सहजादेलाल जैन — आगरा
श्रीमती धर्मानुरागिणी प्रेमवतीजी जैन भाडी — बम्बई
श्रीमान दानवीर लाला त्रिलोकनाथजी जैन नोलखा (साबुन वाले) — दिल्ली

## आधार स्तम्भ

श्रीमान धर्मप्रेमी लाला छज्जुराम मित्रसेन जैन — बम्बई
श्रीमती धर्मानुरागिनी प्यारीबाई जुगराजजी कात्रेला — बम्बई
श्रीमान धर्मप्रेमी लाला पवनकुमार जैन
(पिता स्व० सागरमलजी माता स्व० चन्द्रावती जैन की स्मृति मे)
श्रीमान लधाराम एवं राजकुमारी ग्वालानी — कोटा
श्रीमान लाला हरवंशलालजी जैन जरीवाला — दिल्ली
श्रीमान धर्मप्रेमी मानकचन्द शान्तिलाल मेहता — कोप्पल
श्रीमान धर्मप्रेमी लाला मंदीपजी जैन — बम्बई
श्रीमान दीपचन्दजी मोहनलालजी कछारा (स्व० धर्मपत्नी की स्मृति मे) विरार

## स्तम्भ

श्रीमान तोलारामजी टेकचन्दजी पालरेचा — मचीन्द
श्रीमान लाला पन्नालालजी जैन नाहटा — दिल्ली
श्रीमान सुरेश कुमार अतुल कुमार जैन — दिल्ली
श्रीमान चुन्नीलालजी सिगवी — नान्देशमा
श्रीमान शान्तिलाल जी इन्द्रमलजी सिंगवी चोकड़ी वाले — बम्बई

प्रस्तावना

# कुमारपाल-चरित्र : एक मूल्यांकन

—डॉ० प्रेमसुमन जैन, एम.ए., पी-एच.डी.
(विभागाध्यक्ष, जैनविद्या एवं प्राकृत विभाग,
सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर)

भारतीय साहित्य मे जैन साहित्य का विशेष महत्व है। जैन साहित्य में कई ऐसी विधाएँ और रचनाएँ प्राप्त होती हैं, जो भारतीय साहित्य की शोभा को बढ़ाती हैं। विशुद्ध आचरण करने वाले महापुरुषो एवं न्यायपूर्ण जीवन जीने वाले राजाओं की जीवनियाँ जैन साहित्य मे धर्मकथानुयोग के अन्तर्गत कई ग्रन्थों मे लिखी गयी हैं। ऐसे ग्रन्थों को ऐतिहासिक काव्य भी कहा जा सकता है, यद्यपि उनमे काव्यतत्व अधिक एव इतिहासतत्व कम प्राप्त होता है। आचार्य हेमचन्द्र कृत "द्वयाश्रयकाव्य" इसी कोटि की रचना है। इसमे काव्य, इतिहास, जीवनी एव व्याकरण-प्रयोग इन सबका मिश्रण है।

**बहु-आयामी ग्रन्थ :**

जैन साहित्य की समृद्धि मे जैनाचार्यों, कवियों एवं सद्गृहस्थो के अतिरिक्त मध्ययुगीन राजवंशो और साहित्यप्रेमी प्रतापी राजाओं का भी विशेष योगदान रहा है। दक्षिण भारत के गंग, कदम्ब, चालुक्य एवं राष्ट्रकूट वंश के राजाओं ने जैन धर्म को सरक्षण देकर जैन साहित्य की अमर-रचनाओ के प्रणयन मे सहयोग दिया है। मध्यकाल मे जैन कवियो ने गुजरात मे अणहिलपुर, खम्भात और भड़ौंच को अपनी साहित्यिक-प्रवृत्ति का प्रमुख केन्द्र बना रखा था। चौलुक्य नरेशो का जैन धर्म को विशेष आश्रय प्राप्त था। सिद्धराज जयसिंह और कुमारपाल के शासनकाल में जैन कला एव साहित्य के क्षेत्र मे पर्याप्त उन्नति हुई। इस साहित्यिक समृद्धि में आचार्य हेमचन्द्र और उनके समकालीन जैनाचार्यों का विशेष योग रहा है।

जैन काव्य साहित्य के निर्माण में विभिन्न प्रेरणाएँ रही हैं। धर्मोपदेश और धार्मिक प्रचार की भावना के साथ गण और संघों की परस्पर स्पर्धा ने भी काव्य सृजन को बल दिया है। किन्तु मध्ययुग में समकालीन प्रभावक एवं धार्मिक राजाओं के आदर्श जीवन ने भी जैन कवियों को काव्य लिखने की प्रेरणा प्रदान की है।

गुजरात में ऐसे कई प्रभावक व्यक्ति हुए हैं। सिद्धराज जयसिंह, परमार्हत कुमारपाल, महामात्य वस्तुपाल, जगडूशाह और पेथडशाह आदि इसी प्रकार के उदारमना, धर्मपरायण एवं साहित्यप्रेमी व्यक्ति थे, जिनके जीवन से प्रभावित होकर जैन कवियों ने उन्हें काव्य का नायक बनाया है। हेमचन्द्र कृत "द्व्याश्रयकाव्य", बालचन्द्रसूरि कृत "वसन्तविलास" एवं उदयप्रभसूरि कृत "धर्माभ्युदय" इसी प्रकार की ऐतिहासिक रचनाएँ है। ये रचनाएँ काव्य एवं इतिहास दोनों दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं।[1]

गुजरात के इतिहास के लिए कई जैन काव्य महत्वपूर्ण सामग्री प्रस्तुत करते है। ठाकुर अरिसिंहकृत "सुकृतसकीर्तन" नामक काव्य में महामात्य वस्तुपाल के जीवन एवं उनके लोकप्रिय कार्यों का वर्णन है। यह पहला ऐतिहासिक काव्य है, जिसमे चावडावंश का वर्णन है। बालचन्द्रसूरि कृत "वसन्तविलास" नामक काव्य वस्तुपाल के जीवनचरित पर बिस्तार से प्रकाश डालता है। इस ग्रन्थ मे जयसिंह, कुमारपाल एव भीम द्वितीय का भी वर्णन किया गया है। जयसिंहसूरिकृत "कुमारपाल भूपालचरित" एक घटना-प्रधान काव्य है। इस ग्रन्थ मे कुमारपाल सम्बन्धी कई अलौकिक घटनाओं का वर्णन है। सोमप्रभकृत "कुमारपाल प्रतिबोध" एक कथाकोश है। इसमे कुमारपाल के जीवन के सम्बन्ध मे कुछ तथ्य प्रस्तुत किये गये है। मुनि जिनविजय जी ने "कुमारपाल चरित्र सग्रह" नामक ग्रन्थ मे कुमारपाल के जीवन से सम्बन्धित कुछ प्राचीन काव्य ग्रन्थो का परिचय दिया है। इन सब रचनाओ के परिप्रेक्ष्य मे यह कहा जा सकता है कि कुमारपाल के जीवन-चरित ने कई जैन कवियो को काव्य सृजन के लिए प्रेरित किया था। उन सब का आदर्श आचार्य हेमचन्द्रकृत "द्व्याश्रयकाव्य" रहा है

आचार्य हेमचन्द्र द्वारा रचित द्व्याश्रयकाव्य के दो भाग है। प्रथम भाग मे २० सर्ग है एव द्वितीय भाग मे ८ सर्ग है। इस तरह यह कुल २८ सर्गों का महाकाव्य है। आचार्य हेमचन्द्र ने अपने इस ग्रन्थ का यह विभाजन स्वरचित 'हेमशब्दानुशासन' व्याकरण ग्रन्थ को ध्यान मे रखकर किया है। उनके इस व्याकरण ग्रन्थ मे प्रथम सात अध्यायो मे सस्कृत व्याकरण के सूत्र हैं एव अन्तिम आठवें अध्याय मे प्राकृत व्याकरण के नियम वर्णित है। सस्कृत एव प्राकृत व्याकरण के इन नियमो के अनुसार शब्दो के उदाहरण प्रस्तुत करने के लिए आचार्य हेमचन्द्र ने 'द्व्याश्रयकाव्य' लिखा। इसके द्वारा उन्होंने दोहरे उद्देश्य की पूर्ति की है। एक ओर चौलुक्यवंशी राजाओ के जीवन-चरित का वर्णन हो जाता है एव दूसरी ओर संस्कृत-प्राकृत के

---

१. द्रष्टव्य—चौधरी, गुलाबचन्द : जैन साहित्य का बृहत् इतिहास, भाग ६, पृष्ठ ३९२-४७४.

शब्दों को व्याकरण के रूप में प्रस्तुत कर दिया जाता है। अतः काव्य का 'द्व्याश्रय' विशेषण सार्थक हो जाता है।

'द्व्याश्रयकाव्य' के प्रथम भाग के २० सर्गों में सिद्धहेम व्याकरण के सात अध्यायों में वर्णित संस्कृत व्याकरण के नियमों के अनुसार संस्कृत शब्दों का प्रयोग करते हुए सोलंकी वंश के राजा मूलराज से लगाकर जैन धर्म के अनुरागी राजा कुमारपाल तक के इतिहास का वर्णन किया गया है। इसके बाद इस काव्य के दूसरे भाग के ८ सर्गों में हेम-व्याकरण के आठवें अध्याय में वर्णित प्राकृत व्याकरण के नियमों के उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं। साथ ही कुमारपाल की एक दिन की दिनचर्या को काव्यमय भाषा में प्रस्तुत किया गया है।[1] अत द्व्याश्रय महाकाव्य में इस ८ सर्ग वाले प्राकृत अंश को कुमारपालचरियं (कुमारपाल चरित) नाम दिया गया है। इसे "प्राकृत द्व्याश्रयकाव्य" के नाम से भी जाना जाता है। प्रस्तुत ग्रन्थ इसी प्राकृत अंश का नया संस्करण है।

## ग्रन्थकार आचार्य हेमचन्द्र

जैनाचार्यों मे आचार्य हेमचन्द्र बहुमुखी प्रतिभा के धनी कवि हैं। उनका जन्म गुजरात के धन्धुका नामक गाँव में वि० स० ११४५ (सन् १०८८) की कार्तिक पूर्णिमा को हुआ था। हेमचन्द्र के पिता चाचदेव (चाच्चिगदेव) शैव धर्म को मानने वाले वणिक् थे। उनकी पत्नी का नाम पाहिनी था। हेमचन्द्र के बचपन का नाम चागदेव था। चागदेव बचपन से ही प्रतिभासम्पन्न एव होनहार बालक था। उसकी विलक्षण प्रतिभा एव शुभ लक्षणो को देखकर आचार्य देवचन्द्र सूरि ने माता पाहिनी से चांगदेव को माग लिया एव उसे अपना शिष्य बना लिया। आठ वर्ष की अवस्था मे चागदेव की दीक्षा सम्पन्न हुई। दीक्षा के उपरान्त उसका नाम सोमचन्द्र रखा गया। सोमचन्द्र ने अपने गुरु से तर्क, व्याकरण, काव्य, दर्शन, आगम आदि अनेकों ग्रन्थों का गहन अध्ययन किया। उनकी असाधारण प्रतिभा और चारित्र के कारण सोमचन्द्र को २१ वर्ष की अवस्था मे वि० सं० ११६६ मे सूरिपद प्रदान किया गया। तब सोमचन्द्र का नाम हेमचन्द्रसूरि रख दिया गया।

हेमचन्द्रसूरि का गुजरात के राज्य परिवार से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। उनके पाण्डित्य से प्रभावित होकर गुर्जरेश्वर जयसिंह सिद्धराज ने उन्हें व्याकरण ग्रन्थ लिखने की प्रेरणा दी थी। हेमचन्द्रसूरि ने अपनी अनन्य प्रतिभा का प्रयोग करते हुए

---

१. द्रष्टव्य—शास्त्री, नेमिचन्द्र : प्राकृत भाषा एवं साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ. २८३-२८४

जो संस्कृत और प्राकृत भाषा का प्रसिद्ध व्याकरण लिखा उसका नाम 'सिद्ध-हेम-व्याकरण' रखा, जिससे सिद्धराज का नाम भी अमर हो गया। हेमचन्द्र का कुमारपाल के साथ भी घनिष्ठ सम्बन्ध था। कुमारपाल का राज्याभिषेक वि० सं० ११९४ मे हुआ था, किन्तु इस राज्यप्राप्ति की भविष्यवाणी हेमचन्द्र ने सात वर्ष पहले ही कर दी थी। कुमारपाल ने हेमचन्द्र से बहुत कुछ शिक्षा प्राप्त की थी अतः वह उन्हें अपना गुरु मानता था। गुजरात के प्रतापी राजाओं की इस घनिष्ठता के कारण हेमचन्द्रसूरि ने निश्चिन्त होकर अनेक विद्वत्तापूर्ण ग्रन्थों की रचना की है।[1]

आचार्य हेमचन्द्र ने व्याकरण, छन्द, अलंकार, कोश, काव्य एवं चरित आदि विभिन्न विषयों पर अनेक ग्रन्थ लिखे हैं। उसमें से कुछ प्रमुख ग्रन्थों का परिचय इस प्रकार है--

१. **सिद्धहेमशब्दानुशासन**—इस विशाल ग्रन्थ में आठ अध्याय हैं। व्याकरण के क्षेत्र मे जो स्थान पाणिनि तथा शाकटायन के व्याकरण ग्रन्थो को प्राप्त है, वही प्रतिष्ठा हेमचन्द्र के इस ग्रन्थ को मिली है। इस ग्रन्थ मे प्रथम के सात अध्यायों में सस्कृत व्याकरण एव आठवे अध्ययन मे प्राकृत व्याकरण का वर्णन है। पूरे ग्रन्थ में ३५६६ सूत्र है। प्रभावकचरित से ज्ञात होता है कि इस व्याकरण ग्रन्थ की तीन सौ विद्वानो ने प्रतिलिपियाँ करके उन्हे देश के कौने-कौने में पहुँचाया था। कालान्तर मे भी इस व्याकरण पर सर्वाधिक व्याख्या साहित्य लिखा गया। इसी व्याकरण ग्रन्थ को समझने के लिए हेमचन्द्र ने द्व्याश्रयकाव्य की रचना की थी। हेमशब्दानुशासन सास्कृतिक दृष्टि से भी विशेष महत्व का ग्रन्थ है।[2]

२. **प्रमाण-मीमांसा**--जैन न्याय के क्षेत्र मे आचार्य हेमचन्द्र ने अन्ययोग व्यवच्छेदिका एव अयोगव्यवच्छेदिका नामक द्वात्रिंशिकाओं के अतिरिक्त "प्रमाण-मीमासा" नामक ग्रन्थ भी प्रस्तुत किया है। इस ग्रन्थ मे सम्पूर्ण भारतीय दर्शन को जैन दर्शन के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत कर दिया गया है।

**योगशास्त्र** इनकी दूसरी महत्व-पूर्ण दार्शनिक रचना है।

३ **त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरितं**—इस महान ग्रन्थ की रचना कुमारपाल के अनुरोध से आचार्य हेमचन्द्र ने की थी। इस विशालकाय ग्रन्थ मे जैनों के प्रसिद्ध कथानक, इतिहास, पौराणिक कथाओं एवं धर्म दर्शन का विस्तार से वर्णन हुआ है। यह सम्पूर्ण ग्रन्थ १० पर्वों में विभक्त है। गुजरात के समाज एवं संस्कृति की

---

१. द्रष्टव्य—बाठिया, कस्तूरमल . हेमचन्द्राचार्य जीवन-चरित, परिशिष्ट

२. शास्त्री, नेमिचन्द्र : आचार्य हेमचन्द्र और उनका शब्दानुशासन एक अध्ययन

जानकारी के लिए भी इस ग्रन्थ में पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है। काव्य एवं शब्द-शास्त्र की दृष्टि से भी इस ग्रन्थ का विशेष महत्त्व है। ग्रन्थ की प्रशस्ति से कई ऐतिहासिक तथ्य भी प्राप्त होते हैं।

४. **कोश-ग्रन्थ**—आचार्य हेमचन्द्र ने कोश साहित्य से सम्बन्धित चार ग्रन्थ लिखे हैं—अभिधानचिन्तामणि, हेमअनेकार्थसंग्रह, देशीनाममाला एवं निघंटुकोष। इन ग्रन्थों का सस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश भाषाओं के शब्द-भण्डार को समझने के लिए विशेष महत्त्व है।

५. **काव्यानुशासन**—इस ग्रन्थ में आचार्य हेमचन्द्र ने काव्यशास्त्र का स्वतन्त्र रूप से विवेचन किया है। काव्य की परिभाषा एवं उसके भेद-प्रभेदों में कई नई स्थापनाएँ इस ग्रन्थ मे की गई हैं।

६. **छन्दोनुशासन**—इस ग्रन्थ में छन्दशास्त्र का विस्तृत विवेचन प्राप्त है।

७. **द्व्याश्रयमहाकाव्य**—सस्कृत एव प्राकृत भाषाओं में निबद्ध यह ग्रन्थ आचार्य हेमचन्द्र की प्रतिभा का निकष है। इसी ग्रन्थ का प्राकृत अश कुमारपाल चरित के नाम से प्रसिद्ध है।

प्राकृत कुमारपालचरित जैन साहित्य मे बहु-प्रचलित ग्रन्थ है। पूर्णकलशगणि ने इस पर टीका लिखी है। परवर्ती कई ग्रन्थकारो ने इस काव्य को अपनी रचनाओ का आधार बनाया है। बम्बई सस्कृत सीरीज के अन्तर्गत स० पा० पण्डित द्वारा १९०० ई० में इसका प्रथम बार सम्पादित सस्करण प्रस्तुत किया गया। १९३६ में प० ल० वैद्य द्वारा इसका दूसरा सस्करण प्रकाशित हुआ है। इसके साथ परिशिष्ट मे हेमचन्द्र-प्राकृत व्याकरण भी प्रकाशित की गई। प्रो० केशवलाल हिम्मतलाल कामदार द्वारा इस ग्रन्थ का गुजराती अनुवाद भी प्रकाशित किया गया। किन्तु हिन्दी अनुवाद के साथ कुमारपालचरित को पहली बार श्री भगवती मुनि 'निर्मल' द्वारा प्रस्तुत किया जा रहा है। इस ग्रन्थ के सांस्कृतिक एवं काव्यात्मक महत्त्व को उजागर करते हुए पी-एच डी. उपाधि के लिए भी ३-४ शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत किये गये है।[1] एम. ए प्राकृत एवं अन्य परीक्षाओं के पाठ्यक्रम में भी यह ग्रन्थ निर्धारित है। अतः ग्रन्थ का यह हिन्दी-संस्करण इस ग्रन्थ के महत्व को द्विगुणित करेगा।

---

१. (क) सत्यप्रकाश : कुमारपाल चौलुक्य, १९६७, आगरा, अप्रकाशित
   (ख) शर्मा, कृष्णधर ए स्टडी आफ द्व्याश्रय महाकाव्य आफ हेमचन्द्र, १९७९, गोरखपुर, अप्रकाशित
   (ग) नारग, सत्यपाल : ए स्टडी आफ द्व्याश्रय काव्य इन सस्कृत लिटरेचर, १९६८, दिल्ली, अप्रकाशित
   (घ) जैन, हर्षकुमारी . हेमचन्द्र के द्व्याश्रय महाकाव्य (कुमारपाल चरित) का सांस्कृतिक एवं साहित्यिक अध्ययन, १९७४, आगरा, अप्रकाशित

**कथावस्तु**

कुमारपालचरित में राजा कुमारपाल के एक दिन की दिनचर्या को कथा-वस्तु का आधार बनाया है। कथा को व्यापक करने लिए उसमें छह्-ऋतुओं का वर्णन, दिग्विजय का चित्रण एव परमार्थ-चिन्तन आदि को आधार बनाया गया है। ग्रन्थ की सक्षिप्त कथावस्तु इस प्रकार है—

इस पृथ्वी मे अणहिल्लपुर नामक नगर है। वहाँ पर राजा कुमारपाल शासन करता था। उसने अपने पराक्रम से पृथ्वी को जीत लिया था। अत: उसके राज्य की सीमा विस्तृत थी। वह जितना पराक्रमी था, उतना ही विनयी एव न्यायप्रिय। गुणो की वह खानि था। उसकी लक्ष्मी स्थिर थी। वह कुमारपाल राजा प्रात:काल मे महाराष्ट्र आदि देशों से आये हुए स्तुतिपाठको के द्वारा किये गये मंगलगान से सोकर उठता था। शयन से उठकर प्रात:काल के दैनिक कार्यों से वह निवृत्त होकर जब आस्थानमण्डप में बैठता तब ब्राह्मण लोग उसे आशीर्वाद देते थे। फिर वह तिलक आदि धारण कर धृष्ट एव अधृष्ट लोगों की विज्ञप्ति सुनता था। राजा कुमारपाल प्रतिदिन मातृगृह मे प्रवेश कर उन्हें प्रणाम करता फिर लक्ष्मी की पूजा करता था। इसके उपरान्त वह व्यायामशाला (श्रमगृह) में जाकर व्यायाम करता था।

द्वितीय सर्ग के प्रारम्भ मे व्यायाम का वर्णन विस्तार से किया गया है। व्यायाम से निवृत्त होकर कुमारपाल हाथी का सवार होकर जिनमन्दिर दर्शन के लिए जाता है। इस प्रसग मे हाथी का सुन्दर वर्णन किया गया है। जिनेन्द्र भगवान की विधिवत् पूजा-स्तुति करने के बाद राजा सगीत का कार्यक्रम देखता है। राजा मरुबकपूजा के विषय मे चिन्तन करता है। उसके लिए सभी ऋतुओं के पुष्पो की आवश्यकता होती है। अत. शासनदेवी के प्रभाव से राजा के उद्यान मे छहो ऋतुओ के पुष्प खिल उठते है। इस आशीर्वाद के बाद राजा अपने अश्व पर आरूढ़ होकर धवलगृह को लौट आता है।

तीसरे सर्ग मे षड्-ऋतुओ की शोभा का वर्णन किया गया है। मध्यान्ह् के विश्राम के बाद कुमारपाल उद्यान-क्रीडा के लिए जाता है वहाँ पर वसन्तऋतु की शोभा को देखता है। इस ऋतु की शोभा के वर्णन में कवि ने क्रीड़ा मे सम्मिलित नर-नारियो की विभिन्न स्थितियों का काव्यमय वर्णन किया है। वसन्तऋतु में विकसित होने वाले पलाश, गुलाब, शिरीष, मल्लिका, लवली, बकुल आदि विभिन्न पुष्पों का सुन्दर वर्णन इस सर्ग में किया गया है। लवली लता के काले फूलों को देखकर किसी पुरुष को अपनी प्रियतमा की काली चोटी की याद आ जाती है और वह स्मृति के भय से इन फूलों को हाथ नहीं लगाता—

**कण्ह-असिणाणि-कसणा लवली गन्धारिहा वि मोत्तिअजिआ।**
**केण वि कज्जल-कण्हं सुमरिअ कलिरि पिअअमाए ॥३-५१॥**

ग्रीष्म ऋतु का सुन्दर वर्णन चतुर्थ सर्ग में किया गया है। इसमें इतनी उष्णता और दाह है कि नगर के निवासी शीतलता की प्राप्ति के लिए जलधाराओं एवं वापियों का सेवन करते हैं। इस प्रसंग में राजा और उसकी रानियों की जलक्रीड़ा का भी वर्णन किया गया है। पाँचवें सर्ग में वर्षा, शरद, शिशिर और हेमन्त ऋतुओं का काव्यात्मक वर्णन किया गया है। शरद-ऋतु मे छोटे से तालाब में कमलों के सुन्दर पुष्प खिले हुए हैं। उनकी सुन्दरता को देखते हुए दो आँखो वाले दर्शकों को तृप्ति नही होती —

**वाहम्मि एत्थ पल्लल-वारिम्मि बिसट्ट-पोम्म-मालाओ।**
**दोहिं च्चिअ नयणेहिं होइ न तित्ती नियन्ताणं ॥५-५७॥**

कुमारपाल उद्यान की इस मनोरम छटा को देखकर अपने महल में वापिस आ जाता है। वहाँ पर वह सध्या के कार्यों से निवृत्त होता है। इस प्रसंग में कवि ने विद्यार्थियों की क्रीडा एवं चकवा-चकवी के विरह का भी वर्णन किया है।

छठे सर्ग के प्रारम्भ मे चन्द्रोदय का वर्णन अलकारिक शैली में प्रस्तुत किया गया है। चन्द्रोदय की शोभा को देखते हुए कुमारपाल मण्डपिका मे बैठता है तब पुरोहित मन्त्रपाठ करता है। इस अवसर पर विभिन्न प्रकार के वाद्य बजाये जाते हैं तथा वारवनिताएँ थाली मे दीपक रखकर राजा के समक्ष उपस्थित होती हैं। राजा का दरबार जुड़ता है, जिसमें सेठ, सार्थवाह आदि नगरप्रमुख उपस्थित होते है। राजदूत राजा से कुछ दूरी पर आसन ग्रहण करते हैं। तदनतर साधिविग्रहिक नामक अधिकारी राजा के बल-वीर्य का यशोगान करता हुआ राजा की सेना के पराक्रम का विज्ञप्तिपाठ करता है। इसमें सूचना दी जाती है कि—हे राजन्! आपकी सेना के योद्धाओ ने कोंकण देश में पहुँचकर मल्लिकार्जुन नामक कोकणाधीश की सेना के साथ युद्ध किया और फिर उसे परास्त कर दिया है। दक्षिण दिशा को जीत लिया गया है। पश्चिम का सिन्धु देश आपके अधीन हो गया है। यवन देश के राजा ने आपके भय से ताम्बूल का सेवन करना छोड़ दिया है। वाराणसी, मगध, गौड, कान्यकुब्ज, चेदि, मथुरा और दिल्ली आदि के राजा आपके वश में हो गये हैं। इस प्रकार कुमारपाल को सूचना दी जाती है कि आपके द्वारा इस पृथ्वी के भार को धारण कर लेने से पौराणिक दृष्टि से पृथ्वी के भार को धारण करने वाले वराह, शेषनाग, कूर्म आदि सब निश्चिन्त होकर सो गये हैं—

**कमवसइ कुम्म-कोलो लुट्टइ सेसो सुअन्ति दिक्करिणो।**
**कुम्मो वि लिसइ अणावेविरम्मि तइ पहु मही-धरणे ॥६-१००॥**

अपने राज्य के प्रगति-विवरण को सुनकर राजा कुमारपाल भी शयन करने के लिए चला जाता है।

काव्य के सातवें सर्ग में सोकर उठने के बाद राजा कुमारपाल जो परमार्थ का चिन्तवन करता है, उसका वर्णन है। इस प्रसंग में जीव संसार-परिभ्रमण, नारी-स्वभाव, स्त्री-संगत्याग, स्थूलभद्र, वज्र-ऋषि, गौतमस्वामी, अभयकुमार आदि जैनधर्म के प्रभावक पुरुषों की प्रशंसा, जिन-वचन की महिमा, पंच-परमेष्ठियों को नमस्कार करने का फल आदि का प्रतिपादन किया गया है। श्रुतदेवी की स्तुति करने पर वह राजा के समक्ष उपस्थित होती है। राजा उससे उपदेश देने की प्रार्थना करता है। श्रुतदेवी का ध्यान करने के फल का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि श्रुत-देवी के ध्यान से कुबोधरूपी पर्वत छिन्न-भिन्न हो जाता है, पापरूपी वृक्ष की जड़ उन्मूलित हो जाती है, कलिकाल नष्ट हो जाता है और कर्मों का क्षय हो जाता है। (७-७८)

इस ग्रन्थ के आठवें सर्ग में श्रुतदेवी के उपदेश का वर्णन है। पहले मोक्ष के साधनो का वर्णन किया गया है। विषयों की आसक्ति को त्यागने से ही सच्चा वैराग्य हो सकता है। राग-द्वेष आदि को नष्ट करने पर ही आत्मा के सही स्वरूप को जाना जा सकता है। जिनवचन को जीवन मे अपनाने के लिए अहिंसा एवं जीवदया को पूरी तरह पालन करना आवश्यक है। तप द्वारा ही कर्मों का क्षय किया जा सकता है। भावों की विशुद्धि से आत्मा का मोक्ष सम्भव है, इत्यादि अनेक धार्मिक एव दार्शनिक सिद्धान्तो का विवेचन श्रुतदेवी द्वारा इस सर्ग मे किया गया है। इस प्रकार हेमचन्द्राचार्य ने इस प्राकृत द्व्याश्रयकाव्य में राजा कुमारपाल के दैनिक जीवन के साथ-साथ विभिन्न विषयों का भी काव्यात्मक प्रतिपादन में कर दिया है।

**मूल्यांकन**

कुमारपालचरित नामक यह काव्य यद्यपि चरितनामान्त है, किन्तु इसमें नायक कुमारपाल के चरित का विश्लेषण करने के लिए कवि के पास विस्तृत कथा-वस्तु नही है। कथावस्तु का आयाम इतना छोटा है कि चरितकाव्य की विशेषताएँ इसमे दी नहीं जा सकी है। इस ग्रन्थ को महाकाव्य कहा जाता है। काव्यात्मक दृष्टि से इस रचना में महाकाव्य के लक्षण विद्यमान हैं। किन्तु कवि के व्याकरणात्मक उद्देश्य की प्रधानता होने के कारण ग्रन्थ के काव्य बीज अधिक प्रस्फुटित नही हो सके हैं। फिर भी कवि ने इस ग्रन्थ मे सुन्दर, मनोहारी वर्णनों की योजना कर अलंकारों का सुन्दर प्रयोग किया है। ग्रन्थ मे उपमा, उत्प्रेक्षा, दृष्टान्त, दीपक,

अतिशयोक्ति, रूपक, भ्रान्तिमान आदि अलंकारों का प्रयोग काव्य को सुन्दर बना देता है। ग्रन्थ में प्रयुक्त कुछ अलंकारिक गाथाओं का काव्यात्मक सौष्ठव यहाँ द्रष्टव्य है।

जिनमंदिर में जिन-स्तुति करते हुए कुमारपाल कहता है कि हे भगवन्! जैसे खाई का जल अनेक कमलो से सुशोभित होता है, जैसे जंगल कदम्ब वृक्षों से मनोहारी लगता है उसी प्रकार से हे जगत के शोभारूप! कदम्ब-पुष्पो की माला से सुशोभित आपके चरणो से यह सम्पूर्ण पृथ्वी सुशोभित हो रही है—

> फलिहा-जलं बहुलम्बुजेहि जह जह वणं व नीमेहिं।
> जग-सिरि-नीवाबेडय सहइ मही तह तह पएहिं ॥२·५४॥

एक अन्य प्रसंग में कवि पूर्णोपमा अलंकार का प्रयोग करते हुए अणहिल नगर के व्यक्तियों की दानशीलता और कर्त्तव्यपरायणता का निरूपण करते हुए कहता है कि—उस नगर के निवासी अपनी लक्ष्मी को चंचल और नश्वर समझकर प्रियवचन-पूर्वक भूखे-प्यासे व्यक्तियों को उसी प्रकार दान देते हैं जिस प्रकार शरत्काल वर्षा ऋतु मे मलिन और कलुषित हुई दिशाओं को स्वच्छ बना देता है। उस नगर के वैद्य भी लोगों का उपचार करुणापूर्वक करते हैं। वे नीरोगता प्राप्त व्यक्ति वैसे ही प्रसन्न हो जाते हैं, जैसे शरत ऋतु मे दिशाएँ—

> विज्जु-चलं महुर-गिरो दिन्तो लच्छि जणो छुहत्ताण।
> मिसओ खु जहा सरहो दिसाण पाउस-किलन्ताण। (१·६)।

कहीं-कही कवि ने एक ही गाथा में कई उपमाओं का प्रयोग करके विषय को हृदयग्राही बनाया है। संगीत बजाने वाली स्त्री का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि शमी सप्तछह वृक्ष के फूलों के समान गौरवर्णवाली, कामदेव के छठे बाण की तरह रसिको के हृदय को छेदन करने वाली बरछी की तरह, मृग के बच्चे की तरह भोली आँखो वाली उस श्रेष्ठ एव स्पष्ट गायिका ने ताल ग्रहण कर लिया—

> छमि-छत्तिवण्ण-गोरी छट्ठो भल्लिव्व पंचबाणस्स।
> मय-छावच्छी वर-महुर-गायणी गिण्हिउं तालं। (२·७)।

कवि ने काव्य मे कुछ स्थानो पर अतिशयोक्ति अलंकार का भी प्रयोग किया है। अणहिलपुर की नारियाँ अपने सौन्दर्य से अप्सराओं को और वहाँ के पुरुष देवों तिरस्कृत करते थे (१·१३)। उस नगर के भवनों में जड़े हुए रत्न अपनी किरणों से सकलंक चन्द्रमा को भी निष्कलक बना देते थे (१·१६)। वह नगर ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि अनेक देवताओं के मन्दिरों से युक्त था। अतः वह स्वर्गपुरी को भी तिरस्कृत करता था, क्योंकि वहाँ अकेला इन्द्र देवता ही रहता है (१·२६)। राजा

कुमारपाल के अनुपम सौन्दर्य और दानशीलता की समता इन्द्र आदि देव भी नहीं कर पाते थे क्योंकि कुमारपाल में सारे भुवन के जीवों को अभयदान देने की जो क्षमता थी, वह उन देवो मे नहीं है—

> अइ सक्को न उण नरो न उणो नारायणो वि सारिच्छो ।
> जस्स पुणाइ पुणाइ वि भुवणाभय-दाण-ललिअस्स । (१·४५) ।

इस काव्य मे उत्प्रेक्षा अलकार का भी सुन्दर प्रयोग हुआ है । वसन्त ऋतु का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि वसन्त के आगमन पर उसके स्वागत के लिए वन के द्वार पर कोयलें मधुर ध्वनि मे मगल पाठ करने लगी । उनका यह मगल-पाठ ऐसा प्रतीत होता है मानो काम से पीड़ित विरही नारियाँ अपने प्रियतमो के स्वागत के लिए मधुरवाणी में स्तुतिगान कर रही हों (३·३४) । इसी प्रकार भ्रान्तिमान अलकार (६ ५) एव रूपक अलकार (६·८१) आदि के प्रयोग भी इस ग्रन्थ मे हुए हैं । अलकारो की भाँति काव्य मे विभिन्न रसो का भी सुन्दर सचार हुआ है । शृगार, वीर एव शान्तरस का अधिक प्रयोग देखने को मिलता है । कवि का कहना है कि जो व्यक्ति नारी-समागम के प्रति अपना मन नही रखता है, जिसका चित्त शान्त है, जो कषायो से रहित है तथा वैराग्य भावनाओं से युक्त है उसका ससार मे पुनः आगमन नही होता है—

> न भवे पच्चागच्छइ अपलोट्टिअ-माणसो जुवइ-संगे ।
> पडिसाय-मणो परिसामिएहिं कहिओवसम-मग्गो । (७·१२) ।

कुमारपाल चरित्र में गाथा छन्द का सर्वाधिक प्रयोग हुआ है । वदनक, झंवटक, दोहक, मनोरमा आदि अन्य मात्रिक छन्दो के भी कुछ उदाहरण इसमे प्राप्त हैं । वर्णिक छन्दो मे इन्द्रवज्रा का भी प्रयोग हुआ है । ग्रन्थ मे सर्ग के अन्त मे छन्द बदल दिया गया है ।

कुमारपाल चरित्र का काव्यात्मक महत्व ही नही है, अपितु यह प्राकृत भाषा एव व्याकरण की दृष्टि से भी अद्भुत रचना है । सस्कृत साहित्य में जो भट्टिकाव्य का महत्व है, प्राकृत साहित्य मे वही स्थान कुमारपालचरिय ने प्राप्त किया है । इसमे प्राकृत के इतने शब्द-रूपो का प्रयोग हुआ है कि यह ग्रन्थ प्राकृत के शब्द-कोश जैसा है । इस ग्रन्थ मे प्रथम सर्ग से लेकर सातवें सर्ग की ९३वी गाथा तक महाराष्ट्री प्राकृत के नियमों के अनुसार संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया, कृदन्त आदि शब्दों के उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं । जैसे—

> तइया वणिअ सुसाहिं निय-सुण्हा-वल्लहाओ ता दिट्ठा ।
> पाहाण-पुत्तिआहि व पासाण-सयम्भ-लग्गाहि । (२·६८) ।

इस गाथा में बहु शब्द के लिए प्रचलित प्राकृत के सुसा एवं सुण्हा इन दोनों रूपों के उदाहरण दिये गये हैं। इसी प्रकार पत्थर शब्द के लिए प्रचलित पाहाण एवं पासाण इन दोनों रूपो को दिया गया है।

स्त्रीलिंग शब्दरूपों में पंचमी विभक्ति के विभिन्न रूपों को एक ही गाथा में प्रस्तुत कर दिया गया है—

पचलिआहि मुक्कं कन्नेसुन्तो अलं मुहासुन्तो।
हत्थेहिन्तो चरणाहिन्तो वच्छाहि उअरेहि। (४·२८)।

भूतकाल की क्रिया के तीनों प्रत्यय सी, ही, हीअ के शब्दरूप इस गाथा में प्रस्तुत किये गये है—

इअ राया उज्जाण तं कासी नयण-गोअरं सव्वं।
काही सउहे गमणं संझा-कम्मं च काहीअ। (५·८७)।

शौरसेनी प्राकृत की प्रमुख विशेषताएँ सातवें सर्ग की गाथा ९३ के बाद दी गयी है। एक ही गाथा मे शौरसेन के किज्जदि, किज्जदे, भोदि, रमिस्सिदि, सग्गादु, रसातलादो शब्दो के प्रयोग एक साथ दे दिये गये है (७·९९)।

आठवे सर्ग मे श्रुतदेवी के उपदेश-वर्णन में मागधी, पैशाची, चूलिका पैशाची और अपभ्रंश भाषा के शब्दो को उदाहरण के रूप मे प्रस्तुत किया गया है। अपभ्रंश मे कृ धातु के सम्बन्ध-कृदन्त के चार रूप एक ही छन्द मे उपलब्ध हैं—

अन्नु करेप्पि निरानिउ कोहहो।
अन्नु करेप्पिणु सव्वहु माणहो।
अन्नु करेविणु माया-जाल हो।
अन्नु करेवि नियत्तसु लोहहो॥८-७७॥

**आभार**

इस तरह हेमचन्द्राचार्य ने इस एक ही ग्रन्थ मे जीवनी, इतिहास, काव्य, व्याकरण एवं सस्कृति आदि का इतना सुन्दर समन्वय किया है कि यह काव्य भारतीय साहित्य की प्रतिनिधि रचना हो गई है। मध्ययुगीन भारत के सगीत, उत्सव एव कला के अध्ययन के लिए भी इस ग्रन्थ मे पर्याप्त सामग्री विद्यमान है। ऐसे महत्वपूर्ण प्राकृत काव्य का राष्ट्रभाषा हिन्दी अनुवाद के साथ प्रकाशन किया जाना गौरव का विषय है। जैन साहित्य एवं दर्शन के मनीषी पूज्य श्री भगवती मुनि जी 'निर्मल' ने इस ग्रन्थ के सम्पादन एवं प्रकाशन मे जो श्रम किया है वह स्तुत्य है। विद्वत् जगत मे मुनिश्री द्वारा प्रस्तुत कुमारपालचरिय के इस ज्ञानवर्द्धक सस्करण का अवश्य समादर होगा। श्रद्धेय मुनि जी द्वारा संस्थापित श्री वर्द्धमान

जैन ज्ञानपीठ, तिरपाल (उदयपुर) से विभिन्न ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं। यह ग्रन्थ संस्थान के प्रकाशनों के गौरव को बढ़ाने वाला है। विभिन्न विश्वविद्यालयों में कुमारपालचरित पाठ्यक्रम में निर्धारित है। अब सहज उपलब्ध ग्रन्थ का यह संस्करण विद्वानो, विद्यार्थियों एव सहृदय पाठकों को तृप्ति प्रदान करेगा।

यह ग्रन्थ आचार्य हेमचन्द्र की बहुमुखी प्रतिभा की भांति ही बहु आयामी है। इसकी भूमिका मे उन सभी पक्षो पर प्रकाश पडना चाहिए था। किन्तु समयाभाव, भूमिका के सीमित पृष्ठो एवं मेरे सीमित ज्ञान के कारण यह सम्भव नही हो सका। फिर भी श्रद्धेय मुनि जी ने मुझे इसका अध्ययन कर दो शब्द लिखने का जो अवसर दिया इसके लिए मै उनका एव प्रकाशन सस्थान का आभारी हूँ। आशा है, मुनिजी की प्रेरणा से सस्थान इस प्रकार के अन्य प्राकृत ग्रन्थरत्नो को भी प्रकाश मे ला सकेगा। इस ग्रन्थ के द्वितीय भाग के रूप मे कुमारपालचरित पर प्रस्तुत किसी शोध-प्रवन्ध को सस्थान द्वारा प्रकाशित किया जाना चाहिए। इससे प्रस्तुत ग्रन्थ के कई पक्ष उजागर हो सकेगे।

२५ दिसम्बर, १६८५

– **प्रेमसुमन जैन**

# विषयानुक्रम

## ( प्रथमः सर्गः ) पृष्ठांक १—३४



□

## ( द्वितीयः सर्गः ) पृष्ठांक ३५—७१



□

## (तृतीयः सर्गः) पृष्ठांक . ७२-१०६



□

( चतुर्थः सर्गः )　　पृष्ठांक : १०७—१३५

□

(पञ्चमः सर्गः) पृष्ठांक : १३६—१६८

□

( षष्ठ: सर्ग: ) पृष्ठांक : १६९—२०७

□

( सप्तमः सर्गः ) पृष्ठांक : २०८—२३९

गाथांकः स्वापान्ते राज्ञः परमार्थचिन्ता १–८४ गाथांकः

□

(अष्टम: सर्ग:) पृष्ठांक : २४०—२६६

| गाथांकः | |
|---|---|
| ६० | ज्ञानदर्शनचारित्ररूप रत्नत्रयं विना मुक्तेरभावो भाण्डेन विना क्रेतव्यवस्तुन इव |
| ६१ | जिनागमालोकनं विना भवहानोपाय मोक्षसंप्राप्त्युपाययोरभावः |
| ६२ | चञ्चला संपत् ध्रुवं मरणमिति सर्वस्मिन् वदत्यपि न कस्यापि महामुनिसमागम साध्य संयमाभावः |
| ६३ | मुक्तिमुखस्य साधनानि |
| ६४ | यत्र कुत्रापि स्थितौ जीवदयाया मुक्ति प्रति कारणत्वम् |
| ६५ | तपसा सह संयममाद्यभावे साधुमध्ये गणनाया अभावः |
| ६६ | धर्महीनादावपि दयां कुर्वतोऽपि सिद्धिः |
| ६७ | मनसः सुस्थिरत्वकरणे संसारस्थितं विषण्णं प्रत्युपदेशः |
| ६८ | रात्रिभोजनात् पापे पतनं ततः ससारे परिभ्रमणम् |
| ६९ | तपः परिपालनौत्सुक्यात् ससारे गमनागमन क्रियाया अभावः |
| ७० | जीवदयोपशमयोरेव कर्तव्यत्वं नान्यस्य कर्मणः |
| ७१ | परिग्रहालीक भाषणे परित्यज्य उपशमस्य स्वीकर्तव्यत्वम् |
| ७२ | शरीरजीवयोरास्थिरत्वं ज्ञात्वाऽशुभावस्त्याज्यः |

| गाथांकः | |
|---|---|
| ७३ | श्रुतार्थस्य श्रवणे कर्णयोः श्रुतार्थस्य स्थिरीकरणे हृदयस्य च कृतार्थत्वम् |
| ७४ | यस्य कर्णे जिनागमवचन मात्रमपि प्रविष्टं तस्य त्वदीयंमदीयमिति ममत्वाभावः |
| ७५ | यावज्जीवं दमकरणे सिद्धलोकगमनम् |
| ७६ | भव्यत्वादीनां सिद्धि प्रति प्रशमादीनामुत्तरोत्तर मुच्यमानाना कारणत्वम् |
| ७७ | क्रोध मानमायाजाललोभानामन्तं कृत्वा निवर्तने निदेशः |
| ७८ | संसारत्याग शिवसौख्यसंवेदनयोरति निश्चल मनं कारणम् |
| ७९ | चित्तादीनामनाकुलत्वादि करणे निश्चलं ध्यानं कारणम् |
| ८० | यमनादिनदीजले स्नानेपि शिवशर्मप्राप्त्यभावः |
| ८१ | मनसि जिनमवतीर्ण कुर्वित्यादेशः |
| ८२ | दयावतामेव निर्वतिर्न वेश धारिणाम् |
| ८३ | इति भाषाविनियमेन परमतत्त्वं कथयित्वा नृपोरसि निजकण्ठमालां स्थापयित्वा मंगलं चोक्त्वा देवीगमनम् |

□

**आचार्य श्री हेमचन्द्रविरचितम्**

# कुमारपालचरितम्

## [ प्रथमः सर्गः ]

---

अह पाइआहिं भासाहिं संसयं बहुलमारिसं तं तं ।
अवहरमाणं सिरि-वद्धमाण-सामिं नमंसामो ॥१॥

**अन्वयार्थ**—(अह) अथ; (पाइआहिं) प्राकृत; (भासाहिं) भाषाओं द्वारा, जिन्होंने; (आरिसं) आर्ष-ऋषि सम्बन्धी सिद्धान्तों के प्रति, (बहुलं) बहुत; (संसय) (उत्पन्न) संशय को, (अवहरमाणं) नष्ट कर दिया है; ऐसे; (सिरि-वद्धमाण-सामि) श्री वर्द्धमान स्वामी को, (नमंसामो) हम नमस्कार करते हैं।

**टिप्पण**—"अह पाइआहिं" "बहुलं" "आरिसं" इति पद भणिति व्याजेन साक्षात् 'अथ प्राकृतम्' (१) "बहुलं" (२) "आर्षम्" (३) इति सूत्र त्रयं प्रतिपादितम् ।

**अणहिल्ल नगरवर्णनम्**—(२-२७)

अत्थि अणहिल्ल-नगरं अन्ता-वेईसमाइ-निव-निचिअं ।
सत्तावीसइ--मुत्तिअ---भूसिअ--जुवइ--जण--पइ--हरयं ।२॥

**अन्वयार्थ**—(सत्तावीसइ) सत्ताईस; (मुत्तिअ) मोतीवालों (से) (ऐसे-ऐसे हारों से—२७ नक्षत्रों के आधार से जिन हारों का नाम नक्षत्र मालाहार हैं—ऐसे-ऐसे बहुमूल्य हारों से); (भूसिअ) सुशोभित; (जुवइ-जण पइ) युवती जनों—(युवती-स्त्रियों) से भरे हुए हैं घर जिनके, ऐसे पतिवालों से परिपूर्ण हैं; (हरयं) घर जिस नगरी में; तथा (अन्तावेइ) गंगा-यमुना के मध्य के देश अन्तर्वेदी के; (ईसमाइ) राजा आदि (इस राजा से लगाकर अन्य) (निव) विभिन्न राजाओं से; (निचिअं) जो नगरी भरी हुई है ऐसा; (अणहिल्ल नगरं) अणहिल्ल नाम का नगर (अत्थि) है।

**टिप्पण**—वेईसमाइ इत्यत्र वक्रादित्वाद् (१-२६) अनुस्वारः। बाहुलकात् (१-२४) क्वचित् अन्यस्यापि व्यञ्जनस्य मः॥

तिअस-वई-हर-वहु-मुह-आदरिसीहूय-फलिह-सिल-सिहरो ।
जस्सि पुहइ-वहू-मुह-अवयंसो सहइ पायारो ॥३॥

**अन्वयार्थ**—(तिअस-वइ) देवताओं के पति=इन्द्रों के; (हर) घर स्वर्ग की; (वहु-मुह) वधुओं के मुख—इन्द्राणियों के मुख के समान; (आदरिसीहूय) आदर्शभूत; (फलिह-सिल) स्फटिक-शिला के; (सिहरो) शिखर हैं जिस कोट का ऐसा; (पुहइ वहू) पृथ्वीरूप वधू के (मुह-अवयंसो) मुख के समान श्रेष्ठ ऐसा शोभाकारी; (जस्सि) जिस नगरी मे; (पायारो) (कोट—) प्राकार; (सहइ) सुशोभित होता है।

**टिप्पण**—अन्तावेईस। सत्तावीसइ-मुत्तिअ-भूसिअ। "दीर्घह्रस्वौ मिथो वृत्तौ" (४) इति स्वराणा समासे दीर्घह्रस्वौ। क्वचिन्न। जुवइ-जण। क्वचिद् वा। पइ-हरयं वई-हर। दीर्घस्य ह्रस्वः। सिल-सिहरो। क्वचिद् वा। वहु-मुह वहू-मुह।

निव-सह-मुहावयंसा बिइया गुरुणो अबीय-गुण-निवहा ।
निवसन्ति अणेग-बुहा जस्सि पुहवीस-सलहिज्जे ॥४॥

**अन्वयार्थ**—(जस्सि) जिस नगरी मे, (निव-सह) राजा की सभा मे; (मुहावयसा) मुखरूप होने से शोभायमान; ऐसे पण्डित थे, (बिइया गुरुणो) जो दूसरे बृहस्पति के समान थे, ऐसे (अबीय-गुण-निवहा) जो अद्वितीय-गुणों के समूह रूप थे, ऐसे (अणंग बुहा) अनेकानेक पण्डित; (पुहवीस) पृथ्वी के राजाओ द्वारा, (सलहिज्जे) श्लाघायोग्य अति प्रशसनीय उस नगरी में, (निवसंति) रहते हैं।

**टिप्पण**—मुह-अवयंसो मुहावयसा। 'पदयोः संधिर्वा" (५) इति सस्कृतोक्तः सर्वः सधिर्वा। पदयोरिति किम्। सहइ। बहुलाधिकारात् क्वचिद् एकपदेपि। बिइया अबीय।

न हु अत्थि न वि अ हूअं इह लोए अइसएण जस्स समं ।
सुउरिस-ठाणमसूरिस-रहिअं सालाहण-पुरं पि ॥५॥

**अन्वयार्थ**—(अइसएण) गुणों के कारण से अतिशय=महानता के कारण से, (जस्स-सम) जिसकी तुलना में=जिनके समान; (न वि अ हुअं) कोई भी नगरी न तो हुई; (न हु अत्थि) न कोई वर्तमान में है; (सु उरिस-ठाणम्) जो सज्जन पुरुषों से परिपूर्ण=अथवा सज्जन पुरुषों के रहने के

योग्य थी; (असुरिस-रहिअं) जो दुर्जनों से रहित थी ऐसी; (इह लोए) इस लोक में;( सालाहण) सातवाहन राजा की; (पुरं पि) एक नगरी भी थी; जिनका नाम प्रतिष्ठानपुर था।

टिप्पण—निवसन्ति अणेग। हु अत्थि। "न युवर्णस्यास्वे" (६) इति न सन्धिः। अस्व इति किम्। पुहवीस। युवर्णस्येति किम्। गुरुणो अवीय।

लोए सइसएण। "एदोतोः स्वरे" (७) इति न संधिश्च। एदोतोरिति किम्। पुहवीस।

वि अ। हूअ। लोए। अइसएण। रहिअं। "स्वरस्योद्वृत्ते" (८) इति न संधिः। बाहुलकात् क्वचिद् वा। सु उरिस असूरिस। क्वचित् संधिरेव। सालाहण॥

निवसन्ति अणेग। "त्यादेः" इति न संधिः।

जंस्सि नमन्त-सीसो तियसीसो वि हु तवं तवन्ताण।
तेलुक्क-सज्जणाणं थुणइ स-भिक्खूण सद्धाए॥६॥

अन्वयार्थ—(जंस्सि) जिस नगरी में; (तवं) तप को; (तवन्ताण) तपते हुए साधुओं की, (तेलुक्क-सज्जणाणं) तीनों लोक में श्रेष्ठतम ऐसे साधुओं को; (स-भिक्खूण) श्रेष्ठ साधुओं को; (सद्धाए) श्रद्धापूर्वक; (नमन्त सीसो) मस्तिष्क झुकाते हुए, (तियस-इसो)=तियसीसो=देवताओं का इन्द्र; (वि हु) भी निश्चयपूर्वक, (थुणइ) स्तुति करता है।

टिप्पण– तियसीसो। "लुक्" (१०) इति लुक्। तव। "अन्त्यव्यञ्जनस्य" (११) इति लुक्। वाक्यविभक्त्यपेक्षायां हि अन्त्यत्वम् अनन्त्यत्वं च। तेन उभयम्। सज्जणाण सभिक्खूण।

जत्थोन्नय-थण-नीसह-वहु-दंसण-निस्सहं नरा जन्ति।
दुसहाउ दुस्सहेणं मयणेण हयन्तरप्पाणो॥७॥

अन्वयार्थ—(जत्थ) जिस नगरी में; (दुसहाउ) असह्य से भी; (दुस्सहेण) असह्य ऐसे; (मयणेण) कामदेव द्वारा; (हयन्तरप्पाणो) नष्ट कर दी गई है अन्तर् आत्मा जिनकी; ऐसे कामातुर, (नरा) मनुष्य, (उन्नय-थण) उन्नत स्तन होने के कारण से, (नीसह) जाने-आने में मन्दगतिवाली; (वहु-दंसण) स्त्रियों के दर्शन के प्रति; (निस्सहं) अधीरता को; (जन्ति), प्राप्त होते हैं= दर्शनों के प्रति अधीर रहते हैं।

टिप्पण—सद्धाए। उन्नय। "न श्रदुदोः" (१२) इति न लुक् नीसह निस्सहं। दुसहाउ दुस्सहेणं। "निर्दुरोर्वा" (१३) इति न लुक्॥

तेअ-दुरालोएहिं अन्तो-उवरिं घराण रयणेहिं ।

छूढ व्व निरवसेसा सरिआहिव-संपया जत्थ ॥८॥

**अन्वयार्थ**—(जत्थ) जहाँ पर (जिस नगरी में); (घराण) मकानों के; (अन्तोउवरिं) मध्य में और ऊपर; (तेअ-दुरालोएहिं) ऐसे-ऐसे रत्न पड़े हुए हैं कि जिनकी प्रभा के कारण से आँखों में भी चकाचौंध पैदा हो जाती है ऐसे; (रयणेहिं) रत्नों द्वारा मानों; (सरिआहिव-संपया) सरिताधिप=समुद्र (रत्नाकर) की सम्पत्ति, (निरवसेसा) सम्पूर्ण=(समस्त) रूप मे; (छूढव्व) मानो यहाँ पर आकर इधर-उधर फैल गई है।

**टिप्पण**—अन्तरप्पाणो । दुरालोएहिं । निरवसेसा । "स्वरेन्तरश्च" (१४) इति लुक् न । क्वचिद् भवत्यपि । अन्तो-उवरिं ॥

विज्जु-चलं महुर-गिरो दिन्तो लच्छिं जणो छुहत्ताण ।

भिसओ खु जहा सरओ दिसाण पाउस-किलंताण ॥९॥

**अन्वयार्थ**—जिस नगरी में; (महुर-गिरो) मीठी वाणी बोलने वाले, (जणो) व्यक्ति, (छुहत्ताण) क्षुधा से पीड़ित मनुष्यों के लिए; (विज्जु-चलं) बिजली के प्रकाश के समान चंचल; (लच्छिं) लक्ष्मी को, (दिन्तो) देते हुए; (खु) निश्चय ही, (भिसओ) वे दाता वैद्य के समान ही है; (जहा) जैसे कि; (सरओ) शरद् ऋतु; (पाउस-किलंताण) वर्षा काल में कलुषित; (दिसाण) दिशाओ को निर्मलता रूप शोभा प्रदान करती है।

**टिप्पण**—सरिआ। "स्त्रियां आद् अविद्युत. (१६) इति आत्वम् । बाहुलकाद् ईषत्स्पृष्टतरयश्रुतिरपि । संपया । अविद्युत इति किम् । विज्जु-चलं । महुर-गिरो । "रो रा" (१६) इति रा । छुहत्ताण । "क्षुधो हा" (१७) इति हा । आर्षे तु खुहेत्यपि । भिसओ । सरओ । "शरदादेरत्" (१८) इति अन्त्य-व्यञ्जनस्य अत् । दिसाण । पाउस । "दिक्प्रावृषोः सः" (१९) ॥

जत्थच्छरस-मण-हरो वहूहि रमिरो वि अच्छर-समाहिं ।

दीहाऊ वि अदीहाउस-माणी सइ विवेइ-जणो ॥१०॥

**अन्वयार्थ**—(जत्थ) जिस नगरी में; (अच्छरस-मण-हरो) अप्सराओं के मन का भी हरण करने वाला ऐसा; (विवेइ-जणो) विवेकी पुरुष; (अच्छर समाहिं) अप्सराओ के समान, (वहूहि) वधुओं के साथ=स्त्रियों के साथ; (रमिरो वि) क्रीड़ा करते हुए भी, (दीहाऊ वि) दीर्घ आयुष्य वाले होते हुए भी; (सइ) सदा; (अदीहाउस-माणी) स्वल्प आयुवाले ही अपने आपको मानते हैं; इस प्रकार यहाँ के व्यक्ति योग्यायोग्य के विचारक हैं।

टिप्पण—अच्छरस । अच्छर । दीहाउ । अदीहाउस । "आयुरप्सर-सोर्वा" (२०) इति स. ।

कुसुम-धणू धणूह-धरो कउहा-मुह-मंडणम्मि चंदम्मि ।
रज्जं तमेग-छत्तं असंकमुवभुंजए जत्थ ॥११॥

अन्वयार्थ—(जत्थ) जहाँ पर; (कउहा-मुह-मंडणम्मि) दिशाओं के मुख को शोभित करने वाले; (चदम्मि) चन्द्रमा के उदय होते ही; (कुसुम-धणू) फूलों का धनुष रखने वाला; (धणूह-धरो) धनुषधारी कामदेव; (असं-कम्) बिना किसी शंका के, (एगछत्तं) एकछत्र=बिना किसी प्रतिद्वन्द्वी के; (तं) उस; (रज्जं) राज्य का, को; (उवभुंजए) उपभोग करता है=भोगता है ।

टिप्पण—कउहा । "ककुभो हः" (२१) इति हः । धणू । धणुह । "धनुषो वा" (२२) इति वा हः ॥ रज्जं । "मोनुस्वारः" (२३) इति मस्य अनुस्वारः । क्वचिद् अनन्त्यस्यापि । चन्दम्मि ॥

छत्तं असंकमुव । "वा स्वरे मश्च" (१४) इति वा अनुस्वारः । पक्षे लुगपवादो मस्य मः । बाहुलकाद् अन्यस्यापि व्यञ्जनस्य म. । तमेगं ॥

रोमंच-कटइल्लो संझाए वंक-जंपण छइल्लो ।
जत्थ मणंसिल-तिलओ विलसइ अहिसारिआ-लोओ ॥१२॥

अन्वयार्थ—(जत्थ) जहाँ पर, (अहिसारिआ लोओ)—काम से पीड़ित होती हुई स्त्री पति की ओर जाती हुई ऐसी—) अभिसारिका का समूह; (मणंसिल-तिलओ) जिसने मणंसिल=सिन्दूर आदि का तिलक लगा रक्खा है; काम-पीड़ा के कारण से जिनका—(रोमंच-कटइल्लो) रोमाच हो जाने के कारण से जो कंटकिल हो गई हैं, (वंक-जपण-छइल्लो) टेढ़ा बोलने में जो निपुण है, ऐसी अभिसारिकाओ का समूह; (संझाए) संध्या के समय में; (विलसइ) विलास किया करती हैं ।

टिप्पण—असंक । उवभुंजए । रोमंच । कंटइल्लो । संझाए । "ङ ञ ण नो व्यञ्जने" । (२६) इत्यनुस्वारः ॥

जत्थ भवणाण अवरिं देवं नागेहिं विम्हया दिट्ठो ।
रमइ मणोसिल-गोरो मणसिल-लित्तो मयच्छि-जणो ॥१३॥

अन्वयार्थ—(जत्थ) जिस नगरी में; (भवणाण अवरिं) भवनों के ऊपर; (मणोसिल-गोरो) मनःशीला नामक धातु के समान गौरवर्ण वाली; (मणसिल-लित्तो) मनःशील (=सिन्दूर) का जिन्होंने अपने शरीर पर उबटन

लगा रखा है; (मयच्छि-जणो) मृग की आँखों के समान है आँखें जिनकी; ऐसी अंगनाएँ, (देव नागेहिं) आकाश में विचरण करते हुए नाग जाति के देवकुमारों द्वारा जो; (विम्हुया) रूप लावण्य के कारण से विस्मयपूर्वक; (दिट्ठो) देखी जाती हैं; ऐसी अंगनाओं का समूह; (रमइ) क्रीड़ा किया करता है।

**टिप्पण**—वंक जंपण इति आद्यस्य, मणंसिल इति द्वितीयस्य, अवरिं इति तृतीयस्य, "वक्रादावन्तः" (२६) इत्यन्तोनुस्वारः। क्वचिच्छन्दः पूरणेपि। देव-नागेहिं। क्वचिन्न। मणसिल। आर्षे मणोसिल।

पव्वेसु अपव्वेसुं जत्थ मुणीणं कमेण अकमेणं।
काऊणं पडिवत्तिं हरिसं काऊण देइ जणो ॥१४॥

**अन्वयार्थ**—(जत्थ) जिस नगरी में; (पव्वेसु) पर्व के दिनों में; (अपव्वेसुं) अपर्व के (साधारण) दिनों में; (कमेण) क्रम से, (अकमेणं) अक्रम से; (मुणीणं) मुनियों की; (पडिवत्तिं) प्रतिपत्ति=स्वागतार्थ सम्मुख जाने की क्रिया; (काऊणं) करके; (हरिसं काऊण) हर्ष प्रगट करके; (जणो) जनता; (देइ) दान दिया करती है।

**टिप्पण**—भवणाण। पव्वेसु अपव्वेसुं। मुणीणं। कमेण अकमेणं। काऊणं काऊण। "क्त्वास्यादेर्णस्वोर्वा" (२७) इत्यन्तो वानुस्वारः॥

वीस-गुणो तीस-गुणो कलि-कालो नूण जत्थ कय-जुगओ।
नूनं अणभुञ्जन्ते लोए मासं स-मंसं व ॥१५॥

**अन्वयार्थ**—(जत्थ) जिस नगरी में; (कलिकालो) कलियुग भी; (कय जुगओ) कृतयुग की अपेक्षा से, (नूण) निश्चय ही; (वीस गुणो-तीस गुणो) बीस गुना-तीस गुना=अधिक श्रेष्ठ है; क्योंकि (लोए) यहाँ की जनता; (स-मंसं व) अपने शरीर के मांस के समान; (मासं) अन्य जीवों के मास को भी, (अण भुञ्जन्ते) नही खाती है।

**टिप्पण**—वीस। तीस। "विंशत्यादेर्लुक्" (२८) इति अनुस्वार लुक्॥ मासं मंसं। नूणं नूण। "मासादेर्वा" (२९) इति वा अनुस्वारलुक्।

जस्सिं सकलंकं वि हु रयणी-रमणं कुणन्ति अकलङ्कम्।
संखधर-संख - भङ्गोज्जलाओ भवणंसु-भंगीओ ॥१६॥

**अन्वयार्थ**—(जस्सि) जिस नगरी में, (संखधर-संख) कृष्ण के पाञ्चजन्य नामक शंख के; (भंगोज्जलाओ) छिद्र के समान स्पष्ट—विशद; ऐसी (भवणंसु-भंगीओ) भवनों में; फैलती हुई किरणों का आभा-विस्तार; (सक-

लंकं) कलंक वाले, (रयणी-रमणं) रात्रि-पति-चन्द्र को; (वि) भी; (हु) निश्चय ही; (अकलंकं कलंकरहित; बना देता है।

लंघिज्जइ नालंघं वञ्चिज्जइ न हु अवञ्चणिज्जं च।
वंछिज्जइ न वि जस्सि अवंछणिज्जं च केणावि ॥१७॥

**अन्वयार्थ**—(अलंघं) जो तिरस्कार के योग्य नहीं है; उनका (न लंघिज्जइ) तिरस्कार नहीं किया जाता है; (अवञ्चणिज्जं) जो ठगने योग्य नही हैं; उन्हें (न हु वंचिज्जइ) नहीं ठगा जाता है; (केणावि) किसी से भी; (जस्सि) जिस नगर में, (अवंछणिज्जं) अवांछनीय वस्तु की; (न वंछिज्जइ) बांछा नहीं की जाती है।

वंजिअ-सत्ती सत्ती-अणञ्जिओ सत्ति-वंझ-जण-वञ्झो ॥
लुंटाय-लुण्टणो संठे सण्ठो जत्थ निव-लोओ ॥१८॥

**अन्वयार्थ**—(वंजिअ-सत्ती) जिन्होंने अपनी शक्ति का प्रदर्शन किया है; उन्ही के प्रति (सत्ती अणजिओ) शक्ति का प्रदर्शन किया जाता है; (सत्ती-वझ) जो शक्ति का प्रदर्शन नही करता है; (जण-वझो) उसके प्रति जनता शान्त रहती है; (लुंटाय) लूटने वाले के प्रति ही; (लुंटणो) लूट का बदला लिया जाता है, पीछा लूटा जाता है (संठे) जो शठ है; उसी के प्रति (संठो) शठता की जाती है; (जत्थ) जिस नगरी में ऐसे ऐसे; (निव-लोओ) राजाओं का समूह निवास करता है।

उद्दण्ड-बाहु-दण्डा-जस्सि कुण्ढासहा सयमकुण्ढा।
कंतंगा कन्त-गुणा नय-पंथे पन्थिआ पुरिसा ॥१९॥

**अन्वयार्थ**—(जस्सि) जिस नगरी में, (उद्दंडबाहु) जो पुरुष बदमाशी किया करते हैं: उन्हीं के प्रति पुनः; (दंडा) दंड का विधान किया जाता है, (कुण्ढा सहा) जहाँ पर मद क्रिया वालों को—आलसी, दीर्घसूत्री को पसन्द नहीं किया जाता है, (संयम कुण्ढा) जहाँ पर सभी धार्मिक-क्रियाओं के प्रति अमन्द हैं (कंतंगा) जो मनोहर अंगोपांग वाले हैं; (कंत गुणा) शूरता, वीरता; धैर्य आदि मनोरम गुणवाले हैं; (नय पंथे) न्याययुक्त मार्ग में ही जो; (पथिआ चलने वाले हैं; ऐसे उस नगरी के (पुरिसा) पुरुष हैं।

चंदुज्जाण व चंदो वंकिअ-बंधूण बन्धवो जस्सि।
अणुकंप-कम्पिअ-मणो बिहुवि-जणो वंकए धम्मं ॥२०॥

**अन्वयार्थ**—(चन्दुज्जाण) जैसे कुमुदों के लिए; (चन्दो) चन्द्र प्रिय है; वैसे ही (वंफिय बन्धूण) बन्धुत्व भावनाओं की इच्छा करने वालों के लिए =मित्रों की भावना वालों के लिए; (बन्धवो) बन्धु=अथवा मित्र जहाँ मिल जाया करते हैं। (जंस्सि) जिस नगरी में; (अणुकंप-कंपिय-मणो) अणुकंपा से परिपूर्ण है मन जिनका; ऐसे (विहृवि-जणो) वैभवशाली पुरुष; (धम्मं) धर्म की, (वम्फए) इच्छा करते हैं।

लंबंत-लुम्बि-रम्भारम्भिअ तोरण-निरुद्ध-सरंभो ।
सरए वि पाउसम्मि व न जत्थ दीसइ फुडो तरणी ॥२१॥

**अन्वयार्थ**—(लबन्त-लुम्बि) लम्बे-लम्बे हैं फल समूह जिनके; ऐसे (रम्भा) कदली पौधो के द्वारा; (आरम्भिय) प्रारम्भ की गई; (तोरण) वन्दन-मालाओं के कारण से; (निरुद्ध-सरम्भो) रुक गया है किरणों के समूह का फैलाव जिसका-ऐसा; (फुडो) चमकता हुआ; (तरणी) सूर्य भी, (जत्थ) जहाँ पर, (पाउसम्मि व) वर्षाकाल के समान, (सरए वि) शरद् ऋतु में भी, (न दीसइ) नहीं दिखलाई पड़ता है।

**टिप्पण**—सकलक अकलंकं। सङ्ख सख। भगो भंगीओ। लङ्घिज्जइ लघं। वञ्चिज्जइ अवंचणिज्ज। वञ्छिज्जइ अवंछणिज्जं। वजिअ अणज्जिओ। वझ वञ्झो। लुण्टाय लुण्टणो। सठे सण्ठो। उद्दड दण्डा। कुण्ठा अकुण्ठा। कतंगा कन्त। पन्थे पंथिया। चदुज्जाण चन्दो। बधूण बन्धवो। अणुकंप कम्पिअ। वफिअ वम्फए। लबंत लुम्बि। रंभा रम्भिअ "बर्गेन्त्यो वा" (३०) इति वा अनुस्वारस्य वर्गान्त्यः॥

सरए। पाउसम्मि। तरणी। 'प्रावृट्शरत्तरणयः पुंसि" (३१) इति पुंलिङ्गे प्रयोक्तव्या।

जत्थ चुलुक्क-निवाणं परिमल-जम्मो जसो कुसुम-दामं ।
नहमिव सव्व-गओ दिस-रमणीण सिराइँ सुरहेइ ॥२२॥

**अन्वयार्थ**—(जत्थ) जहाँ पर; (चुलुक्क-निवाणं) चौलुक्य वंशी राजाओं के; (परिमल-जम्मो) गुणरूप पराग से उत्पन्न; (जसो) यशः; (नहमिव) आकाश के समान, (सव्व-गओ) सर्वव्यापी होता हुआ; (कुसुमदामं) फूलों की माला के समान; (दिस रमणीण) दिशा रूपी महिलाओं के; (सिराइ) सिरों को—मस्तिष्क को; (सुरहेइ) सुगन्धित करता है। अर्थात् इनका यश सर्वव्यापी हो रहा है।

सव्व-वयाणं मज्झिम-वयं व सुमणाण जाइ-सुमणं व ।

सम्माण मुत्ति-सम्मं व पुहइ-नयराण जं सेयं ॥२३॥

**अन्वयार्थ**—(सव्व-वयाणं) बाल-यौवन-वृद्ध आदि वयों में (मज्झिम-वयं) मध्य-वय-यौवन वय; श्रेष्ठ है; (सुमणाण) सभी प्रकार के फूलों में; (जाइ-सुमणं) 'जाइ' नाम का फूल श्रेष्ठ है। (सम्माण) सभी प्रकार के सुखों में; (मुत्ति-सम्मं) मोक्ष-सुख श्रेष्ठ है; वैसे ही (पुहइ-नयराण) पृथ्वी भर के सभी नगरों में; (जं सेयं) जो यह नगर अणहिल नामवाला श्रेष्ठ है।

चम्मं जाण न अच्छी णाणं अच्छीइँ ताण वि मुणीण ।

विअसन्ति जत्थ नयणा किं पुण अन्नाण नयणाइँ ॥२४॥

**अन्वयार्थ**—(जाण) जिनकी; (चम्मं) अच्छी चमड़े की आँख; आँख रूप नहीं है किन्तु (णाण) ज्ञान ही; (अच्छीइँ) आंख है; (ताण मुणीण वि) उन मुनियों की भी; (नयणा) आँखें; (जत्थ) जहां पर=जिसकी धार्मिकता को देख करके; (विअसन्ति) विकसित हो जाती है। (किं पुण) तो फिर; (अन्नाण) सामान्य मनुष्यों की; (नयणाइ) आंखों का तो कहना ही क्या है ?

**टिप्पण**—जम्मो। जसो। "स्नम् अदामशिरोनभः" (३२) इति पुंस्त्वम्। अदामशिरोनभ इति किम्। दामं। नहं। सिराइँ। बाहुलकात्। वय। सुमणं। सम्मं। सेयं। चम्मं॥

गुरुणो वयणा वयणाइँ ताव माहप्पमवि य माहप्पो ।

ताव गुणाइं पि गुणा जाव न जंसि बुहे निअइ ॥२५॥

**अन्वयार्थ**—(गुरुणो) बृहस्पति के; (वयणा) वचन; तभी तक; (वयणाइं) वचन है; (माहप्पमवि) महात्म्य भी; (ताव) तभी तक; (माहप्पो, महात्म्यरूप है; (गुणाइँ पि) गुण भी; (ताव) तभी तक; (गुणा) गुणरूप है; (जाव) जब तक कि; (जस्सि) इस नगर में स्थित; (बुहे) पण्डितों को; (न) नहीं (निअइ) देख लेते हैं।

**टिप्पण**—अच्छी अच्छीइं। नयणा नयणाइँ। वयणा वयणाइं। माहप्पं माहप्पो। "वाक्यर्थवचनाद्याः" (३३) इति वा पुंस्त्वम्॥

हरि-हर-विहिणो देवा जत्थन्नाइँ वि वसंति देवाइं ।

एयाए महिमाए हरिओ महिमा सुर-पुरीए ॥२६॥

**अन्वयार्थ**—(जत्थ) जहाँ पर; (हरिहर-विहिणो) ब्रह्मा, विष्णु, महेश (देवा) देव; (अन्नाइँ) अन्य; (देवाइं वि) देवता भी; (वसन्ति) रहते हैं; (एयाए

महिमाए) ऐसी महिमा के कारण से; (सुर-पुरीए) देवलोक की; (महिमा) महिमा; (हरिओ) हरण कर ली है।

**टिप्पण**—गुणाइं गुणा। देवा देवाइँ। "गुणाद्याः क्लीबे वा" (३४) इति वा क्लीबत्वम् ॥

जत्थांजलिणा कणयं रयणाइं वि अंजलीइ देइ जणो।
कणय-निही अक्खीणो रयण-निही अक्खया तह वि ॥२७॥

**अन्वयार्थ**—(जत्थ) जहां पर; (जणो) मनुष्य; (अंजलिणा) अंजलि द्वारा (कणयं) सोना; (देइ) देता है; (रयणाइं वि) रत्नों को भी; (अंजलीइ) अंजली से (देइ) देता है; वहाँ पर (तह वि) तो भी (कणय-निही) कनक निधि (अक्खीणो) अक्षय है; (रयण-निही) रत्न-निधि (अक्खया) अक्षय है।

**टिप्पण**—महिमाए महिमा। अञ्जलिणा अञ्जलीइ। निही निही।" "वेमाञ्जल्याद्याः स्त्रियाम्" (३५) इति स्त्रीत्वम्।

**तत्र कुमारपालनृपस्थितिः**—(२८)

तत्थ सिरि-कुमर-वालो बाहाए सव्वओ वि धरिअ-धरो।
सुपरिट्ठ-परिवारो सुपइट्ठो आसि राइन्दो ॥२८॥

**अन्वयार्थ**—(तत्थ) उस नगरी मे; (बाहाए) अपने बाहुबल द्वारा ही; (सव्वओ वि) चारों ही तरफ; (धरिअ-धरो) राज्य स्थापित किया है जिसने ऐसा, (सुपरिट्ठ परिवारो) न्याय-नीति पर प्रतिष्ठित है परिवार जिसका ऐसा; (सुपइट्ठो) सुप्रतिष्ठ=प्रतिज्ञाशूर; ऐसा (सिरि-कुमरवालो) श्री कुमार-पाल नामक; (राइन्दो) राजेन्द्र; (आसि) था। राज्य करता था।

**टिप्पण**—बाहाए। "बाहोरात्" (३६) इत्याकारोन्तादेशः। वालो। सव्वओ। धरो। वारो। सुपइट्ठो। राइन्दो। "अतो डोविसर्गस्य" (३७) इति विसर्गस्थाने डोः ॥

**नृपस्य वर्णनम्**—(२९-४७)

तुह आणा-ओमालं सिरम्मि धरिमो जहा अणिम्मल्लं।
अम्हे एत्थाम्हेत्थ य इअ भणिउं जो निवेही नओ ॥२९॥

**अन्वयार्थ**—(तुह) आपकी; (आणा ओमालं) आज्ञा रूपी माला को; (सिरम्मि) मस्तिष्क पर; (धरिमो) धारण करते हैं। (जहा) जैसे कि; (अणिम्मल्लं) चम्पक आदि पुष्पों की माला धारण की जाती है। (अम्हे) हम; (एत्थ) अमुक स्थान के हैं; (अम्हेत्थ) हम अमुक स्थान के हैं; (इअ) इस

प्रकार; (भणिउं) निवेदन करके; (जो) जो कुमारपाल; (निवेहिं) अनेक राजाओं द्वारा; (नओ) नमस्कार किया जाता है; अथवा नमस्कार किया गया ।

**टिप्पण**—सुपरिट्ठ सुपइट्ठो । ओमालं अणिम्मल्ल । "निष्प्रती ओत्परी माल्यस्थो र्वा" (३८) निर्प्रती माल्ये स्थाघातौ च यथासंख्यम् ओत्परी वा ॥

तुह हरि-पिआ जइ इमा किंपि पिआ किमवि मेइणी जइमा ।
ता किंति मए त्ति रुसेव जस्स कित्ती गया दूरं ॥३०॥

**अन्वयार्थ** (तुह) आपकी; (हरि-पिआ) विष्णु की पत्नी—लक्ष्मी; (जइ) यदि; (इमा) यह; (किंपि) कुछ भी; (पिआ) पत्नि; (किमवि) कुछ भी, (मेइणी) मेदिनी=पृथ्वी; (जइमा) यदि यह; (ता) वह; (किं) क्या; (ति) ऐसा, (मए) मेरे द्वारा; (ति) ऐसा; (रुसेव) क्रुद्ध होती हुई; (जस्स) जिसकी; (कुमारपाल की) (कित्ती) कीर्ति; (गया) चली गई (दूरं) दूर ।

**टिप्पण**—"आदे:" (३९) आदेरित्याधिकार: क ग च जेत्यादिसूत्रात् प्राग् अविशेषे वेदितव्यः ।"

अम्हे एत्थ अम्हेत्थ । जइ इमा जइमा । "त्यदाद्य" इत्यादिना (४०) त्यदादेव्ययाच्च तयोरेवादे: स्वरस्य बहुल लुक् ॥

किं पि किमवि । "पदाद् अपेर्वा" (४१) पदात् परस्य अपे: आदेर्लुग् वा ॥

कि ति मए त्ति । "इते: स्वरात् त्रतश्च द्विः" (४२) इति पदाद् इते: आदेर्लुक् स्वराच्च तकारो द्विः ।

जो दूसासण-रिउणो आसत्थामस्स राम-सीसस्स ।
वीसामिअ-जस-पसरो स-जसेणं कासवि-तलम्मि ॥३१॥

**अन्वयार्थ**—(जो) जिसने; (दूसासण-रिउणो) दुःशासन के शत्रु भीम की; (आसत्थामस्स) अश्वत्थामा की; (राम-सीसस्स) परशुराम के शिष्य भीष्म की; कीर्ति को; (स-जसेणं) अपने यश-कीर्ति द्वारा (कास वि-तलम्मि) पृथ्वीतल पर; (वीसामिअ-जस-पसरो) उपरोक्त राजाओं के यश के फैलाव को विश्राम दे दिया है, यानें कुमारपाल ने उनके यश को अपने यश के आगे फीका कर दिया है ।

वीसुं वासा-नीसित्त-महि-अले ऊस-मालि-तेअस्स
रज्जे जस्स न कास वि नीसत्तं नीसहत्तं वा ॥३२॥

**अन्वयार्थ**—(ऊस-मालि-तेअस्स) सूर्य के समान असह्य प्रताप वाले उसके; (वीसुं) चारों ओर से; (वासा-नीसित्त)=वर्षा-काल में बादलों की धारा से शस्य-(धनधान्य युक्त=) श्यामला होती हुई (महि-अले) इस पृथ्वीतल पर; (जस्स) जिसके; (रज्जे) राज्य में; (कास वि) कोई भी; (नीस)बिना द्रव्य-वाला; (नीसहत्तं) बिना शक्तिवाला; (न) नहीं है।

**टिप्पण**—दूसासण। आसत्थामस्स। सीसस्स। वीसामिअ। कासवि। वीसुं। वासा। नीसित्त। ऊस। कास। नीसत्तं। नीसहत्तं। "लुप्तयरव०" इत्यादिना (४३) लुप्तयाद्यानां शषसानाम् आदेः स्वरस्य दीर्घः॥

गुण-सामिद्धी पयडा कला-समिद्धी वि पायडा जस्स।
जो दाहिण-पवण-निहो दक्खिण्ण-निही गुणि-वणाण ॥३३॥

**अन्वयार्थ**—(जस्स) जिस राजा के; (गुण-सामिद्धी) गुणों की समृद्धि; (पयडा) प्रसिद्ध है; (कला समिद्धी) ७२ कलाओं की समृद्धि; (वि) भी; (पायडा प्रसिद्ध है। (दक्खिण्ण-निही) अनेक अनुकूलताओं के खजाने रूप; (गुणि-वणाण) गुणवान पुरुष समृद्धि आदि रूप फल के उत्पन्न करने वाले होने के कारण से जो वन रूप हैं; ऐसे वनों के लिए (जो) जो कुमार-पाल राजा, (दाहिण-पवण निहो) अनुकूल पवन के समान है अर्थात् गुणवान् पुरुषों पर राजा की अति कृपादृष्टि रहती है।

**टिप्पण**—सामिद्धी समिद्धी। पयडा पायडा। "अतः समृद्ध्यादौ वा" (४४) इति आदेरस्य दीर्घो वा॥

दाहिण। "दक्षिणे हे" (४५) इति आदेरस्य दीर्घः।" हे इति किम्। दक्खिण्ण॥

सिविणम्मि वारण-बलं सुमिणम्मि अ आस-साहणं जस्स।
दिण्ण-भयं पिच्छन्ता वत्त-करा रिउ-निवा जाया ॥३४॥

**अन्वयार्थ**—(सिविणम्मि) स्वप्न में; (वारण-बलं) हस्ति सेना द्वारा; (सुमिणम्मि) स्वप्न में; (आस-साहणं) अश्व-सेना द्वारा; (दिण्ण-भयं) भयभीत कर दिया है; (ऐसी स्थिति को); (पिच्छन्ता) देखते हुए; (वत्तकरा) जिन्होंने अपने आप ही कर चुका दिया है; ऐसे (रिउ-निवा) शत्रु राजा (जाया) बन गये। अर्थात् शत्रु-राजा मित्र बनकर अपना कर चुकाने लगे।

टिप्पण—सिविणम्मि। दिण्ण। "इः स्वप्नादौ" (४३) इति इत्वम्। आर्षे उकारोपि। सुमिणम्मि। बाहुलकाण्णत्वा भावे न। दत्त।

अंगार-पिक्क-गोल्ले खाए इंगाल-पक्क-कन्दे अ।

तत्त-निडाला रिउणो जस्स णलाडं-तवे तवणे ॥२५॥

अन्वयार्थ—(णलाडं-तवे) अति उग्र तपने पर; (तवणे) सूर्य द्वारा; (जस्स) जिस कुमारपाल के; (तत्त निलाडा) अत्यन्त गरम हो गया है ललाट जिनका ऐसे; (रिउणो) शत्रु-भय के मारे जंगल में रहते हुए (अंगार-पिक्क-गोल्ले) गरमी के कारण से पके हुए जंगली गोला=फल विशेष को; (अ) और (इंगाल पक्क कन्दे) गरमी के कारण से पके हुए कन्द आदि को; (खाए) खाते हैं।

टिप्पण—अङ्गार इंगाल। पिक्क पक्क। निलाड णलाडं। "पक्काङ्गारललाटे वा" (४७) इति वा इत्वम्।

कइमं मज्झिम-लोए रिऊहिँ चत्तं न छत्तिवण्ण-वणं।

नव-छत्तवण्ण-परिमल-मए गए जस्स संभरिउं ॥२६॥

अन्वयार्थ—(मज्झिम-लोए) मर्त्यलोक में; (कइमं) कौन सा (छत्तिवण्ण वणं) 'सप्तछद' नामक जंगल; (रिऊहि) शत्रुओं द्वारा; (न चत्त) नहीं छोड़ा गया है; (जस्स) जिसके; (नव-छत्त-वण्ण) नये सप्तछद जंगल के; (परिमल-मए) गन्ध विशेष से मदोन्मत्त; (गए) हाथियों को; (संभरिउं) स्मरण करके।

टिप्पण—कइमं। मज्झिम। "मध्यमकतमे द्वितीयस्य' (४८) इति अत इत्वम्।

छत्तिवण्ण छत्तवण्ण। "सप्तपर्णे वा" (४९) इति अत इत्वम् वा।

अमयमइओव्व अहवा अमयमयाओ वि समहिओ जस्स।

हर-हीर-पिआहि वि जस-गीअ-झुणी सुव्वए वीसुं ॥२७॥

अन्वयार्थ—(अमयमइओ व्व) साक्षात् अमृत के समान; (अहवा) अथवा, (अमयमयाओ); अमृतरस से; (वि) भी; (समहिओ) अधिक सरस ऐसा है; (जस्स) जिसका यश; उसके (जस-गीअ-झुणी) यश के गीत की ध्वनि; (हर-हीर-पिआहि) महादेव और पार्वती द्वारा; (वि) भी; (सुव्वए) सुनी जाती है; (वीसुं) चारों ओर।

टिप्पण—अमयमइओ अमयमयाओ। "मयट्यइर्वा" (५०) इति आदेरतोः अइः वा।

हर हीर। "ई हरे वा" (५१) इति आदेरतो वा ई: ॥

झुणी वोसुं। "ध्वनिविष्वचोरुः" (५२) इति आदेरस्य उत्वम् ॥

अखुडिय-पडिहा-पसरस्स अग्गओ जस्स दप्प-कण्डू-कण्डूलं।
खण्डिअ-नाण-प्पडिहं बुहं-चुडं गउअ-चण्डं व ॥३८॥

**अन्वयार्थ**—(जस्स) जिसके; (अखुडिअ) अखण्डित; (पडिहा) प्रतिभा के; (पसरस्स) प्रसार के आगे; (जस्स) जिसके; (दप्पकण्डूल) दर्परूप खुजाल; (खण्डिअ-नाणप्पडिहं) खण्डित हो गई है ज्ञान की प्रतिभा जिसकी; ऐसा (बुहं-चूड) बुध-चंड=(गउअ चंड) नील गाय के समान प्रचण्ड, कुमारपाल राजा की बुद्धि के सामने सभी बुद्धिशालियों की बुद्धि हीन कोटि की है। हतप्रभ है।

**टिप्पण**—अखुडिअ खण्डिअ। चुडं चण्डं। "चण्ड खण्डिते णा वा" (५३) इति आदेरस्य णेन सह उत्वम्। गउअ। "गवये वः" (५४) इति वस्य उत्वम् ॥

असि-पुढुमो धणु-पुढमो छुरिया-पढुमो अ सेल्ल-पढमो य।
सव्वण्णु व्व अहिण्णू जो सयल-कला कलावस्स ॥३९॥

**अन्वयार्थ**—(जो) कुमारपाल; (असि पुढुमो) तलवार कला मे सर्व-प्रथम; (धणु पुढमो) धनुषकला में सर्वप्रथम; (छुरिया पढुमो) छुरी विद्या मे सर्व प्रथम; (अ) और, (सेल्ल-पढमो) सेल्ल विशेष अस्त्र में सर्वप्रथम; (सयल-कला-कलावस्स) सकल कलाओ के समूह के (अहिण्णू) अभिज्ञ जान-कार, (जो) कुमारपाल (सव्वण्णु व्व) सर्वज्ञ के समान हैं।

**टिप्पण**—पुढुमो पुढमो पढमो। "प्रथमे पथो र्वा" (५५) इति पथयोः अस्य युगपत् क्रमेण च उर्वा ॥

सव्वण्णु। अहिण्णू। "ज्ञो णत्वे भिज्ञादो" (५६) इति ज्ञस्य णत्वे ज्ञस्यैव अत उत्वम् ॥

उर-सेज्जाइ वि हरिणो सुन्देर घरम्मि सइ सिरी अथिरा।
जस्स गुण-वेल्ली-तरुणो थिरासि भू-वल्लि-पेरन्ते ॥४०॥

**अन्वयार्थ**—(सुन्देर-घरम्मि) सौंदर्ययुक्त घर में; (हरिणो) विष्णु के (उर-सेज्जाइ) हृदयरूपी शैया पर; (वि) भी; (सिरी) लक्ष्मी; (सइ) सदा; (अथिरा) अस्थिर रहती है। किन्तु वही लक्ष्मी (गुणवेल्लि-तरुणो) गुणरूपी लताएँ लगी हुई जिस वृक्ष-रूप राजा कुमारपाल के; (भू वल्लि पेरन्ते) सम्पूर्ण पृथ्वीतल पर;=सम्पूर्ण राज्य में; (थिरासि) स्थिर हो गई है।

टिप्पण—सेज्जा । सुन्देर । "एच्छय्यादौ" (५७) इति आदेरस्य एत्त्वम् ॥

जस्स य दिस-पज्जन्ते अहरिअ-जोण्होक्करो जसोक्केरो ।

अच्छेर-निरीहाण वि अच्छरिअं किं व न करेइ ॥४१॥

**अन्वयार्थ**—(य) और; (जस्स) जिसके; (दिस-पज्जन्ते) दिशा-पर्यन्त; (अहरिअ-जोण्होक्करो) पराभूत कर दिया है चान्दनी के समूह को भी जिसने; ऐसा राजा का यश था; (जसोक्केरो) यश की उत्कृष्टता; (अच्छेर-निरीहाण) आश्चर्य को देखने के प्रति निरपेक्ष ऐसे योगियों को; (वि) भी; (अच्छरिअं) आश्चर्य; (किं व न) कैसे नहीं (करेइ) करता है? अर्थात् योगियो के लिए भी उसका यश आश्चर्य उत्पन्न करने वाला था।

**टिप्पण**—वेल्लि वल्लि। पेरन्ते पज्जन्ते। जोण्होक्करो जसोक्केरो। अच्छेर अच्छरिअ। "वल्ल्युत्करपर्यन्ताश्चर्ये वा" (५८) इति वा आदेरस्य एत्त्वम् ॥

जो आसि बम्भचेर-ग्गहण गुरु पइ-विओअ-विहुरस्स ।

रण्णन्तग्गय - रिउ - अन्तेउर - पोम्मच्छि - लोअस्स ॥४२॥

**अन्वयार्थ**—(जो) जो; (पइ-विओअ विहुरस्स) पति के वियोग से कष्टशील-ऐसी स्त्रियो को), (रण्णन्तग्गय) जंगल में गये हुए; (रिउ अन्तेउर) शत्रु के अन्तःपुर को (पोमच्छि-लोअस्स) पद्म कमल के समान आखों वाली स्त्रियो के लिए, (बम्भचेर-ग्गहण) ब्रह्मचर्य व्रत को ग्रहण कराने मे; (गुरु) गुरु=दीक्षादाता; (आसि) थे।

**टिप्पण**—बम्भचेर। "ब्रह्मचर्ये चः" (५९) इति च स्यात् एत्त्वम् ॥

अन्तेउर। "तोन्तरि" (६०) इति तस्यात एत्त्वम्। क्वचिन्न। रण्णन्तग्गय ॥

पय-पउम नमोक्कारे परोप्परामद्द-तुट्ट-हारेहि ।

जस्स सहाइ निवेहिं ओप्पिअमिव मुत्ति आहरणं ॥४३॥

**अन्वयार्थ**–(पय-पउम-नमुक्कारे) पगरूपी कमल को नमस्कार करने में; (परोप्पर) परस्पर में; (आमद्द) रगड़ खाने से; (तुट्टहारेहिं) टूट गये हैं हार जिनके ऐसे; (निवेहिं) राजाओं द्वारा; (जस्स) जिसकी; (सहाई) सभा में; (मुत्ति आहरणं) मोतियों के आभूषण; (ओप्पिअमिव) मानो अर्पण किये हों।

टिप्पण—पोम्म। "औत् पद्म" (६१) इति आदेरतः ओत्वम्। पद्मछद्म०" (२-११२) इति विश्लेषे न। पउम ॥

नमोक्कारे। परोप्परा। "नमस्कारपरस्परे द्वितीयस्य" (६२) इति अत ओत्वम् ॥

जत्थप्पिय-भू-भारो सुवइ फणी-तत्थ सोवइ हरी वि।

जोन्नत्थ-दिन्न-भारो न उणाइ सयालुओ न उणा ॥४४॥

**अन्वयार्थ**—(जत्थ) जहाँ पर; (अप्पिय) अर्पित—दिया गया; (भू-भारो) पृथ्वी का भार; (सुवइ) सोता है; (फणी) शेषनाग; (तत्थ) वहाँ पर; (सोवइ) सोता है; (हरी वि) हरि भी; राजा भी; (जो) जो; (न्नत्थ) वहाँ पर नहीं; (दिन्न-भारो) दिया है भार जिसने; (न) नहीं; (उणाइ) पुनः; (सयालुओ) आलस्य से नष्ट; (न उणा) पुनः नहीं।

अर्थात् विष्णु भगवान पृथ्वी का सारा भार राजा को सौंपकर निश्चित रूप से शेष नाग पर सोये हुए हैं किन्तु राजा स्वयं पृथ्वी के भार को उठाता हुआ आलस्यरहित हो राज्य कर रहा है।

**टिप्पण**—ओप्पिय जत्थप्पिअ "वार्पौ" (६३) इति अर्पयतेः आदेरस्य ओत्वम् वा ॥

सुवइ सोवइ। "स्वपावुच्च" (६४) इति स्वपितौ आदेरस्य ओत् उच्च ॥

जई सक्को न उण नरो न उणो नारायणो वि सारिच्छो।

जस्स पुणाइ पुणाइ वि भुवनाभय - दाण - ललिअस्स ॥४५॥

**अन्वयार्थ**—(जइ) यदि; (सक्को) इन्द्र; (उण) पुनः; (न) नहीं, (नरो) मनुष्य—अर्जुन; (न) नहीं; (उणो) पुनः; (नारायणो) भगवान विष्णु; (वि) भी; (सारिच्छो) समान;=सदृश (जस्स) जिसके; (पुणाइ वि) फिर भी; (भुवणाभय) संसार के प्राणियों को अभय, (दाण) दाण=देने से; (ललिअस्स) मनोहर रूप वाले। अर्थात् सकल भुवन को अभयदान होने से मनोहर ऐसे राजा के सदृश उस समय इन्द्र अर्जुन और नारायण भी न थे।

**टिप्पण**—न उणाइ न उणा। "नात् पुनर्यादाइ वा" (६५) इति आदेरस्स आ आइ इत्यादेशौ वा। पक्षे। न उण न उणो। केवलस्यापि दृश्यते। पुणाइ ॥

रण्णे अरण्ण-साणाउलम्मि लाऊ-लया हरे-रुण्णं।

जस्सारि-वहूहि तहा अलाउ-फुल्ला जह कयाओ ॥४६॥

**अन्वयार्थ**—(अरण्ण साणाउलम्मि) जंगली हिंस्र-पशुओं द्वारा भरे हुए; (रण्णे) जंगल में; (लाउ-लया हरे) तूंबडियों की बेलाओं से परिपूर्ण घर में—तूंबडियों की लताओं के मंडप में; (जस्स) जिसकी; (अरि-वहूहि) शत्रुओं की बधुओं द्वारा; (तहा-) वैसा—मानो; (अलाउ-कुल्ला) तूंबडियों की लताओं की रक्षा के लिए छोटी-छोटी नदियाँ; (जह) जैसे—मानो; (कयाओं) की हों। तूंबडियों के लता-मण्डप में छुपी हुई राजाओं की शत्रु-पत्नियाँ अश्रुओं से क्यारियाँ भर रही थीं।

**टिप्पण**—रण्णे अरण्ण। लाऊ अलाउ। "वालाब्वरण्ये लुक्" (६६) इति आदेर्लुक्॥

उक्खय,संठविअ निवेण जेण वच्छत्थलाओ हरिणो वि।
उक्खाया भुय-दण्डे निअम्मि संठाविया लच्छी॥४७॥

**अन्वयार्थ**—(उक्खाया) उद्धत और उच्छृंखल होने से पहले उसने शत्रु राजाओं को स्वस्थान से उखाड़ा, बाद में भक्तिपरायण—सेवाभावी बनने पर पुनः उन्हें राज्यगद्दी पर, (संठविअ) संस्थापित किया; ऐसे स्वभाव वाले; (जेण निवेण) राजा कुमारपाल ने; (हरिणो वि) हरि के भी; (वच्छत्थ-लाओ); वक्षस्थल से; (लच्छी) लक्ष्मी को; (उक्खाया) उखाड़ा और (नियम्मि) अपने; (भुय-दण्डं) भुज दण्ड पर; (संठाविया) उसे संस्थापित किया।

**टिप्पण**—तहा जह। उक्खय उक्खाया। संठविअ संठाविया। "वाव्य-योत्खातादावदातः" (६०) इति आदेराकारस्य अत वा॥

**महाराष्ट्रादिदेशागतसूतवचन प्रस्तावः (४८)**

अह कइया वि दिवा-मुह-पत्थावे पत्थवोचिअं तस्स।
अणुरागागय-मरहट्ठमाइ-सूएहिं इअ पढिअं॥४८॥

**अन्वयार्थ**—(अह) अनन्तर; (कइया वि) किसी समय में;—किसी दिन में (दिवा-मुह-पत्थावे) दिन के प्रारम्भ होने के समय में—अर्थात् प्रातःकाल में; (तस्स) उस कुमारपाल राजा के; (पत्थवोचिअं) प्रस्ताव के अनुरूप—अवसर के अनुकूल; (अणुरागागय) राजा के प्रति अनुराग से आकर्षित होकर आये हुए; (मरहट्ठमाइ) महाराष्ट्र आदि देशों के; (सूएहिं) मंगल-पाठकों द्वारा; (इअ) ऐसा; (पढिअं) पढ़ा गया।

**टिप्पण**—पत्थावे पत्थवो। "घञ् वृद्धे र्वा" (६८) इति आदेराकारस्य अत् वा। क्वचित्। अणुरागा॥

मरहट्ठ । "महाराष्ट्रे" (६९) इति आदेराकारस्य अत् । वक्रादित्वाद् अनुस्वारः । बाहुलकाद् अन्यस्यापि व्यञ्जनस्य मः ॥

**सूतोक्ति प्रकारः (४९-७०)**

हय-मसल-तम-पसरो सइ वामो पंसुलाण पच्चूसो ।
सामय-वय-दिन्नग्घो तं व पयट्टो सया पुन्नो ॥४९॥

**अन्वयार्थ** – (हय) नष्ट कर दिया है; (मसल तम-पसरो) घना-अन्धकार का प्रसार जिसने; ऐसा; तथा (सइ) सदा; (पंसुलाण वामो) व्यभिचारियों के प्रति प्रतिकूल; (सामय-वय दिन्नग्घो) जंगल में उत्पन्न धान्य और जल द्वारा दिया जाता है अर्घ्यदान जिसमें; ऐसा; (सया पुन्नो) सदा पुण्यशाली, (पच्चूसो) प्रातःकाल, (पयट्टो) हुआ । (तं व) उसी तरह हे राजन् ! आप अज्ञानरूप अन्धकार का नाश करने वाले हो, व्यभिचारी तथा पापियों के प्रतिकूल चलने वाले सामज, व्रज तथा हाथियों का अर्घ्य-उपहार स्वीकार करने वाले, तथा सदाचार में निरत होने से पवित्र हो ।

**टिप्पण**—मंसल । पंसुला । "मांसादिष्वनुस्वारे" (७०) इति मांस प्रकारेष्वनुस्वारे सति आदेरातोऽत् ॥

सामय । "श्यामाके मः" (७१) इति मस्य आत अत् ।

दिस-कुप्पिसन्त-जस-भर देवय-हरए तुमं स कुप्पासा ।
दिक्खाइरि आ सिक्खायरिएहिं सहोव सप्पन्ति ॥५०॥

**अन्वयार्थ** – (दिस-कुप्पिसन्त-जस भर) सभी दिशाओं में सदाचार के कारण से जिसका यश भार फैल गया है; ऐसा हे राजन् ! (देवय-हरए) देव-घरों मे राजमहल में; (सकुप्पासा) कञ्चुकी के साथ; (दिक्खाइरिआ) दीक्षा-आचार्य; (सिक्खायरिएहि) शिक्षा आचार्यों के; (सह) साथ; (उवसप्पन्ति) समीप आते हैं। अर्थात् आशीर्वाद देने के लिए समीप आते हैं ।

**टिप्पण**— सइ सया । कुप्पिसं कुप्पासा । 'इः सदादौ वा" (७२) इति आत इत्वं वा । दिक्खाइरिआ सिक्खायरिएहिं आचार्ये चोऽच्च" (८३) इति चस्य आत इत्वम् अत्वं च ॥

गय-थीण-तिमिर-केसे खल्लीडे मह-सिरम्मि संघुसे ।
थुवआ हवन्ति लोआ एण्हिं कुण्हाल चित्रस्स ॥५१॥

**अन्वयार्थ**—(गय) चले गये हैं; (थीण) घने सघन (तिमिर-केसे) काले काले केशो के, ऐसे (खल्लीडे) जिनके खल्वाट-गंजापन—जैसा हो गया है

ऐसे (नह-सिरम्मि) आकाशरूप सिर के (सवुत्त) हो जाने पर; (दो अर्थ हैं—(१) राजा के वृद्ध हो जाने से केशों के सफेद हो जाने पर और (२) अन्धकार नष्ट हो जाने से आकाश के साफ हो जाने पर); (सुण्हाल-चिन्धस्स) वृषभ—बैल के चिह्न वाले भगवान ऋषभदेव स्वामी की; अथवा नन्दी बैल रखने वाले महादेव शिव की; (एण्हि) ऐसे समय में: (लोआ) लोग; (थुवआ) स्तुति करने वाले; (हवन्ति) हो जाते हैं—स्तुति करने लग जाते हैं।

टिप्पण—थीण । खल्लीडे । "ई स्त्यानखल्वाटे" (७४) इति आदेरातः ई ॥

थुवआ । सुण्हाल । "उः सास्नास्तावके" (७५) इति आदेरातः उत्वम् ॥

गयणे तुहिणोसारिणि तुहिणासारं पडन्तमगणन्ता ।

उट्ठन्ति वहूओ पुरो अज्जूणं विणय-गेज्झाण ॥५२॥

अन्वयार्थ—(तुहिणो) बर्फ के कणों की; (सारिणि) वर्षावाले; (गयणे) आकाश में; (तुहिणा-सारं) बर्फ के कणों के अंश को; (पडन्तम्) गिरते हुए को; (अगणन्ता) अवगणना=उपेक्षा करते हुए; (विणय-गेज्झाण) विनयपूर्वक अवनत होती हुई—नम्रतापूर्वक झुकती हुई (अज्जूणं) आर्यजन-श्वसुर ज्येष्ठ आदि व्यक्तियों के; (पुरो) आगे; (वहुओ) वधुएँ (उट्ठन्ति) उठती हैं अर्थात् उनकी सेवा में लग जाती हैं।

टिप्पण—तुहिणोसारिणि तुहिणासारं । "ऊद् वासारे" (७६) इति आदेरात् ऊत् वा ॥

अज्जूण । "आर्यायां र्यः श्वश्र्वाम्" (७७) इति र्यस्य आत ऊः ॥
गेज्झाण । "एद् ग्राह्ये" (७८) इति एत्वत् ॥

कुट्टिम-चउ-वारेसु सतिण्हमिण्हि कुणन्ति रमणीओ ।

देरागय-पारावय-रावोट्ठिअ पिअ-परिरम्भं ॥५३॥

अन्वयार्थ—(कुट्टिम-चउ-वारेसु) मणि आदि रत्नों के बने हुए आंगन वाले मकानों में; (सतिण्हम्) अत्यन्त उत्सुक होकर; (इण्हि) इस समय में=प्रातःकाल में; (देरागय) दरवाजों पर आये हुए; (पारावय) कबूतर आदि के; (राव-उट्ठिअ) शब्दों को सुनकर जागृत; (पिअ) अपने पति का; (परिरम्भ) आलिंगन; (रमणीओ) रमणियाँ-पत्नियाँ; (कुणन्ति) करती हैं।

टिप्पण—देरा । "द्वारे वा" (७९) इति आत एत्वं वा । पक्षे वारं ॥ दुआरं । दारं इति प्रयोगद्वयम् अनुक्तमपि ज्ञेयम् ॥

पारेवय-भणिएहिं तेत्तिअमेत्तं रमेसु वेसाओ।
तेत्तियमत्तं मग्गन्ति चलिअ-मेत्ते भुअङ्गम्मि ॥५४॥

**अन्वयार्थ**—(पारेवय-भणिएहिं) कबूतरों द्वारा कूजित मीठे स्वरों द्वारा (अन्य अर्थ में—रति क्रिया के समय में उत्पन्न ध्वनि द्वारा), (वेसाओ) वेश्याएँ (तेत्तिअमेत्तं) उतनी देर तक ही; (रमेसु) रमण क्रिया करती रहीं; (भुअंगम्मि) सर्प के; (अन्य अर्थ में—जार पुरुष के); (चलिअ-मेत्तं) चलने की तैयारी की ओर; (तेत्तिअमत्तं) उतनी देर तक ही; (मग्गन्ति) ढूँढ़ती हैं—

**टिप्पण**—पारावय। पारेवय। "पारापते रो वा" (८०) इति रस्य आत एत्वं वा॥

तेत्तिअमेत्तं तेत्तिअमत्तं। "मात्रटि वा" (८१) इति आत एत्वं वा। बाहुलकात् क्वचिन्मात्रशब्देपि। चलिअ-मेत्तं।

अद्द-नहङ्काण पियाण अल्ल-आलावयाण विलयाओ।
उल्लन्ति अङ्कमंसुअ-ओल्लीहिं ओल्ल-नक्खङ्का ॥५५॥

**अन्वयार्थ**—(अद्द-नहङ्काण) जिन्होंने; (अपनी-अपनी पत्नियों के अंगोपांग पर) अभी-अभी नखों के घाव किये हैं ऐसे; (पियाण) पतियों के; (अल्ल) स्नेह-मिश्रित; (आलावयाण) आलाप-संलाप करने वाले अपने पतियों के; (अङ्कम्) गोद में बैठी हुई होने से गोद को; (ओल्ल) तत्काल में किये हुए अतएव ताजा-अथवा आद्र (नक्खङ्का) नख के घाववाली; (विलयाओ) वनिताएं (असुअ-ओल्लीहिं) आंसुओं की धाराओं से; (उल्लन्ति) भिगोती हैं; सम्पूर्ण रात्रि तक आनन्दोपभोग करके अब वियोग समय को देखकर दुःख से रोती हैं।

**टिप्पण**—उल्लन्ति ओल्ल। "उदोद्वार्द्रे" (८२) इति आदेरातः उत् ओच्च वा पक्षे अद्द। अल्ल।

ओलीहिं। "ओदाल्यां पङ्क्तौ" (८३) इति आत ओत्वम्॥

निअ-ठाण-मीलणं पिक्खिऊण चिन्ता-परा मिउल्लावा।
नीलुप्पल-पेण्डे पिण्डिऊण भसला रुअन्ति व्व ॥५६॥

**अन्वयार्थ**—(नीलुप्पल-पेण्डे) नील कमल के कोशों को=प्रातःकाल होने से कमल के संकुचित हो जाने की स्थिति को; (पिक्खिऊण) देख करके; (भसला) भ्रमर आदि (पिण्डिऊण) कमल कोश में स्वल्प संकोच के कारण से सरक सरककर पास-पास में मिलकर (रुअन्ति) रुदन करते हैं—गुंजारव

करते हैं (व्व) मानो इसी तरह से; (निअ ठाण-मिलनं) अपने मिलन स्थान को =दिन निकल आने के कारण एकान्तता का अभाव हो जाने के कारण से चिन्ता परा) चिन्ता करने लगे हैं; (मिउल्लावा) धीरे-धीरे सूक्ष्म और अस्पष्ट बात-चीत करने लगे हैं।

टिप्पण—मिउल्लावा। "ह्रस्वः संयोगे" इति यथावर्शनं ह्रस्वः ॥

पेण्डे पिण्डिऊण। "इत एद्वा" इति आदेरिकारस्य एत् वा। क्वचित्। चिन्ता।

किंसुअ कुसुमायम्बो केंसुअ-दल-सामलं वियग-मेरं।
दलिऊण अन्धयारं दंसइ पुहवीइ पहमरुणो ॥५७॥

अन्वयार्थ—(किंसुअ-कुसुम-आयम्बो) किंशुक—वृक्ष विशेष-ढाक के फूल के समान लाल सुर्ख; आरक्त (अरुणो) सूर्य; (केंसुल-दल-सामलं) ढाक के पत्तों के समान नीला; (विगय-मेरं) सर्वत्र व्याप्त; (अन्धयारं) अन्धकार को; (दलिऊण) नष्ट करके; (पुहवीइ) पृथ्वी के; (पहम्) पथ को; (दंसइ) बतलाता है।

टिप्पण—किंसुअ केंसुअ। "किंशुके वा" (८६) इति आदेरितः एत्व वा।

मेर।"मिरायाम्" (८७) इति इत एत्वम् ॥

काउं महाविलं अतम-मूसयं कय-पडंसुए सूरे।
लक्ख-हलद्द-बहेडय-रत्ता व्व करा विअम्भन्ति ॥५८॥

अन्वयार्थ—(महाविलं) पर्वत की गहन से गहन कन्दरा को भी; (अतम-मूसयं) अन्धकार रूप चूहे से रहित; (काउं) करने के लिए, (कय-पडंसुए) ग्रहण की है प्रतिज्ञा जिसने; ऐसा (सूरे) सूर्य; (लक्ख-हलद्द-बहेडय-रत्त) लाख, हल्दी, बहेडा आदि के समान लाल; (व्व) समान; (करा) किरणें; (विअंभन्ति) ऊँच-नीची चारों ओर फैलती हैं।

विरइअ-हलद्दि-कन्दाभ दीवओ नव हलिद्दि रत्ता करो।
अहलिद्दा-राओ कामउ व्व पुव्वं भअइ सूरो ॥५९॥

अन्वयार्थ—(विरइअ) रचना की है; (हलद्दी-कंदाभ दीवओ) हल्दी-कंद के समान दीपक की जिसने; ऐसा (नव हलिद्दि-रत्त-करो) नई हल्दी के समान रक्त किरणवाला; (सूरो) सूर्य; (अहलिद्दा-राओ) प्रगाढ़ स्नेहवाले; (कामउ व्व) कामी पुरुष के समान; (पुव्वं) पूर्व दिशा को; (भअइ) जाता

है—उदय होता है। यहाँ कवि ने सूर्य को कामपति की उपमा दी है और पूर्व दिशा को कान्ता के रूप में कल्पना की है।

**टिप्पण**—पुहुवीइ। पह। मूसयं। पडंसुए। हलद्द। हलद्दि। बहेडय। "पथि पृथिवी" इत्यादिना (८८) आदेरितः अकारः। हरिद्रायां विकल्प इत्यन्ये। हलिद्दी। अहलिद्दा।

पिक्कङ्गुअं व निवडइ पिक्किङ्गुअ-धूसरो ससी एस।
सिढिल-करो सढिलङ्गो तित्तिर मइल-प्फुड कलंको ॥६०॥

**अन्वयार्थ**—(सिढिल-करो) मन्द किरणवाला; (सढिलगो) शिथिल अंग वाला—मंद बिंब वाला; (तित्तिरि) लावक-तीतर पक्षी के समान; (मइल) मलिन; (प्फुड-कलंको) स्पष्ट कलंकवाला; (पिक्किङ्गुअ-धूसरो) पके हुए इंगुदफल के समान श्याम-धूएँ जैसा, (एस) यह (ससी) चन्द्रमा, (पिक्कंगुअं) पके हुए अंगुद के; (व) समान; (निवडइ) गिरता है—अस्ताचल की ओर जा रहा है।

**टिप्पण**—पिक्कङ्गुअं पिक्किङ्गुअ। सिढिल सढिल। "शिथिलेङ्गुदे वा" (८९) इति आदेरितः अद् वा। तित्तिर। "तित्तिरौ रः" (९०) इति रस्य इतः अत्।

इअ आसंसन्ति नि-सीह सिहदत्ताइणो दिआ तुज्झ।
वीसं तीसं कप्पे जयसु दुजीहारि-नीसङ्क ॥६१॥

**अन्वयार्थ**—(नि-सीह) हे नृसिंह! (सिहदत्ताइणो) सिहदत्त आदि; (दिआ) द्विज-ब्राह्मण; (तुज्झ) आपको; (इअ) इस प्रकार; (आससन्ति) आशीर्वाद देते हैं; (दुजीहअरि) दो जिह्वा—सर्प के शत्रु गरुड़ के समान (नीसक) निर्भय ऐसे आप; (वीसं) बीस; (तीसं) तीस; (कप्पे) कल्पों तक; (जयसु) जयशील रहें—जीवित रहें।

**टिप्पण**—इअ। "इतौ तो वाक्यादौ" (९१) इति इतितस्य इतः अत्॥

निसीह। वीसं। तीसं। जीहा। "ई जिह्वा" इत्यादिना (९२) जिह्वादिषु इकारस्य तिना ईः। बाहुलकात् क्वचिन्न। सिंहदत्त॥

नीसङ्क। "लुंकि निरः" (९३) इति र लोपे इत ईः॥

अदुइअ-रवि-भा-विइए गयणे जह पाइयम्मि दो वयणं।
कत्थ वि नत्थि समो अहि-निवास लोअम्मि व णुमन्नो ॥६२॥

**अन्वयार्थ**—(अदुइअ) अद्वितीय—अनुपम; (रवि भा) सूर्य की कान्ति;

(विइए) दूसरा—आप जैसे अद्वितीय प्रभा होने के कारण से; (गयणे) आकाश में; (तमो) अंधकार; (कत्थ वि) कहीं पर भी; (नत्थि) नहीं है; (णुमणो) कल्पना है कि—वह अन्धकार डर कर; (अहि-निवास-लोअम्मि) शेष नाग के निवास स्थान—पाताल लोक में चला गया है; (जह) जैसे; (पाइ-यम्मि) प्राकृत में (दो वयणं) दो वचन नहीं है वैसे ही हे राजन् ! आप जैसे सूर्य के समान अन्य राजा रूप सूर्य नहीं है।

टिप्पण—दुजीहा । णुमणो । "द्विन्योरुत्" (९४) इति द्विनि शब्दयोः इत उत् । बाहुलकात् क्वचिद् वा । अदुइअ । विइए ॥ क्वचिन्न । दिआ । निवास । ओत्वम् । दोवयणम् ।

जरढोच्छु-रुई चन्दो निस-पिअ-पावासुओ व्व नो सहइ ।

सच्च-जहुट्ठिल सूरे भू-सग्ग-दुहाइअ-करोहे ॥६३॥

अन्वयार्थ—(सच्च-जहुट्ठिल) हे सत्य युधिष्ठिर ! (भू-सग्ग) पृथ्वी और स्वर्ग में, (दुहाइअ) दो विभागों में विभक्त किया गया है; (करोहे) किरणों का समूह जिसका; ऐसा सूर्य जब तपता हो तब; (जरढोच्छु) पके हुए इक्षु—साठे के समान; (रुई) कान्ति वाला; (चन्दो) चन्द्रमा; (निस-पिअ-पावासुओ व्व) रात्रि रूपी प्रिया का विरही के समान; (नो सहइ) शोभा नहीं दे रहा है। अर्थात् सूर्योदय के कारण चन्द्र फीका लगता है।

टिप्पण—जरढोच्छु । पावासुओ । "प्रवासी क्षौ" (९५) इति आदेरित उत्वम् ॥

धम्मे जहिट्ठिला दोहाइअ-पवहा दुहा वि मल-पटलं ।

ओज्झर-निज्झरिणीसु ण्हाऊण खिवन्ति बम्हाणा ॥६४॥

अन्वयार्थ—(धम्मे जहिट्ठिला) धर्म में युधिष्ठिर; (दोहाइअ) मध्य में प्रवेश करने से विभाजित किया है; (पवहा) प्रवाह; जिन्होंने ऐसे (बम्हाण) ब्राह्मण; (ओज्झर-निज्झरणीसु) नदी-नाला-झरना आदि में (ण्हाऊण) स्नान करके; (दुहा वि) दोनों ही प्रकार के—बाह्य और आभ्यन्तर; (मल-पटलं) मैल के समूह को, (खिवन्ति) दूर करते हैं।

टिप्पण—जहुट्ठिल जहिट्ठिल । "युधिष्ठिरे वा" इति आदेरित उत्वम् ॥

दुहाइअ दोहाइअ । "ओच्च द्विधाकृगः" (९७) इति इत ओत्वम् उत्वं च । क्वचित् केवलस्यापि । दुहा । ओज्झर निज्झर ।" "वा निर्झरे ना" (९८) इति नेन सह इत ओत्वं वा ॥

हय-कम्हार-हरडई.चिक्किण-तिमिरस्स गहिय-पाणीया ।

पाणिय-तडम्मि विप्पा अज्जुण्ण-सूरस्स देन्तग्घं ॥२५॥

**अन्वयार्थ**—(हय) नष्ट कर दिया है; (कम्हार) काश्मीर की; (हर-डइ) हरड के समान; (चिक्किण) प्रगाढ़; (तिमिरस्स) अन्धकार को जिसने; ऐसे (अजुण्ण-सूरस्स) नवोदित सूर्य के लिए; (गहिय-पाणीया) हाथों में ग्रहण किये हुए है पानी को; ऐसे (विप्पा) ब्राह्मण, (पाणिय-तडम्मि) झरना-नदी-आदि के तट पर (देन्तग्घं) जलांजलि देते हैं।

**टिप्पण**—हरडई "हरितक्याम् ईतोऽन्" (९९) इति आदेरीतः अत् ॥

कम्हार। "आत् कश्मीरे" (१००) इति ईत आत् ॥ पाणिअ। "पानी-यदिष्वित्" (१०१) इति ईत इत् ॥ क्वचिद् वा। पाणीय ॥

जिण्ण-तमं मल-हीणा अहूण-तेअं विहिण-अन्न-पहं ।

अविहूणं तूह-दिआ थुणन्ति तित्थे रविं तं व ॥९६॥

**अन्वयार्थ**—(जिण्ण-तमं) नष्ट कर दिया है अन्धकार को जिसने; (सूर्य के पक्ष में) (राजा के पक्ष में—अज्ञान रूप अन्धकार) (अहूण-तेअं) जिसका तेज हीन नहीं है; उग्र तेज वाला; (विहीण अन्न-पहं) अन्याय के पथ को जिसने नष्ट कर दिया है; (अविहूणं) और जो सब राजाओं में उच्च; है अथवा पूर्वांचल पर्वत के शिखर पर स्थित—अतएव उच्च; (रविं) सूर्य की अथवा राजा की (तं व) तुम्हारे ही समान; (तित्थे) तीर्थ स्थानों पर; (मल-हीणा) स्नान किये हुए; (तूह-दिया) तीर्थ स्थानों पर रहे हुए ब्राह्मण; (थुवन्ति) स्तुति करते हैं।

**टिप्पण**—अजुण्ण। "उज्जीर्णे" (१०२) इति ईत उत्। क्वचिन्न। जिण्ण ॥

हीण अहूण। विहाण अविहूणं। "ऊ हीन विहीने वा" (१०३) इति ईत ऊत्वं वा ॥

तूह। "तीर्थे हे" (१०४) इति ईत ऊः ॥ हे इति किम्। तित्थे ॥

पेउसासण-सामिय-दिस-आमेलेः रविम्मि उअ तारा ।

केरिस-एरिसिआओ वहेडयाभाओ नह-पेढे ॥९७॥

**अन्वयार्थ**—(पेउसासण) अमृत ही है भोजन जिनका; ऐसे देवताओं के (सामिय) स्वामी-इन्द्र की; (दिस) दिशा—अर्थात् पूर्व दिशा पर;

(आमेले) जिसने अपना पूरा अधिकार जमा लिया है; ऐसे (रविबिम्बे) सूर्य के उदय ही आने पर; (बहु-पेढे) आकाश रूपी पीठ पर; (बहेडयामाओ) बहेड़ा के फल के समान फीकी आभा—कान्ति वाले इन (तारा) तारामों को देखो; (केरिस-एरिसिआओ) ऐसे कैसे हो गये हैं ?

टिप्पण—पेऊसा । आमेले । केरिस । एरिसिआओ । बहेडया । "एत् पीयूष" (१०५) इत्यादिना एषु ईत एत्वम् ॥

चत्तूण नेड-पीढं नीड-घरा मउलिआ मही-मउड ।

विद्दाय-निद्दमुड्डन्ति घरोवरिं रुक्ख-अवरिं च ॥६८॥

अन्वयार्थ—(मही-मउड) हे पृथ्वी-मुकुट; (मउलिआ) रात्रि में एक ही स्थान पर रहे हुए; (नीड-घरा) घोंसले में रहने वाले पक्षी-वृन्द; (नेड-पीढं) अपने-अपने घोसले को; (चत्तूण) छोड़कर; (विद्दाय निद्द) नींद को छोड़कर के; (घरोवरिं) घरों के ऊपर (च) और (रुक्ख-अवरिं) वृक्षों के ऊपर; (उड्डन्ति) उड़ रहे है ।

टिप्पण—पेढे । पीढं । नेड नीड । "नीडपीठे वा" (१०६) इति ईत एत्वम् ॥

मउलिया । मउड । "उतो मुकुलादिष्वत्" (१०७) इति एषु आदेरुतः अत्वम् ॥ क्वचिद् आत्वमपि । विद्दाय ॥

घरोवरिं अवरिं । "वो परौ" (१०८) इति उतः अत् वा ॥

गरुआ वि गुरुअ-भिउडीहिं वार-वालेहि पडिखलिज्जन्ता ।

बहु-पोरिसा वि पुरिसा निरुद्ध-छीआ इहं एन्ति ॥६९॥

अन्वयार्थ—(गुरुअ-भिउडीहिं) भारी भ्रुकुटि वाले; (वार-वालेहि) द्वारपालो के द्वारा; (पडिखलिज्जन्ता) रोके जाते हुए भी; (वि) भी; (गरुआ) महान्; (बहु-पोरिसा) महान् पराक्रम वाले; (वि) भी (पुरिसा) पुरुष; (निरुद्ध-छीया) अपशकुन को टालने की दृष्टि से छींक को रोकते हुए; (इहं) हे राजन् ! आप के पास; (एन्ति) आते हैं ।

टिप्पण—गरुआ गुरुअ । "गुरौ के वा" (१०९) इति स्वार्थिके के आदेरुतः अत् वा ॥ भिउडीहिं । "इर्भ्रुकुटौ" (११०) इति आदेरुतः इः ॥

पोरिसा । पुरिसा । "पुरुषे रोः" (१११) इति रोरुत इत्वम् ॥

छीआ । "ई क्षुते" (११२) इति आदेरुत ई ॥

मुसल-धर-बाहु-मूसल रइ-सूहव-सुहय तुज्झ मुह-कमलं ।
दट्ठुं ऊसुअ-नयणा पुणो पुणो ऊससन्ति निवा ॥७०॥

**अन्वयार्थ**—(मुसल-धर-बाहु-मूसल) मुसल धारण करने वाले के समान विशाल बाहुरूप मूसलवाले हे राजन् !; (रइ सूहव-सुहय) रति के पति-कामदेव के समान सभी पुरुषों के लिये प्रिय ऐसे हे राजन् !; (तुज्झ) आपके; (मुह-कमलं) मुख रूपी कमल को; (दट्ठुं) देखकर के; (ऊसुअ-नयणा) उत्सुक आंखवाले होते हुए; (पुणो-पुणो) बार-बार; (निवा) राजा; (ऊससन्ति) पुलकित अंगवाले होते हैं।

**टिप्पण**—मुसल मूसल । सुहव सूहय । "ऊद् सुभग०" इत्यादिना (११३) आदेरुत ऊद् वा ॥

**राज्ञः शयनोत्थानम्** (७१)

अणउच्छन्नोच्छाहो रिउ-दूसहो दूसह-प्पयावेण ।
वोक्कन्त-निद्द-पसरो अह राया ओट्ठिओ सयणा ॥७१॥

**अन्वयार्थ**—(अणउच्छन्नोच्छाहो) अखण्डित उत्साह वाला, (दूसह-प्पयावेण) दुःस्सह प्रताप—उग्रतेज के कारण से; (रिउ-दुसहो) शत्रुओं के लिए असह्य; (वोक्कन्त निद्द पसरो) निद्रा के प्रसार का जिसने परित्याग कर दिया है याने त्यक्त निद्रावाला, (राया) राजा कुमारपाल; (अह) उपरोक्त रीति से मगल-पाठ की ध्वनि कान में पड़ने पर; (सयणा) शैय्या से, (ओट्ठिओ) उठा।

**टिप्पण**—ऊसुअ । ऊससन्ति । "अनुत्साहोत्सन्नेत्सच्छे" (११४) इति आदेरुत ऊत् ॥ अनुत्साहोत्सन्न इति किम् । उच्छन्नोच्छाहो ॥

दुसहो दूसह । "लुंकि दुरो वा" (इति रलोपे उत उत् वा ॥

वोक्कन्त । ओट्ठिओ । "ओत् संयोगे" (११६) इति संयोगे परे आदेरुत ओत्वम् ।

**राज्ञः प्रातस्त्यं कृत्यम्** (७२-७३)—

कोऊहल-कुसलेहिं कुऊहलत्थेसु कोउहल्ली वि ।
सण्हाण वि सुण्हयरं परमप्पं थुणिव सव्वण्णुं ॥७२॥

**अन्वयार्थ**—(कोऊहल-कुसलेहिं) कुतूहल करने में कुशल पुरुषों द्वारा कुतूहलता करने पर, (कुऊहलत्थेसु) कुतूहलतापूर्ण वस्तुओं में; (कोउहल्ली

वि) कुतूहलता प्रकट करता हुआ भी; (सण्हाण वि सुण्हयरं) सूक्ष्म से भी सूक्ष्मतर ऐसे; (परमप्पं) परमात्मा; (सव्वण्णुं) सर्वज्ञ प्रभु को; (थुणिय) स्तुति करके।

अमलोव्वीढ-दुअल्लो उव्वूढ-दूऊल-दण्डि-दिन्न-करो ।

सो अत्थाणिं पत्तो दुगुल्ल-उल्लोअ-सोहिल्लं ॥७३॥

**अन्वयार्थ**—(अमल-उव्वीढ-दुअल्लो) स्वच्छ पहिना है कपड़ा जिसने; (उव्वूढ-दुऊल-दण्डि) स्वच्छ कपड़े पहिने हुए दंडी के द्वारा, (दिन्नकरो) पहुंचाई गई है हाथ फैलाकर सहायता जिसको ऐसा; राजा (दुगुल्ल-उल्लोअ-सोहिल्लं) कपड़ों की श्रेष्ठता के कारण से शोभायमान; ऐसे (अत्थाणिं) सभा स्थान को; (सो) वह राजा; (पत्तो) पहुंचा।

**टिप्पण**—कोऊहल कुऊहल कोउहल्ली । "कुतुहले वा ह्रस्वश्च" (११७) इति उत ओत् वा तत्सन्नियोगे ह्रस्वश्च वा ॥

सण्हाण । सुण्ह । "अदूतः सूक्ष्मे वा" (११८) इति ऊतः अत् वा । आर्षे सुहुमेति श्रेयम् ॥

दुअल्लो दुऊल । "दुकूले वा लश्च: द्विः" (११९) इति ऊकारस्य अत्वं वा तत्सिन्नियोगे च लस्य द्विः (आर्षे) दुगुल्ल ॥ अमलोव्वीढ उव्वूढ । "ईर्वोद्व्यूढे" (१२०) इति ऊत ईत्वं वा ॥

**राज्ञोग्रे अन्यनृपस्थितिः (७४)**

तस्स भुमयाइ वसगा अवाउला पेसणिक्क-हणुमन्ता ।

बाल-कण्डु अमाण-भुआ पुरो निविट्ठा निवा नमिरा ॥७४॥

**अन्वयार्थ**—(तस्स) उस राजा के; (भुमयाइ) भ्रूक्षेप मात्र से ही—इशारा करते ही; (वसगा) समस्त कार्य करने वाले; (अवाउला) अवातूल—बहस नहीं करने वाले—आदिष्ट कार्य के करने वाले; (पेसणिक्क-हणुमन्ता) आज्ञा पालने में अद्वितीय हनुमान के समान (बलकंडु अमाण) बल-वीर्य के कारण से स्फूर्तिशील हो रही हैं; (भुआ) भुजाएँ जिनकी; ऐसे (नमिरा) विनयशील (निवा) राजागण; (पुरो) कुमारपाल के आगे; (निविट्ठा) बैठ गये।

**टिप्पण**—भुमयाइ । अवाउला । हणुमन्ता । कण्डुअमाण । "उ भ्रू हनूमत्कण्डूय-वातूले" (१२१) इत्यादिना ऊत उत्वम् ॥

**राज्ञः पार्श्वे चामरधारिवारयुवतिस्थितिः (७५-७८)—**

पासम्मि ठिआ तस्स य महूअ-गोरीओ महुअ-महुर-गिरा ।
वज्जन्त - कणय-नूउर मणि-नेउर वइर - निउराओ ॥७५॥

**अन्वयार्थ**—(तस्स) उस राजा के; (य) और; (महूअ-गोरीओ) मधूक के पुष्पों के समान गौरवर्णवाली; (महुअ) महुए के फूल के समान; (महुर) मधुरः (गिरा) वाणीवाली ललनाएँ; (वज्जन्त) ध्वनि करते हुए; (कणय) सोने के; (नूउर) नूपुरवाली; (मणि) मणि-माणिक्य से निर्मित (नेउर) नूपुरवाली; (वइर-निउराओ) हीरक मणियों से निर्मित नूपुरवाली; (पासम्मि) पार्श्व में आजू बाजू में; (ठिया) बैठ गई ।

कोहण्डि-कुसुम-मउवीओ काम-तोणीर-थोर-कबरीओ ।
निम्मोल्लङ्गय-मण्डिअ-कोप्परया गहिअ-तंबोला ॥७६॥

**अन्वयार्थ**—(कोहण्डि) कुष्माडी-कोहँडे के; (कुसुम) फूल के समान; (मउवीओ) कोमल अंगवाली; (काम) कामदेव के; (तोणीर) बाण रखने का तूणीर—भाता ही हो ऐसी; (थोर-कबरीओ) स्थूल और घणी वेणी—चोटी वाली; (निम्मोल्लङ्गय) अमूल्य-बहुमूल्य भुजबंधों से; (मंडिय) सुशोभित हैं; (कोप्परया) भुजा का मध्यभाग जिनका, ऐसी (गहिय तंबोला) हाथ में ग्रहण किये हुए पान-तंबोल जिनके ऐसी ललनाएँ—

विब्भम-गलोइ-मेघा रम्भा-थोणा-निहोरु-थूणाओ ।
तोणीहविअ सयं चिअ रइ-वइणो तूण-छड्डवणा ॥७७॥

**अन्वयार्थ**—(विब्भम) विभ्रम—नेत्रकटाक्ष रूप विलासिता ही है; (गलोइ मेघा) एक प्रकार की गुड़वेल (अमृता) कड़वी लता विशेष जिनके पास अर्थात् बढ़ते हुए विलासिता रूप मेघ जैसी-विलासिता से सम्पन्न ऐसी ललनाएँ; (रम्भा-थोणा-निह-उरु-थूणाओ) कदलीवृक्ष के स्तंभ के समान मनोहर जंघारूप स्तंभ जिनके; ऐसी (तोणीहविअ) कामदेव के तीरों के रखने के स्थानरूप-तूणीर बनकर; (रइ-वइणो) रति-पति के-कामदेव के; (चिअ) निश्चय करके, (सयं) स्वयं ही; (तूण-छड्डवणा) तूणीर छुड़ा देने वाली; (कामदेव को अब तीर रखने के साधन रूप तूणीर की आवश्यकता नहीं होगी; क्योंकि इन ललनाओं की जांघे ही तूणीर का काम देंगी इस अर्थ में यह शब्द है) ऐसी ललनाएँ थीं ।

सरउग्गय-मय-लञ्छण-सरिच्छ-वयणाओ वार-जुवइओ ।
चामर-दप्पण-हत्था अकास-कन्ती किसङ्गीओ ॥७८॥

**अन्वयार्थ**—(सरउग्गय) शरद् ऋतु में उदय होने वाले (मय-लञ्छण) मृगलंछण वाला याने चंद्रमा; इसके (सरिच्छ) समान; (वयणाओ) वदनवाली मुखवाली (चामर) चँवर (दप्पण) और दर्पण (हत्था) हाथ में लिये हुई (अकास-कन्ती) विस्तृत सुन्दर कान्तिवाली (किसंगीओ) कृशाङ्ग शरीरवाली (वार-जुवईओ) वार—युवतियाँ वेश्याएँ, कुमारपाल के पार्श्व में बैठी हुई थीं।

उपरोक्त चार गाथाओं में महाराजा कुमारपाल के परिपार्श्व में बैठने वाली वेश्याओं का वर्णन है।

**टिप्पण**—महूअ महुअ। "मधूके वा" (१२२) इति उत् वा।

नेउर निउराओ। ,'इदेतौ नूपुरे वा" (१२३) इति ऊत इत् एत् वा। पक्षे। नूउर॥

कोहण्डि। तोणीर। थोर। निम्मोल्ल। कोप्परया। तम्बोला। गलोइ।" ओत् कूष्माडी-तूणीर-कर्पूर-स्थूल-ताम्बूल-गुडूची-मूल्ये" (१२४) षु ऊत ओद् भवति॥

थोणा थूणा। तोणी तूण। "स्थूणातूणे वा" (१२५) अनयोरूत ओत्वं वा भवति। मय। "ऋतोत्" (१२६) आदेर्ऋकारस्य अत्वं भवति॥

**राजानं प्रति द्विजाशीर्वादः (७९-८०)**

मत्तेभ-मउअ-गमणे तम्मि माउक्क-आसणासीणे।
माउक्के अमउत्ते वि सुइ-गिराणं फुड-गिरेहिं ॥७९॥
आसंसिअं दिएहिं किवालु-हिअओ हवेहि महि-वट्ठे।
तुह पिट्ठ-चरा देवा हवन्तु नागा वि पट्ठ-चरा ॥८०॥

[युग्मम्]

**अन्वयार्थ**—(मत्तेभ) मदोन्मत्त हाथी के समान; (मउअ) मृदुगति से; (गमणे) चलने पर और (माउक्क) कोमल; (आसण-आसीणे) आसन पर बैठ जाने पर (तम्मि) राजा कुमारपाल के; आसन पर मृदु गति से चलकर बैठ जाने पर; (सुइ-गिराणं) वेदवाणी के समान; (माउक्के) मृदु स्वर से और;

अमउत्तं (अमृदु स्वर से) अर्थात् ह्रस्व-दीर्घ-प्लुत-कोमल-कठोर आदि विविध रीति से ध्वनिशास्त्र के अनुसार उच्चारण करते हुए; (फुड-गिरेहिं) स्पष्ट वाणी द्वारा—

(दिएहिं) द्विजों से; (आसंसिअं) आशीर्वाद दिया गया कि—" (हे किवालु-हिअओ) हे कृपालु हृदय ! (महि-वट्ठे) पृथ्वी पृष्ठ पर; (हवेहि) तुम रहो (देवा) देवतागण, (तुह) आपके, (पिट्ठ-चरा) पीछे-पीछे चलनेवाले रहें—अर्थात् पृष्ठ-पोषक और विघ्न-निवारक रहें; (नागा वि) नाग जाति के देवता भी, (पट्ठ-चरा) पृष्ठ-पोषक-विघ्ननिवारक अनुयायी; (हवन्तु) होवे ॥८०॥

टिप्पण—अकास किसङ्गीओ । मउअ माउक्क । माउक्के अमउत्ते ।" आत्कृशा-मृदुक-मृदुत्वे वा" (१२७) एषु आदेऋत आद् वा भवति ।

किवालु । हिअओ । "इत् कृपादौ" (१२८) इति आदेः ऋतु ह्रत्वम् ॥

पिट्ठ-पट्ठ । पृष्ठे "वानुत्तरपदे" (१२९) इति ऋत इत् वा । अनुत्तरपदे इति किम् । महि-वट्ठ ॥

**राज्ञस्तिलकधारणम्** [८१]

अह खग्गि-सिंग-पत्ते मसिणे मसणेण चन्दणेण गहे ।
अच्चिअ राय-मयङ्को अकासि तिलयं मियङ्क-निहं ॥८१॥

**अन्वयार्थ**—(अह) अथ—इसके बाद; (खग्गि) गेंडा के (सिंग) सींग से बने हुए; (मसिणे) मुलायम); (पत्ते) पात्र में तथा; (मसणेण) घीसे हुए; (चन्दणेण) चन्दन से; (गहे) ग्रहों की, (अच्चिय) पूजा करके, (रायमयंको) राजाओं मे चन्द्रमा के समान कुमारपाल को; (मिअंक-निहं) चन्द्रमा के समान गोल आकृतिवाला; (तिलयं) तिलक; (आकासि) किया गया ।

**धृष्टाधृष्टलोक विज्ञप्ति निशमनम्** (८२)

मिच्चु-अवमच्चु-हरणे दिजे विसज्जिअ निसामिआ तेण ।
रिउ-सङ्ग भञ्जणेणं धिट्ठाधट्ठाण विन्नत्ती ॥८२॥

**अन्वयार्थ**—(मिच्चु) मृत्यु (अवमच्चु) अपमृत्यु अपमृत्यु—अकालमृत्यु; (हरणे) हरण करने वाले; (दिजे) ब्राह्मणों को; (विसज्जिअ) पुरस्कार आदि द्वारा सन्मान करते हुए प्रस्थान कराकर; (रिउ-संग-भंजणेण) शत्रुओं

के उत्कर्ष को नष्ट करने वाले राजा कुमारपाल ने; (धिट्ठ) धृष्ट-धुष्ट; (अघट्ठाण) अघृष्ट—सरल पुरुषों की; (विन्नत्ती) प्रार्थना—अर्जी; (निसामिआ) श्रवण की।

टिप्पण—सिङ्ग सङ्ग। मसिणे मसणेण। मियङ्को, मिअङ्क। मिच्चु मच्चु। धिट्ठाघट्ठाण।" मसृण मृगाङ्कमृत्युशृङ्गधृष्टे वा (इति एषु ऋत इत् वा।

तिथि श्रवणम् [८३]

पुहवीस-उउ-वसन्तो निवुत्त-तिलय-क्खणो कलि-निअत्तो।
वन्दारय-वुन्दारय-समो पयट्टो तिहिं सोउं ॥८३॥

अन्वयार्थ—(निवुत्त) समाप्त कर दिया है; (तिलय) तिलक; (मंत्रों से मंत्रित विशेषता वाला एक उत्सव विशेष); (क्खणो) क्षण-अवसर-उत्सव जिसने ऐसा; तथा (कलिनिअत्तो) सचराचर प्राणियों को अभयदान देने से दूर कर दिया है कलियुग-(कलिकाल को) जिसने ऐसा; (वन्दारय) देवताओं के (वुन्दारय)इन्द्र; के (देवताओं का भी देवता अतएव इन्द्र); (समो) समान (पुहवीस) पृथ्वी पर प्रफुल्लता प्रसारित करने के कारण से पृथ्वी का स्वामी; (उउ) ऋतुराज (वसन्तो) वसन्त की; (तिहिं) तिथि की (विशेषताओं को) (सोउं) सुनने के लिए (पयट्टो) प्रवृत्त हुआ।

टिप्पण – उउ उदृत्वादौ (१३१) इति आदेर्ऋतः उत्॥

निअत्तो। निवुत्त। वन्दारय वुन्दारय।" निवृत्तवृन्दारके वा" (१३२) इति ऋत उत्वं (वा)॥

राज्ञो मातृगृहगमनम् [८४]

निव-उसहो दिय वसहे पिउ-कम-माउ-हर-आगए तत्तो।
दाणेण तप्पिऊणं संपत्तो माइ-हरयम्मि ॥८४॥

अन्वयार्थ—(तत्तो) तिथि श्रवण करने के पश्चात् (पिउ कम) पितृ-वंश से, (माउहर) मातृवंश से (आगए) आये हुए (दिय-वसहे) द्विजश्रेष्ठों को (दाणेण) दान से (तप्पिऊण) तृप्त कर-सन्तुष्ट करके (निव उसहो) नृप-वृषभ-श्रेष्ठ राजा कुमारपाल (माइहरयम्मि) माता के घर में (संपत्तो) पहुंचा।

टिप्पण—उसहो वसहे। "वृषभे वा वा" (१३३) इति वेन सह ऋत उत् वा॥

पिउ-कम। माउ-हर। "गौणान्त्यस्य" (१३४) (इति) गौणपदस्य योन्त्य ऋत् तस्य उत्।

**मातृणां रत्नादि समर्पणम् [८५]**

माईण अमोसासीसयाण राया अमूस-परिवारो।
अमूसा-वाई-वुट्ठो धण - वुट्ठी रयण-विट्ठिहिं ॥८५॥

**अन्वयार्थ**—(अमूस-परिवारो) जिसके परिवार में कोई भी झूठ नहीं बोलता है; ऐसा (अमूसावाई) जो स्वयं भी कभी झूठ नहीं बोलता है; (अमोसा सीसयाण) जिनके आशीर्वचन कभी मिथ्या नही होते हैं ऐसी, (माईण) माताओं के लिए (धन-वुट्ठी) धन की वृष्टि; (रयण-विट्ठीहि) रत्नों की वृष्टि से (राया) राजा ने (वुट्ठो) वृष्टि की। अर्थात् माताओं को अपार धन प्रदान किया।

**टिप्पण**--माउ-हर माइ-हर। "मातुरिद्वा" (१३५) इति मातुर्गोणस्य ऋतु इत् वा। क्वचिद् अगोणस्यापि।। माईण ॥

अमोसा अमूस अमूसा। 'उदूदोन्मृषि" (१३६) इति ऋत उत् ऊत ओत् ॥

**देवानां देवीनां चाग्रे गीतम् [८६]**

विट्ठ-घण निम्मलेणं देवाणं पिहुय पुहय देवीणं।
तेणादिट्ठं गीअं मुइङ्गि-कर-ताडिय-मिइङ्गं ॥८६॥

**अन्वयार्थ**—(विट्ठ-घण) बरसे हुए बादल के समान; (निम्मलेणं) निर्मल; (तेन) उस राजा द्वारा; (देवाण) देवताओं के आगे; (पिहय) पृथक् रूप से, (मुइगि) मृदग बजाने वाले के; (कर) हाथ से; (ताडिय) ताडित—बजाये हुए; (मिइंग) मृदंग को मृदंग वाजे सहित; (गीअं) गीत को, (आदिट्ठं) गवाया गया।

**कुलजरत्यादीनां वसुसमर्पणम् [८७]**

कुल-जरईणं नत्तिअ-नत्तुअ-सहिआण सो वसु अदासि।
धरणि-विहप्फइ-सीसो बुहप्फइ-सरिच्छा-गुरु-पुरओ ॥८७॥

**अन्वयार्थ**—(नत्तिअ) पौत्र, (नत्तुअ) पौत्री; (सहिआण) साथ में है जिनके ऐसी; (कुल-जरईणं) कुल की वृद्धस्त्रियों के लिए; (धरणि) पृथ्वी पर; (विहप्फइ) बृहस्पति के समान गुण-विद्यावाले गुरु के; (सीसो) शिष्य; (इस कुमारपाल ने) (बुहप्फइ सरिच्छा) बृहस्पति के समान; (गुरु) पुरोहित के; (पुरओ) आगे; (सो) उसने; (वसु) धन-लक्ष्मी; (अदासि) प्रदान किया।

**टिप्पण**—वुट्ठो विट्ठ। वुट्ठी विट्ठीहिं। पिहुय पुहुय। मुइङ्ग मिइङ्ग। नत्तिअ नत्तुअ। "इदुतौ वृष्ट-वृष्टि-पृथङ्-मृदङ्ग-नप्तृके" (१३७) इत्यादिना एषु ऋतुः इकारोकारौ ॥

**लक्ष्मी-पूजनम्** [८८]

सो कुसुम-विण्ट-तिक्ख-प्पणइ बहप्फई व्व लच्छीए।
काही पूअं सह-वेण्ट - फलेहिं स-वोण्ट-फुल्लेहिं ॥८८॥

**अन्वयार्थ**—(कुसुम-विण्ट) फूल के वृन्त—डंठल के समान; (तिक्ख) तीक्ष्ण—तेज, (प्पण्णाइ) बुद्धि से; (सो) उस राजा ने; (बहप्फइ व्व) बृहस्पति के समान; (लच्छीए) लक्ष्मी की, (सह-वेण्ट-फलेहिं) वृन्तसहित फलों से; (स वोण्ट फुल्लेहिं) वृन्त सहित फूलों से; (पूअं) पूजा; (काही) की।

**टिप्पण**—बिहप्फइ बुहप्फइ। "वा बृहस्पतौ" (१३८) इति ऋत इदुतौ वा। पक्षे बहप्फइ॥

विण्ट वेण्ट वोण्ट। "इदेदोद्वृन्ते" (१३९) इति ऋत इत् एत् ओच्च॥

**ततो गुणिनिकां कर्तुं श्रमगृहगमनम्** (८९-९०)

रिद्धि-हय-अणत्त-रिणो-राय-रिसी धणुह-वेअ-राम-इसी।
रिज्जू सहुज्जुएहिं नर-उसेहेहि चलिओ निवइ-रिसहो ॥८९॥

**अन्वयार्थ**—(रिद्धि-हय) अपने द्रव्य से नष्ट कर दिया है; (अणत्त) ऋण से दुखी प्राणियो के; (रिणो) ऋण को जिसने, (धणुह-वेअ) धनुर्वेद में जो; (राम-इसी) रामर्षि परशुराम के समान है; (रिज्जू) सरल भावना वाला; (निवइ रिसहो) नृपति वृषभ—राजाओ मे श्रेष्ठ; (राय-रिसी) राजर्षि ऐसा कुमारपाल; (उज्जुएहिं) सरल स्वभाव वाले; (नर-उसहेहिं) श्रेष्ठ राजाओं के; (सह) साथ; (चलिओ) शान्तिगृह की ओर चला।

**टिप्पण** – रिद्धि। "रिः केवलस्य" (१४०) इति व्यञ्जनेन असंयुक्तस्य ऋतो रिः॥

सो वसन्त-रिउ-सरि-विलासओ तह य गिम्ह-उउ-सरिस-लीलओ।
महुर-तिव्व तेआ सरिच्छाओ सम-हरं दरिअ-आढिअं गओ ॥९०॥

**अन्वयार्थ**—(वसन्त-रिउ) वसन्त ऋतु के; (सरि) समान; (विलासओ) शोभाशील; (तह य) और तथा; (गिम्ह-उउ) ग्रीष्म-ऋतु के; (सरिस) समान;

(लीलओ) क्रीडा-केलि करने वाला; (महुर-तिव्व) मधुर और तीक्ष्ण-तीव्र; (सेअ) तेज में; (असरिच्छओ) असाधारण=शत्रु के प्रति तेज और मित्र के प्रति मधुरता बतलाने में अद्वितीय; (सो) ऐसे गुणवाला—वह राजा; (दरिअ) बलिष्ठ पुरुषो से; (आढिअं) परिवृत घिराये हुए ऐसे; (समहरं) श्रमगृह-अखाड़े में; (गओ) गया—प्रविष्ट हुआ।

टिप्पण—अण रिणो। रिसी राम-इसी । रिज्जू सहुज्जुएहिं। उसहेहि रिसहो। रिउ उउ। "ऋणर्ज्वृषभत्वृषौ वा" (१४१) इति ऋतो रिर्वा॥

सरि। सरिस। सरिच्छ। "दृशेः क्विप्टक्सकः" (१४२) क्विप् टक् सक् इत्येतदन्तस्य दृशो धातोः ऋतो रिरादेशः।

आढिअ। "आदृते ढिः" (१४३) इति ऋतो ढिः॥
दरिअ। "अरिर्दृप्ते" (१४४) इति ऋत अरिः॥

**कुमारपालचरित - प्राकृतद्व्याश्रयमहाकाव्ये**
**प्रथमसर्गस्य अन्वयार्थ भावार्थश्च समाप्तः॥**

□

द्वितीयःसर्गः

# [राज्ञो मल्लश्रमादि]

पङ्कय-केसर-कन्ती अकिलिन्नो हरि-चवेल-चविलो सो ।
स-किसर-किलित्त-दामो निवो पयट्टो समं काउं ॥१॥

**अन्वयार्थ**—(पकय) कमल की; (केसर) पराग के समान; (कंती) कान्तिवाला अर्थात् स्वर्णवत् वर्णवाला; (अकिलिन्नो) अक्लान्त—पसीने से रहित—थकावट से रहित; (हरि चवेल) सिंह के तल प्रहार;(थप्पड) के समान; (चविलो) चपेट लगाने वाला; (स-किसर) केसर से परिलिप्त है; (दामो) माला जिसकी ऐसा; (सो) वह; (निवो) राजा; (समं) श्रम-मल्ल-कला का अभ्यास; (काउं) करने के लिए; (पयट्टो) प्रवृत्त हुआ।

**टिप्पण**—अकिलिन्नो। किलित्त। "लृत इलिः क्लृप्तक्लृन्ने" (१५४) इति लृत इलिः ॥

गुरु-मण थेणो रेवइ देअर-सीअ-दि अराण बल-थूणो ।
काही विअणं सो सयमवेअणो मल्ल-सेलाण ॥ २ ॥

**अन्वयार्थ**—(गुरु-मण-थेणो) अपनी कला-कौशल से—गुरु के चित्त को चुराने वाला—आकर्षित करने वाला; (रेवइ-देअर) रेवती रानी के देवर श्री कृष्ण; (सीअ-दिअराण) सीता के देवर लक्ष्मण—दोनों के; (बल-थूणो) बल को चुराने वाला—अर्थात् लक्ष्मण के समान बलशाली; (सयम्) स्वयं तो; (अवेयणो) वेदना-थकावट का अनुभव नहीं करता हुआ ऐसा; (सो) उस राजा कुमारपाल ने; (मल्ल-सेलाण) उच्च शरीर वाले होने के कारण से—शैल-समान मल्लों के लिए; (विअणं) वेदना-थकावट; (काही) उत्पन्न कर दी।

**टिप्पण**—केसर किसर। चवेल चविलो। देअर दिअराण। वियणं वेअणो। "एत इद्वा वेदना-चपेटा-देवर-केसरे (१४६) इति एत इत् वा।

थेणो थूणो। "ऊः स्तेने वा" (१४७) इति एत ऊत् वा। सेलाण। "ऐत एत्" (१४८) इति आद्यैकारस्य एत् ॥

तस्स सणिच्छर-पिउणो व्व कर-हयं सिंधवं व मल्ल-कुलं ।
घम्म जल्लोल्लं जायं स-सिन्न-परसेन्न-महिअं पि ।। ३ ।।

**अन्वयार्थ**—(सनिच्छर) शनिश्चर के; (पिउणो) पिता—सूर्य देव के; (व्व) समान; (कर) किरणों से, (हयं) ताडित होता हुआ; (सिन्धवं) सैंधव-नमक के समान ही; (स) अपनी; (सिन्न) सेना द्वारा, (पर) अन्य की, (सेन्न) सेना द्वारा; (महिअं) प्रशंसनीय; (मल्ल-कुल) ऐसा मल्लों का समूह, (पि) आश्चर्य है कि तस्स उस राजा के; (कर) हाथो से; (हय) चोट खाता हुआ (घम्म) पसीने की, (जल) बून्दों से; (ओल्लं) गीला; (जायं) हो गया था ।

**टिप्पण**—सणिच्छर । सिन्धव । "इत् सैन्धव शनैश्चरे" (१४९) इति ऐत इत्वम् ।।

सिन्न सेन्न । "सैन्ये वा" (१५०) इति ऐत इत् वा ।।

मुर-वेरिओ व्व रक्खिअ-दइच्च-कय वइर-दइवय-सइन्नो ।
गेण्हीअ स तत्थ धणु कइलास-सओ व्व केलासे ।।४।।

**अन्वयार्थ**—(मुर-वेरिओ) मुर नामक राक्षस के शत्रु—श्री कृष्ण-नारायण के; (व्व) समान, (रक्खिय) रक्षा की गई है; (दइच्च) दैत्यों के साथ; (कय) किया है; (वइर) वैर जिन्होंने, ऐसे (दइवय) देवताओं के; (सइन्नो) सेना की जिसने; (तत्थ) उस श्रम घर मे; (स) उस राजा ने; (केलासे) कैलास पर्वत पर, (रहने वाले); (कइलास सओ) कैलास के शिव—महादेव के; (व्व) समान; (धणु) धनुष को; (गेण्हीअ) ग्रहण किया ।

**टिप्पण**—दइच्च । दइवय । सइन्नो । "अइर्दैत्यादौ च" (१५१) इति सैन्ये दैत्यादिषु च ऐतः अइः ।।

वेरि वइर । कइलास केलासे ।" वैरादो वा" (१५२) इति ऐतः अइर्वा ।।

देव्वालक्खो दइवे वि असंको महि-अले नव-दइव्व ।
उच्चअ - नीचअ - लक्खे अणचुक्को अवर-धीर-हरो ।। ५ ।।

**अन्वयार्थ**—(देव्व-अलक्खो) दैव-भाग्य के समान लक्ष्य निर्धारित नहीं करने वाला; (दइवे वि असंको भाग्य द्वारा घटित घटनाओं के प्रति निर्भय रहने वाला; (महि-अले) पृथ्वीतल पर; (नव दइव्व) इष्ट प्रतिपालक और दुष्ट-निग्राहक—ऐसा होने के कारण से अपूर्व दैव भाग्य के समान; (उच्चअ) ऊँचे; (नीचअ) नीचे; (लक्खे) लक्ष्य—भेदन में; (अणचुक्को) नहीं चुकने वाला; (अवर) शत्रु के, (धीर) धैर्य का; (हवो) हरण करने वाला ऐसा कुमारपाल था ।

अन्नन्नं जोहेहिं सलाहिओ तह बुहेहिं अन्नोन्नं ।
मण-हर-सरलिअ कुञ्चिअ-उहय-पवट्ठो सरो वुट्ठो ॥६॥

**अन्वयार्थ**—(जोहेहिं) योद्धाओं द्वारा; (अन्नन्नं) परस्पर में; (सलाहिओ) जिनकी प्रशंसा की गई है—ऐसा; (तह) तथा; (बुहेहिं) पंडितों द्वारा भी; (अन्नोन्न) परस्पर जिस राजा की प्रशंसा की गई है ऐसा; (मणहर) मनोहर; (सरलिअ) जिसको पहले तो सीधा किया हो; ऐसे; (उहय) उभय—दोनों; (पवट्ठो) प्रकोष्ठ वाला—(हाथ की कलइ-) धनुष पर तीर चढ़ाते समय जो क्रिया—संकोच आदि की, की जाती है उससे मनोहर ऐसा राजा कुमारपाल; (सरे-) बाणो की; (वुट्ठो) वृष्टि की (वृष्टि करता था)।

**टिप्पण**—देव्वा दइवे दइव्वं । "एच्च दैवे" (१५३) इति ऐत एत् आइश्चादेशः ॥

उच्चअ । नीचअ । "उच्चैर्नीचैस्यअः" (१५४) इति ऐतः अअः धीर । "ईद्धैर्ये" (१५५) इति ऐत ईत् ॥

कण्णो वलिअ-मणोहर-पउट्ठ-कर-सररुहेण नर-वइणो ।
लम्बिर-नाल-सरोरुहवतंसिओ व्वासि संधाणो ॥७॥

**अन्वयार्थ**—(संधाणे) धनुष पर तीर चढाने पर; (वलिअ) कान तक खीचने पर पीछे गया हुआ; (मणोहर) मनोहर; (पउट्ठ) मणिबंध; (पहुंचा-कलई वाला); (कर) हाथ रूप; (सररुहेण) कमलद्वारा; (नर-वइणो) राजा का; (कण्णो) कान; (लबिर) लम्बी; (नाल) नालवाला—तंतुवाला; (सरोरुह) कमल से; (अवतंसिओ) विभूषित; (व्व) जैसा; (आसि) था।

कय-दुज्जण-सिर-विअणं सिर-कुसुमाहरणमणसिरो-विअणं ।
आवज्जिअ वाइअ आउज्जस्सादिट्ठ - पुड - दलणं ॥८॥

**अन्वयार्थ**—(कय) किया है; (दुज्जण) दुर्जन के; (सिर) मस्तिष्क में; (विअणं) वेदना-संताप; (सिर) मस्तिष्क में; (कुसुम) पुष्प; (आहरणम्) आभरण-अलंकार—(मस्तिष्क पर केवल फूलों का अलंकार ही रक्खा है शेष भार-बवाल् उतार लिये गये हैं ऐसे; (अ-सिरो वियणं) सिर की वेदना जिससे दूर हो ऐसा गायन; (आवज्जिअ) बाजा बजानेवाले के द्वारा; (वाइअ) बजाये हुए; (आउज्जस्स) मृदंग ढोल आदि बाजा के; (अदिट्ठ) नहीं देखे हुए; (पुड) पुट-बाजु के; (दलणं) दल देना—भेद देना (अदृष्ट बाजु पर शब्द सुनकर तीर द्वारा उसे भेद देना—(क्रिया आगे गाथा में)—

**टिप्पण**—अथेर। एक्कार। वेइल्ल। "स्थविरविचकिलायस्कारे" (१६६) इति पूर्ववद् एद्वा। विअइल्ल इत्याद्यपि दृश्यते॥

केल कयलेहिं। "वेत: कर्णिकारे" (१६८) इति पूर्ववद् एत् वा॥ कन्नेरयं। कण्णिआरय। "वेत: कर्णिकारे" (१६८) इति पूर्ववद् एत् वा।

ऐ-अइ। 'अयौ वैत् (१६९) इति पूर्ववद् ऐत् वा॥

नोमालिअ-नोहलिआ सोमालाहिं सलोण मोहाहिं।
तस्सोब्भमिअं लवण सुकुमाल-मऊह-मालिस्स॥१४॥

**अन्वयार्थ**—(नोमालिअ) सुगन्धित फूल वाली लता विशेष; (नोहलिया) नूतन और अल्प फलवाली लता विशेष के समान, (सोमालाहिं) सुकुमार स्त्रियों द्वारा, (सलोण) लावण्ययुक्त, (मोहाहिं) कान्तिवाली स्त्रियों द्वारा, (सुकुमाल) सुकुमार, (मऊह) मयूख=कान्ति; (मालिस्स) धारण करने वाले, (तस्स) उस राजा के ऊपर से; (लवण) नमक; (उब्भमिअं) उतारा गया। अर्थात् लवण द्वारा स्वागत सन्मान करने की विधि विशेष सम्पन्न की गई।

**टिप्पण**—बोर। पोप्फल। पोरं। नोमालिअ। नोहलिआ। "ओत् पूतर-बदर नवमालिका-नवफलिका-पूगफले।" इत्यादिना (१७०) पूर्ववत् ओत्।

चोद्दह-मणु-चोग्गुणओ भुवण-चउद्दहय-वइ-चउग्गुणओ।
चोत्थे वि जुगे ति-पुरिस-चउत्थओ लक्खिओ स तया॥१५॥

**अन्वयार्थ**—(चोद्दह-मणु) चतुर्दश मनुओ से भी, (चोग्गुणओ) चारगुणा अधिक हितकारी, (भुवन चउद्दहयवइ) चौदह भुवनों के पति—भगवान विष्णु से भी, (चउग्गुणओ) चारगुणा अधिक-रक्षक; (चोत्थे) चतुर्थ, (जुगे) युग में; (वि) भी—कलियुग में भी, (ति-पुरिस) ब्रह्मा-विष्णु-महेश इन तीनो पुरुषो मे (यह कुमारपाल), (चउत्थओ) चौथा पुरुष के समान; (लक्खियो) देखा गया अर्थात् ब्रह्मा-विष्णु-महेश की कोटिका मालूम पड़ा (स) वह राजा; (तया) उस समय में लवण उतारने के समय में।

सागोक्खल-खइरोहल-लोहाऊखल-सिला-उलूखलया।
चक्केण तेण दलिआ चोव्वारं पुण चउव्वारं॥१६॥

**अन्वयार्थ**—(साग-उक्खल) सागवान वृक्ष का ऊखल मुद्गर विशेष जैसा, (खइर उउहल) खैर-वृक्ष विशेष का ऊखल, (लोह उऊखल) लोह का

निर्मित ऊखल; (सिला-उलूखल) शिला पत्थर का बना हुआ ऊखल; (तेण) उस राजा द्वारा; (चक्केण) चक्र से; (चोव्वार) चार चोटों द्वारा; (चउव्वारं) चार बार; (दलिआ) चूर्ण किये गये; तोड़े गये (ऊखल नष्ट करना कोई शकुन विशेष प्रतीत होता है)।

इअ रइअ-कोउहल्लो कोहल-दक्खेहिँ तक्किओ राया।
उअ कण्हो एस इहं भरहेसर-चक्कवट्टीओ ॥१७॥

**अन्वयार्थ** - (इअ) इस प्रकार, (रइअ) रचा है; (कोउहल्लो) कुतूहल जिसने, (धनुष तलवार, शक्ति-चक्र आदि कला-कौशल के प्रदर्शन से; (राया) वह राजा कुमारपाल, (कोहल-दक्खेहिँ) कौतुक-क्रिया में प्रवीण पुरुषो द्वारा; (तक्किओ) ऐसी तर्कणा की गई, ऐसा समर्थन किया गया कि (इहं) इस पृथ्वी पर, (एस) यह राजा, (कण्हो) कृष्ण का अवतार है, (उअ) अथवा; (भरहेसर) भरतेश्वर; (चक्कवट्टी) चक्रवर्ती है; (ओ) अथवा—

**टिप्पण**—सोमालाहिं सुकुमाल। सलोण लवण। मोहाहिं मऊह। चोद्दह चउद्दहय। चोग्गुण चउग्गुणओ। चोत्थे चउत्थओ। सागोक्खल खइ-रोहल लोहोऊखल उलूखलया। चोव्वारं चउव्वारं। कोउहल्लो कोहल। "न वा मयूख लवण चतुर्गुण-चतुर्थ-चतुर्दश-चतुर्वार-सुकुमार कुतूहलोदूखलोलू-खले" ॥ (१७१) इत्यादिना पूर्ववद् ओत् वा।

ओआरे अवयारक्खमेण तेणावसद्द-रहिएण।
सेल्ल-कला-अवयासे भग्गो जोहाण ओ आसो ॥१८॥

**अन्वयार्थ**—(ओ आरे) अपकार करने पर; (अवयारक्खमेण) उसका उचित दण्ड देने मे समर्थ,-(राजा का विशेषण) (अवसद्द-रहिएण) अपशब्द से रहित अर्थात् यश-कीर्ति वाले; (तेण) उस राजा से, (सेल्ल-कला) बर्च्छी-भाले की कला की; (अवयासे) स्फूर्ति में, (जोहाण) योद्धाओ की; (ओ आसो) स्फूर्ति, (भग्गो) नष्ट कर दी; (—उन्हें हतोत्साह कर दिया)

पन्नास-पलोऽवगओ किं जलणो उअ रवि त्ति तस्स करे।
उवहसिय परसुरामस्सूहसिए-पवी महा-परसू ॥१९॥

**अन्वयार्थ**—(पन्नास-पलो) पचास पल (—तोल विशेष) जितना भारी; (उहसिअ पवी) वज्र का भी जिसने तिरस्कार कर दिया है; ऐसा (महा-परसू) बड़ा भारी फरसा=शस्त्र विशेष; (उवहसिअ-परसुरामस्स) अपने शौय

वीर्य के कारण से जिसने परशुराम को भी तिरस्कृत कर दिया है ऐसे; (राजा के) (तस्स करे) उस; (राजा) के हाथ में; (अवगओ) ठहरा हुआ; (=फरसा) (किं) क्या; (जलणो) साक्षात् अग्नि ही है; (उअ) अथवा; (रवि) सूर्य; (है) (त्ति) ऐसा मालूम पड़ता था।

**टिप्पण**—उअ ओ। ओ आरे अवयार। अवयासे ओ आसो। "अवापोते" (१७२) इति पूर्ववद् ओत् वा॥ वत्रचिन्न। अवसद्द। अवगओ। उअ रवि॥

उवहसिअ रामस्सूहसिअ रामस्सोहसिअ। "ऊच्चोपे" (१७३) इति पूर्ववद् ऊत् ओच्च वा॥

सूल-कलाइ णुमण्णो सीर-निसण्णो अ किन्ति-पंगुरणो।
सो किच्ची पाउरणं सिइ पावरण च अणुकाही॥२०॥

**अन्वयार्थ**—(किन्ति-पंगुरणो) सर्वश्रेष्ठ कीर्तिवाला, (सो) वह; (कुमारपाल) (सूल-कलाइ) त्रिशूलकला में; (णुमण्णो) निमग्न; (किच्ची-पाउरण) शिवजी की, (अणुकाही) अनुकृतिवाला प्रतीत होता था; (सीर-णिसण्णो) हलरूप आयुध में निमग्न; (सिइ-पावरण) बलभद्र की, (अणुकाही) अनुकृतिवाला प्रतीत होता था।

**टिप्पण**—णुमण्णो णिसण्णो। 'उमो निषण्णे" (१७४) इति पूर्ववद् उमादेशो वा॥

पङ्गुरणो पाउरण पावरण। "प्रावरणेऽङ्ग्वाऊ" (१७५) इति पूर्ववद् अंगु आउ इत्येतौ आदेशौ वा॥

**बहिर्गमनार्थं कुञ्जरायनम्**—

अह राय-वाडि अत्थं नाओ आणाइओ रिउ-घरट्टो।
पुहइ-सईसेणागरु-सुरहि-मओ सुकुसुम-सुतारो॥२१॥

**अन्वयार्थ**—(अह) शस्त्र अभ्यास के पश्चात्; (राय-वाडि अत्थ) राज्य-कार्य से बाहिर जाने के लिए, (नाओ) हाथी; (आणाइओ) लाया गया; (अथवा मंगाया गया हाथी के विशेषण) (रिउ-घरट्टो) शत्रुओं को पीस डालने वाला (अगरु सुरहि-मओ) अगरु उबटन विशेष की सुगन्धियुक्त मदवाला; (सुकुसुम-सुतारो) सुकुसुम नामक आभूषण और सुतारा नामक आभूषण से युक्त; (पुहइ सईसेण) पृथ्वी के इन्द्र से अर्थात् कुमारपाल से—उक्त विशेषणों वाला हाथी मंगाया गया।

कुञ्जर वर्णनम्—

सचमर-कण्णो विदुरो गय-पावो देव-दुज्जओ विजणे ।
सो धरिओ पर-वारण-कवलण-नत्त चर-चरित्तो ॥२२॥

**अन्वयार्थ**—(सचमर-कण्णो) जिसके कानों पर चँवर ढल रहे हैं; (विदुरो) महावत की आज्ञा पालन करने से विचक्षण; (गय-पावो) कुचेष्टा से रहित; (देव-दुज्जओ) देवताओं से भी जो जीता नहीं जा सकता है; ऐसा दुर्जेय (पर वारण कवलण) दूसरो के द्वारा रोका जाता हुआ भी खाद्य पदार्थों को; (नत्त चर) अपनी सूंड़ द्वारा जो चर लेता है, अथवा निशाचर-राक्षस के समान जो खाता है; (चरित्तो) ऐसा आचरणवाला; (विजणे) एकान्त स्थान में निर्जन स्थान में; (सो) (उपरोक्त सभी विशेषणों वाला) वह हाथी (धरिओ) स्थित किया गया ।

बालक्क-मुहो सुहकर-गज्जी सुहयर-गई अ इअ थुणिओ ।
जग आगमिओ बहुतर-आअमिअ-कलेहिं बहुअरयं ॥ २३ ॥

**अन्वयार्थ**—(बालक्क-मुहो) बाल सूर्य के समान देदीप्यमान मुखवाला; (सुहकर-गज्जी) जिसकी गर्जना सुखकर है—प्रिय है; (सुहयर गई) जिसकी गति—चाल सुखकर-अच्छी है; (अ) और, (जग-आगमिओ) जगत में विख्यात; (बहुतर-आअमिअ कलेहिं) अनेक कलाओं में कुशल पुरुषों द्वारा; (बहु अरयं) जो हाथी अत्यन्त प्रशंसित है, (इअ) इस प्रकार विविध रीति से, (थुणिओ) स्तुति किया हुआ ऐसा वह हाथी था ।

जलयर-अजलचर-वई जस्स य इन्धं रुसा-पिसाजी सो ।
सुहदेसु वि सुहओ जइ एरिसओ सो उण सुरेहो ॥२४॥

**अन्वयार्थ**—(जलयर-अजलचर-वइ) जलचर और स्थलचर प्राणियों में जो स्वामी समान था अर्थात् सर्वश्रेष्ठ था; (जस्स य) और जिसका; (इंधं) चिन्ह; (रुसा-पिसाजी) क्रोध से चाण्डाल याने अत्यन्त क्रोधी था; (सुहदेसु) सुख देने वाले पदार्थों में; (वि) भी; (सुहओ) जो अधिक सुख देने वाला है; (जइ) यदि (सो) वह हाथी; (एरिसओ) ऐसा गुणशाली है तो; (सो) वह; (उण) क्या पुनः; (सुरेहो) ऐरावत है ।

अमुगो कर-आउंटण-रम्मो चाउँड काउँए तुट्ठे ।
लब्भइ अणिउँसय-सुरहि-जउँण-जल-बहुल-मय-वट्टो ॥२५॥

**अन्वयार्थ**—(अमुगो) अमुक-ऐसा हाथी; (कर आउण्टण-रम्मो) सूंड को समेटते समय जो रमणीय प्रतीत होता है; (अणिउँत्तय-सुरहि) माधवी-लता के फूलों की गध के समान है गन्ध जिसके मद-प्रवाह की; (जउँण जल-बहुल) यमुना के जल के समान है कृष्णवर्ण जिसके-मद-प्रवाह का; (मय-वट्टो) ऐसा मद-प्रवाहवाला, (चाउँड-काउँए) चन्द्रशेखर शिवजी के, (तुट्ठे) सतुष्ट होने पर; (लब्भइ) प्राप्त हुआ करता है।

**टिप्पण**—"स्वराद् असयुक्तस्यादेः (१७६) अधिकारोयम्। यद् इत उर्ध्वम् अनुक्रमिष्यामः तत् स्वरात् परस्य असयुक्तस्य अनादेर्भवतीति वेदितव्यम् ॥

राय-वाडि अत्थ। नाओ। अणाइणो। रिउ। पुहइ-सईसेण। मओ। 'क ग च जतदपयवां प्रायो लुक्" (१७७ इति कादीनां लुक् ॥ प्रायोग्रहणात् क्वचिन्न ॥ अगरु। सुकुसुम-सुतारो। समचर। विदुरो। गय-पावो। देव। विजणं ॥ स्वराद् इत्येव। नत्त चर ॥ असयुक्तस्येति किम्। दुज्जओ। चरित्तो वालक्क। गज्जी। क्वचित् संयुक्तास्यापि नत्तंचर ॥ अनादेरिति किम्। विदुरो। गय। विजणे। पर। जग। यस्य तु जत्वम् आदौ वक्ष्यते। समासे तु वाक्यविभक्त्ययपेक्षया भिन्नपदत्वमपि। तेन तत्र यथादर्शनम् उभय-मपि। सुहकर सुहयर। आगमिओ आअमिअ। बहुतर बहुअर। जलयर अजलचर। सुहदेसु सुहओ ॥ क्वचित् आदेरपि। इंधं। उण। क्वचित् चस्य जः। पिसाजी। अमुगो इत्यादिषु तु "व्यत्ययश्च" (४.४४७) इति कस्य गत्वम्। आर्षे अन्यदपि दृश्यते। आउण्टण। अत्र चस्य टः ॥

अइमुतय-बिंदु-करो अइमुत्तय-गोर-दन्तओ एस।
सविमो खु साव-चविओ तिअस-गय-वरो महि-अलम्मि ॥२६॥

**अन्वयार्थ**—(अइमुतंय-बिन्दु-करो) माधवी लता पर स्थित जल-बिन्दुओ के समान जिसके सूंड़ पर जल बिन्दु रूप मोती स्थित है—ऐसा; (अइमुत्तय गोर दन्तओ) माधवीलता के समान गौरवर्णवाले है दंत-जिसके ऐसा; (एस) यह हाथी, (खु) निश्चय ही; (सविमो) हम कल्पना करते हैं कि (साव-चविओ) किसी ऋषि विशेष के श्राप अभिशाप से भ्रष्ट हुआ; (तिअस-गय-वरो) यह देवहस्ति गजराज, (महि अलम्मि) पृथ्वीतल पर अपने अभिशाप-काल को व्यतीत कर रहा है।

**टिप्पण**—चाउँण्ड-काउँए। अणिउँत्तय। जउँण। "यमुना" इत्यादिना (१७८) मस्य लुक्। लुकि च मस्य स्थाने अनुनासिकः ॥ क्वचिन्न। अइमुंतय अइमुत्तय ॥ साव। "नावर्णात् पः" (१७९) इति न पस्य लुक् ॥

अच्छ-कय-कण्ण-चिउओ महु-पिङ्गल-नयणओ मयङ्क-नहो ।
पियइ व लायण्णमिमो अखुज्ज-कुम्भो पर-गयाण ॥२७॥

**अन्वयार्थ**—(अच्छ-कय-कण्ण चिउओ) मलरहित अर्थात् स्वच्छ हैं केश-कान-और चिबुक याने होठ के नीचे का अवयव जिसका; ऐसा (महु-पिंगल-नयणओ) मधु के समान पीली हैं आँखें जिसकी; (मयंक-नहो) चन्द्रमा के समान निर्मल हैं नख जिसके; (अखुज्ज-कुम्भो) उन्नत है दोनों गंड स्थल जिसके; (इमो) यह ऐसा हाथी; (पर-गयाण) मानों अन्य हाथियों के; (लायण्णम्) लावण्य को; (पियइ व) पीता है ऐसा प्रतीत होता है; अर्थात् लावण्य में यह सर्वश्रेष्ठ है ।

खप्पर-खीलय-कुज्जय-कुसुम-समा जस्स सेल-खम्भ-दुमा ।
रुन्धिअ-खासिअ-छिक्कं पिक्खिज्जइ मय-गलो एस ॥२८॥

**अन्वयार्थ**—(जस्स) जिस हाथी के लिए; (सेल-खम्भ) पत्थर का स्तम्भ और; (दुमा) बड़े-बड़े वृक्ष; (खप्पर) घड़े की ठीकरियों-खप्पर के समान थे, (खीलय) सामान्य खीले के समान थे; और (कुज्जय-कुसुम-समा) शत-पत्रिका नामक वृक्ष विशेष फूलो के समान थे; (एस) यह हाथी; (मय-गलो) मदोन्मत्त होता हुआ; (पक्खिज्जइ) ऐसा प्रतीत होता है; मानो (रुन्धिअ खासिअ-छिक्क) खाँसी और छींक को भी भयभीत दर्शनार्थियो द्वारा रोक ली गई है ।

**टिप्पण**—गय-कय । नयणओ । मयङ्क । लायण्ण । गयाण । "अवर्णो य श्रुतिः" (१८०) कगचज० इत्यादिना (१७७) लुकि शेषो अवर्णः अवर्णात् परो लघुप्रयत्नतरय श्रुति. । अवर्ण इति किम् । चिउओ ।। अवर्णादित्येव । तिअस ।। क्वचिद् भवति । पियइ ।।

अखुज्ज । खप्पर । खीलय । "कुब्ज०" (१८१) इत्यादिना एषु कस्य खः । पुष्प चेत् कुब्जाभिधेय न । अपुष्प इति किम् । कुज्जय ।। आर्षेन्यत्रापि । खासि अ ।।

मरगय-गेन्दुअ-सरिसालि-गुच्छ-गण्डे निवो इहारूढो ।
जयइ चिलाए व्व परे सिरिकण्ठ-किराय-वीरे वि ॥२९॥

**अन्वयार्थ**—(मरगय) मरकत मणि के; (गेन्दुअ) गेन्द के; (सरिस) समान; (अलि-गुच्छ) भ्रमरों का समूह है जिस पर ऐसे; (गण्डे) गंड-स्थल वाले हाथी पर; (इह आरूढो) बैठा हुआ=चढ़ा हुआ=(निवो) राजा; (सिरिकण्ठ)

महादेव; (किराय) भील-जंगली जाति के; (वीरे वि) वीरों के समान; (जैसे महादेवजी ने भीलवीरों को हरा दिया था; वैसे ही कुमारपाल राजा भी; (परे) अपने शत्रुओं को; (चिलाए व्व) भीलों के समान ही; (जयइ) जीत लेता है।

**टिप्पण**—मय-गलो। मरगय। गेन्दुअ। "मरकत०" (१८२) इत्यादिना कस्य गः। कन्दुके तु आद्यस्य गः।

चिलाए। "किराते चः" (१८३) इति कस्य चः। कामरूपिणि तु नेष्यते। किराय॥

जिअ-घण-सीभर-गंगा-सीहर-चन्दिम-सुसीअ-सीअरओ।
फलिहामल - वीस - नहो निहस - प्पह चिहुरओ एस॥३०॥

**अन्वयार्थ**—(जिअ) जीती है शोभा जिसने; (घण-सीभर) बादलों के बूँदों की; (गंगा सीहर) गंगा के जल-बिन्दुओं की; अतएव जो (चन्दिम) चन्द्र की चाँदनी के समान; (सुसीअ) सुशीत-अत्यधिक ठण्डी; (सीअरओ) मद बिन्दुओं वाला है; और जो (फलिह-अमल-वीस-नहो) स्फटिक के समान निर्मल बीस नखवाला है; ऐसा; (एस) यह हाथी; (निहस-प्पह) कसौटी पर खींची हुई रेखा की प्रभा के समान; (चिहुरओ) केश वाला; यह हाथी है।

**टिप्पण**—सीभर सीहर। "शीकरे भहौ वा" (१८४) इति कस्य भहौ वा। पक्षे सीअरओ॥

चन्दिम। "चन्द्रिकायां मः" (१८५) इति कस्य मः॥

फलिह। निहस। चिहुरओ। "निकषस्फटिकचिकुरे हः" (१८६) इति कस्य हः। चिहुरः सस्कृतेपीति दुग्गः (दुर्ग.)।

पिहु-जहणो साहु-मुहो सरिसव-खल-कडुअ-सलिलओ अथिरो।
इह एसो निव-जोग्गो पत्तो चोत्थि मयावत्थं॥३१॥

**अन्वयार्थ**—(पिहु-जहणो) बड़ी-बड़ी जंघाओं वाला;=विकट-कमर-वाला, (साहु-मुहो) सुन्दर=मांगलिक मुखवाला; (सरिसव खल) सर्षप=सरसों के खल के समान; (कडुअ-सलिलओ) कटु-मदरूप जल बिन्दुवाला; (अथिरो) निरन्तर हाथ-कान-सूँड़ हिलाता रहने से अस्थिर; (चोत्थि) चतुर्थ—चौथी (मयावत्थं) मद झरने के कारण से दिखलाई पड़ने वाली—अवस्था स्थिति को; (पत्तो) प्राप्त हुआ; (इह) यहां पर; (एसो) यह हाथी; (निवो-जोग्गो) राजा के बैठने योग्य; हो गया।

राज्ञः कुञ्जरारोहणम्—

निव-धम्म-रओ अह सो नभम्मि पाउस-घणोव्व पिधमिन्दो ।
अपहिं व आसणाओ असङ्कलं तं समारूढो ॥३२॥

**अन्वयार्थ**—(अह) इसके बाद; (निव धम्म-रओ) सज्जन-पालन-दुष्ट-दलनरूप राज्य-धर्म में रत; (पिधमिन्दो) स्वर्ग से भिन्न पार्थिव-इन्द्र; (आसणाओ) आसन से; (अपिहं) अपृथक् स्वरूप वाला—अर्थात् सिंहासन जैसा ही; (हाथी का विशेषण) (असंकलं) साकलों से नहीं बन्धा हुआ; (तं) उस हाथी पर; (सो) वह राजा; (समारूढो) चढ़ करके; अच्छी तरह—इस प्रकार बैठा; जैसे कि (नभम्मि) आकाश में; (पाउस-घणो व्व) वर्षाऋतु का बादल स्थित होता है ।

**टिप्पण**—नहो । प्पह । पिहु । जहणो । साहु । मुहो । "ख घ थ ध भाम्" इति खादीना हः । असयुत्तस्यंव । चोत्थि । मयावत्थ ॥ प्रायइत्येव । सरिसव-खल । अथिरो । निव-धम्म । नभम्मि ॥ पि घ अपिहं । "पृथकि धो वा"(१८८) इति थस्य धो वा ॥

असङ्खल । "शृंखले खः कः" (१८९) इति खस्य कः ॥

आरूढस्य राज्ञो वर्णनम् (३३-३९)

पुन्नाम -दामवन्तो पुलोइओ भामिणीहि पउरीहिं ।
छालक-देव-तेओ सुहओ रइ-सूहवो व्व निवो ॥३३॥

**अन्वयार्थ**—(पुन्नाम-दामवन्तो) सुरपर्णिका लता के फूलों की माला-वाला; (छालक-देव-तेओ) अग्नि-देवता के समान शत्रुओं के लिए तेजवाला; (सुहओ) सुभग—सभी को प्रिय लगने वाला; ऐसा (निवो) राजा कुमारपाल; (पउरीहिं) नगर-निवासिनी; (भामिणीहि) महिलाओं द्वारा; (रइ-सुहवो) रति-सुभग अर्थात् (कामदेव व्व) के समान; (पुलोइओ) उत्कण्ठापूर्वक देखा गया ।

**टिप्पण**—पुन्नाम । भामिणीहि । "पुन्नागभागिन्योर्गो मः" (१९०) इति गस्य मः ॥ छालङ्क । "छागे लः" (१९१) इति गस्य लः ॥

इन्दो दुहओ चन्दो वि दूहवो आसि खेअर-वहूणं ।
तस्सि दिट्ठे तइआ मणि-खसिआहरण-खइअङ्गे ॥३४॥

**अन्वयार्थ**—(तइआ) उस समय में; (मणि-खसि आहरण) मणियों से विभूषित—आभरणों द्वारा; (खइ अगे) विभूषित शरीर वाले; (तस्सि) उस

राजा के; (दिट्ठे) दर्शन करने पर; (खेअर-वहूणं) खेचर-जाति के देवताओं की वधुओं का; (इन्दो) राजा याने इन्द्र भी; (दुहओ) अप्रिय प्रतीत हुआ; (चन्दो वि) चन्द्रमा, (भी) (दूहओ) अप्रिय; (आसि) (प्रतीत हुआ) था।

सूहवो। दूहवो। "ऊत्वे दुर्भगसुभगे वः" (१९२) इति गस्य वः॥ ऊत्व इति किम्। सुहवो। दुहओ॥

वेस-पिसाओ मुत्ती-पिसल्लओ अ झडिलो अजडिलो य।
खट्टङ्ग-घण्ट भूसो निवारिओ न जह अटइ पुरो॥३५॥

**अन्वयार्थ**—(वेस-पिसाओ) फटे, पुराने, विवर्ण, विकृत आदि बीभत्स वेश धारण करने के कारण से पिशाच समान; (मुत्ती-पिसल्लाओ) भयंकर दिखाई पड़ने वाला; आकृति से पिशाच समान, (अ) और; (झडिल्लो) सारे शरीर पर जिसके बाल उग रहे है ऐसा, (अजडिलो) सिर मुंडा रखा है=(साफ कर रखा है-) जिसने; ऐसा; (य) और; (खट्टग-घंट भूसो=) जिसने शिवजी का अस्त्र विशेष (त्रिशूल) और घटा धारण कर रखा है; ऐसा=(कापालिक विशेष=) शकुन की दृष्टि से; (निवारिओ) चलने फिरने से रोक दिया गया था, (जह) जिससे कि; (पुरो) राजा के आगे-आगे; (न अटइ) नही घूम सके।

**टिप्पण**—खसिअ खइअङ्गं। पिसाओ पिसल्लओ। "खचित-पिशाचयोश्चः सल्लौ वा" इत्यादिना (१९३) यथा संख्यं सल्लौ वा॥

झडिलो अजडिलो। "जटिले जो झो वा" (१९४) इति जस्य झो वा। "टोड" (१९५) इति टस्य डश्च॥ स्वरादित्येव। घण्ट॥ असंयुक्तस्येत्येव। खट्टङ्ग॥ क्वचिन्न। अटइ॥

**चतुर्भिः कलापकम्**—

केढव-सयढारि-सढाल-विक्कमो फलिह-विमल-नेवच्छो।
चविला-फालिअ कुम्भो नहं व चविडाइ फाडन्तो॥३६॥

**अन्वयार्थ**—(केढव-सयढ) कैटभ-शकट-नामक दो राक्षसों के; (अरि) शत्रु; (सढाल) सटावाला—(केशों के गुच्छोंवाला) अर्थात् नृसिंह—अवतार के समान=(नृसिंह अवतार ने कैटभ-शकट राक्षसों का वध किया था); (विक्कमो) विक्रम-वाला; (फलिह-विमल-नेवच्छो) स्फटिक के समान निर्मल वेश-भूषावाला; (चविला=) चपेट से ही; (फालिअ) फाड़ डाला है; (कुम्भो) गंड स्थल हाथी का; जिसने; ऐसा बलशाली (व) मानो; (नहं) आकाश को; (चविडाइ) चपेट से ही; (फाडन्तो) फाड़ता हुआ हो (ऐसा दृश्यमान)—

अङ्कोल्ल-तेल्ल-णिद्धो असढो पिहुडो कलाण सयलाण ।
लहु-जढर-पिढर-पडियार-पाडणत्ताण कय-कीला ॥३७॥

**अन्वयार्थ**—(अङ्कोल्ल-तेल्ल-णिद्धो) अंकोठ वृक्ष के फलों से निर्मित तेल से स्निग्ध अर्थात् अक्ष—शरीरवाला; (असढो) धूर्तता से—शठता से रहित; (सयलाण कलाण) सभी कलाओं का, (पिहुडो) पात्र अर्थात् ज्ञाता; (लहु-जढर) लघु पेटवालों के—भूख से लघुता प्राप्त पेटवालों के; (पिढर) प्रतिकार रूप याने भूख को मिटाने के लिए उपायरूप; (पडियार) भोजन=लाभ; (पाडण)=उस भोजन के लिए इधर-उधर घूमने से उत्पन्न; (त्ताण) पीड़ा-दुख की निवृत्ति को, (कय-कीलो) क्रीड़ापूर्वक ही जिसने सम्पन्न कर दी है—ऐसा राजा—अर्थात् भूखों को जिसने सहज ही में आनन्दपूर्वक भोजन-दान कर दिया है और उनका भोजनार्थ भ्रमण मिटा दिया है।

दढ-खन्ध-हार-नाडिं पेल्लंतो निबिड-कच्छ-नालिमिभं ।
उव्वेलु - अचुच्छङ्कुस - अछुच्छ - वेणूहि आवरिओ ॥३८॥

**अन्वयार्थ**—(दढ-खंध) मजबूत कंधो पर; (हार-नाडिं) हार के समान पड़ा हुआ है बड़ा भारी रस्सा जिस पर; ऐसे उस हाथी को; (निबिड-कच्छ) सघन कांख=बगल-मे=पिरोइ हुई है (नालिम्) बड़ी भारी रस्सी जिसके; ऐसे; (इभं) हाथी श्रेष्ठ को, (पेल्लन्तो) प्रेरणा देता हुआ=राजा का विशेषण; (उव्वेलु) ऊंचे उठा रक्खे हैं अपने अपने वंश के झंड रूप दण्ड जिन्होंने ऐसे, (अचुच्छङ्कुस) अतुच्छ अंकुशवाले; ऐसे; (अछुच्छ-वेणूहि) अतुच्छ वेणव आदि अनेकानेक राजाओं द्वारा; (आवरिओ) चारों ओर से घेरा हुआ=राजा कुमारपाल हाथी पर आरूढ़ था।

अणतुच्छ-टयर-कप्पूर-धूव-महमहिअ-टसर - सूइ-वत्थो ।
कुमर-विहारे पत्तो टूवर-पडिहार - दिन्न - करो ॥३९॥

**अन्वयार्थ**—(अणतुच्छ) महान्; (टयर) तगर=सुगन्धित द्रव्य विशेष; (कप्पूर-धूव) कपूर और धूप द्रव्य से; (महामहिअ) सुगन्धित अतएव महान्; (टसर) उच्चकोटि के धागे से निर्मित; अतएव, (सूइ) शूची=पवित्र; (वत्थो) वस्त्रवाला; (टूवर) जिस आदमी के या तो दाढी-मूँछ उगी ही नहीं है या उगने पर जिसने दोनों का सर्वथा मुण्डन करा लिया है; ऐसा व्यक्ति विशेष; (पडिहार) प्रतीहार-भृत्य-विशेष द्वारा; (दिन्न) सहायतार्थ बढ़ा दिया है—प्रदान कर दिया है; (करो) हाथ जिसने उस राजा के लिए; ऐसा राजा;

(कुमर-विहारे) स्वयं कुमारपाल द्वारा निर्मित श्री पार्श्वनाथ मन्दिर में, (पत्तो) पहुंचा।

**टिप्पण**—केढव। सयढारि। सढाल। "सटाशकटकैटभे ढ:" (१९६) इति टस्य ढ: ॥ फलिह। "स्फटिके ल:" (१९७) इति टस्य ल: ॥

चविला चविडाइ। फालिअ फाडन्तो। "चपेटापाटौ वा" (इति चपेटायां ण्यन्ते पाटौ धातौ च टस्य लो वा ॥

जढर। "ठो ढ:" (१९९) इति ठस्य ढ: ॥

अङ्कोल्ल। "अङ्कोठे ल्ल:" (२००) ॥

पिहडो पिढर। "पिठरे हो वा रश्च ड:" (२०१) इति ठस्य हो वा तत्संनियोगे च रस्य ड ॥

कीलो। "डो ल:" (२०२) इति डस्य ल: ॥क्वचिद् वा। नाडि नालि। क्वचिन्न। निविड ॥

उव्वेलु वेणूहि। "वेणौ णो वा" (२०३) इति णस्य लो वा ॥

अच्चुच्छ अतुच्छ अणतुच्छ। "तुच्छे तश्चछौ वा" (२०४) इति तस्य च छौ वा ॥

टसर। टयर। टूवर। "तगरत्रसरतूवरे ट" (२०५) इति तस्य ट: ॥

**राजनामांकितस्य जिनमन्दिरस्य तत् प्रविशतो राज्ञश्च वर्णनम् (४०-५१)**

सुपइट्ठं सुपडायं वेडिस-दल-नील-भित्ति - गब्भिणयं।
अणिउँतय-फुल्ल-हरं बालाण वि रुण्ण-अवहरणं ॥४०॥

**अन्वयार्थ**—(सुपइट्ठ) शास्त्रीय-विधि-विधानो के साथ स्थापित; अथवा अति प्रसिद्ध; (सुपडायं) चचल-सुन्दर ध्वजा वाला; (वेडिस-दल) बेंत के समूह के समान, (नील) नील मणियों से निर्मित है; भित्ति) दीवालें जिसकी, तथा (गब्भिणयं) स्पर्श तल भाग-उर्ध्व भाग, शिखर आदि सभी भाग जिस मन्दिर के नील-मणियों से निर्मित है।

(अणिउँतय-फूल्ल-हरं) जिस मन्दिर में पूजा के लिए आवश्यक माधवी लता आदि के फूलों को रखने का घर भी बनाया गया है; अशान्ति और विघ्न के निवारणार्थ वहाँ यहाँ तक व्यवस्था है कि; (बालाण) बालकों का; (वि) भी; (रुण्ण-अवहरणं) रोना भी रोक दिया गया है। अर्थात् हँसते हुए बालकों के चित्र वहाँ पर चित्रित हैं।

वाहुत्तरि-कल-सालाहुण-सम-जणमलसि-कुसुम-कय-सोहं ।

पलिल-सिर-पलिअ-पीवल-करण घुसिणुमीस-ण्हवण-जलं ॥४१॥

**अन्वयार्थ**—(पलिल-सिर) सघन बाल वाले सिर के समान—अथवा वृद्ध-अवस्था के कारण से मलीन बाल वाले सिर के अथवा-फूल आदि से विभूषित बाल वाले सिर के; (पलिअ) सफेद अथवा मलीन बालों को पीवल=पीत-वर्णीय—स्वर्ण-वर्णीय; (करण) करने के लिए जहाँ पर; (घुसण) कुंकुम—केशर से, (उमीस) मिला हुआ; (ण्हवण) स्नान करने का; (जलं) जल रक्खा हुआ है।

पीअल-धाउ-विणिम्मिअ-विहत्थि-पम-माहुलिंग-आहरणं ।

भरह-जिण-भवण-सरिसं मङ्गल-वसहिं-सिरी-वसइ ॥४२॥

**अन्वयार्थ**—(पीअल-धाउ) पीली धातु—स्वर्ण-से; (विणिम्मिअ) विनिर्मित=बनाया हुआ; (विहत्थि-पम) बारह अंगुल का—प्रमाण युक्त (माहुलिंग) मातुलिंग—सम्भवत: धूप देने का पात्र विशेष; वही है एक प्रकार का (आहरणं) आभूषण जहाँ पर; (भरह जिण भवण सरीस) भरत-जिन के भवन के समान; (मगल-वसहि) कल्याण—मंगल का स्थान रूप; (सिरी-वसइं) शोभा का अथवा लक्ष्मी का स्थान रूप वह मन्दिर था।

अध काहल-भव्व-जणं सिढिलिअ-कलि-कालम सढिलाणंदं ।

नयरस्स मेढिभूयं पढमं तित्थं व पुढवीए ॥४३॥

**अन्वयार्थ**—(अध) अथ; (काहल) पाप से डरने वाले ऐसे; (भव्व-जणं) भव्य-मनुष्यों से परिपूर्ण; (सिढिलिअ) निरन्तर धर्म-आराधना करने से शिथिल बना दिया है; (कलिकालम्) कलियुग को; जहाँ पर (असढिलाणन्दं) (अगाढ़ आनन्द है जहाँ पर; (नयरस्स) नगर का; (मेढि-भूय) नाभिरूप-केन्द्र-रूप; (पुढवीए) पृथ्वी पर; (पढमं तित्थ व) प्रथम तीर्थ के समान ऐसा वह मन्दिर प्रतीत होता था।

पुहवी निसीढ-तम-भर-निसीहिणीनाह-सरिस-जिण-बिम्बं ।

खण्डिअ-डम्भिअ-दम्भं उद्दण्ड-सुवण्णमय-डण्डं ॥४४॥

**अन्वयार्थ**—(पुहवी) पृथ्वी पर; (निसीढ) अर्धरात्रि में; (तम-भर) अन्धकार के भार के लिए—प्रगाढ़ अन्धकार के विनाश करने में; (निसीहिणीनाह) चन्द्रमा के; (सरिस) समान=जनता के मिथ्यात्वरूप अन्धकार

को नष्ट करने के लिए; (जिण) जिनेश्वर का; (बिम्बं) प्रतिमा=ऐसी प्रतिमा वाला वह मन्दिर था; (खडिअ) नष्ट कर दिया है; (डंभिअ) दम्भ-शील पुरुषों का; (दंभं) दम्भ=कपट जहाँ पर; (उद्दण्ड) बहुत ऊँचा है; (सुवण्णमय-डंड) सोना का दंड जिस मन्दिर का ऐसा।

डरिआणं दर-हरणं डड्ढागरु-दड्ढ-धूव-सुह-गन्धं ।
अहि-डसण-डट्ठ-सरणं दसण-कवाडंसु-दट्ठ-तमं ॥४५॥

**अन्वयार्थ**—(डरिआणं) डरे हुए प्राणियों के; (दर-हरणं) डर को जो दूर करने वाला है; (डड्ढागरु) जलाये हुए अगरु=सुगन्धित द्रव्य विशेष; (दड्ढ-धूव) और जलाये हुए धूप की सुह-गंध; शुभगन्ध जहाँ पर फैल रही है; (अहि-डसण) सर्प के दांतों द्वारा (डट्ठ) काटा हुआ भी जहाँ पर, (सरणं) शरण में आने पर बच जाता है। (दसण) हाथी-दांतो के बने हुए; (कवाडंसु) किवाड़ों की किरणों से; (दट्ठ-तमं) जहाँ पर अन्धकार भी नष्ट हो जाता है।

डाहत्त-दाह-हरणं कय-डोहलयाण पुन्न-दोहलयं ।
कडण-मइ-चत्त-कदणं डब्भंकुर-नील-नीलमणि ॥४६॥

**अन्वयार्थ**—(डाहत्त-दाह-हरणं) संसार रूप दाह से दुःखी जीवों के दाह को भी जो दूर करने वाला है; (कय-डोहलयाण) जिनको किसी भी प्रकार की आकांक्षामय भावना उत्पन्न हुई है; उनकी; (पुन्न-दोहलय) भावना को जो पूर्ण करने वाला है; (कडण मइ) हिंसामय बुद्धि वालों की भी; (चत्त-कदण) कुबुद्धि को जो दूर कर देने वाला है;=(जहाँ पर कुत्सितों की कुबुद्धि भी नष्ट हो जाया करती है;) (डब्भकुर) दर्भघासविशेष के अंकुर के समान; (नील) नीली-नीली; (नीलमणि) आँगन में=नील मणियाँ जहाँ पर जड़ी हुई हैं।

दब्भग्ग-मई दर-डोलिर सीसमदोलिरेण हिअएण ।
दूरमहरं डसन्ते डहमाणो मिच्छदिट्ठिजणे ॥४७॥

**अन्वयार्थ**—(दब्भग्ग-मई) दर्भ अंकुर के अग्रभाग के समान तीक्ष्ण बुद्धिवाला; (=राजा का विशेषण=) (दर-डोलिर-सीसम्) जैसे डर से किसी का सिर हिलता रहता है=(कांपता रहता है—;) वैसे ही प्रतिभा की रमणीयता को देख करके आश्चर्य और आनन्द से जिसका सिर हिल

रहा है; कांप रहा है; इस तरह से वह राजा (अदोलिरेण-हिअएण) निश्चल हृदय के साथ; मन्दिर में प्रविष्ट हुआ; (दूरम्) मिथ्यात्वी प्रतिमा की कुछ भी हानि नहीं पहुंचा सकने के कारण से दूर से ही; (अहरं, अधर को— (होठ को;) दांतों से; (डसन्ते) काटते हुए; (मिच्छादिट्ठि जणे) मिथ्यादृष्टि-वाले मनुष्यों को; (डहमाणो) संताप उत्पन्न करता हुआ राजा कुमारपाल मन्दिर में प्रविष्ट हुआ।

थुणिरो देवं बारह-रवि - तेअं - भत्ति - गग्गर - गिराए।
धम्म-करि-करलि-हूओ कयलि-मिऊ कोह-अपलित्तो ॥४८॥

**अन्वयार्थ**—(बारह-रवि-तेअं) बारह सूर्य के समान तेजशाली; (देवं) वीतराग प्रभु को; (भत्ति) भक्तिपूर्ण; (गग्गर) गद्गद्; (गिराए) वाणी से; (थुणिरो) स्तुति करने लगा। हे; (धम्म-करि) धर्मरूप हाथी के लिए; (करलि-हूओ) पताका रूप=(ध्वजारूप) ईश्वर! (कयलि-मिउ) आप कदलि—केले के समान कोमल हैं; (कोह अपलित्तो) आप क्रोध से अप्रदीप्त हैं—अर्थात् शान्त हैं।

दोहल-दुउणिअ-धाराकयंब - धूलीकलम्ब - कण्टइओ।
धिप्पिर-सुवण्ण-दिप्पिर-तणु-कन्ति - कवट्टिअन्न - पहो ॥४९॥

**अन्वयार्थ**—(दोहल-मनो) कामना विशेष की पूर्ति के कारण से=वृक्ष-सम्बन्ध मे समय पर वृष्टि हो जाने के कारण से; (दुउणिअ) द्विगुणित वृद्धि को प्राप्त हुए; (धाराकयब) वर्षाऋतु में फूलनेवाले कदम्ब वृक्ष के समान; (धूलीकलम्ब) ग्रीष्म-ऋतु में फूलनेवाले कदम्बवृक्ष के समान; (कंटइओ) वृक्ष-सम्बन्ध में कांटा वाला; राजा के सम्बन्ध में उत्पन्न हो गया है रोमांच—जिसको; ऐसा; (धिप्पिर-सुवण्ण) चमकने वाले स्वर्ण के समान; (दिप्पिर-तणु) चमकता है जिसका शरीर; (कन्ति) उस शरीर की कान्ति ने; (कवट्टि-अन्न-पहो) दूसरी सभी प्रभाओं को;=कांतियों को हीन बना दी है—कुत्सित कर दी है; (ऐसो कान्तिवाला वह राजा था।)

चइउं निव-कउहाइं निसढाइ-निवाड़ धम्म-सिक्खाओ।
ओसहमोसढिओ इव दिन्तो स निसीहअं काउं ॥५०॥

**अन्वयार्थ**—(निव-कउहाइं) छत्र-तलवार, मुकुट-चामर आदि राजचिन्हों को; (चइउं) छोड़ करके; अलग करके (ओसढिओ) औषधि का ज्ञाता; (ओसहं) जैसे औषधि को प्रदान करता है वैसे ही; (इव) तरह;

(निव्वढाइ-निवाण) निषध आदि राजाओं के लिए; (धम्म-सिक्खाओ) धर्म की शिक्षाएं—धर्मोपदेश; (दिन्तो) देता हुआ; (स) उस कुमारपाल ने; (निसीहिअ) पापकारी क्रियाओं का परित्याग; (काउं) करके प्रविष्ट हुआ।

निअ-नामङ्किअ-णिअ-कित्तणयं अनिला व्व अतुल-थामेण।

पज्जलिआनल-तेओ भत्तीइ तओ पइट्ठो सो ॥५१॥

**अन्वयार्थ**—(अतुल-थामेण) महान् बल-शाली होने के कारण से; (अनिला व्व) हवा के समान; (पज्जलिअ-अनल-तेओ) प्रज्वलित अग्नि के समान तेजस्वी; (निअ-नामकिअ) अपने नाम पर बनाये हुए "कुमार-विहार" ऐसे; (णिअ-कित्तणयं) अपनी यशकीर्ति के लिए बनाये हुए; उस मन्दिर में; (तओ) इसके बाद; (भत्तीइ) भक्ति के साथ; (सो) वह राजा, (पइट्ठो) प्रविष्ट हुआ।

**टिप्पण**—पडिहार सुपडाय। "प्रत्यादौ डः" (२०६) इति तस्य डः॥ आर्षे दुक्कडादि ज्ञेयम्॥ प्राय इत्येव। सुपइट्ठं॥

वेडिस। "इत्वे वेतसे" (२०७) इति तस्य डः॥

गब्भिणय। अणिउँतय। "गर्भितातिमुक्तके णः" (२०८) इति तस्य णः।

रुण्ण। "रुदिते दिना ण्णः" (२०९) इति दिना सह तस्य ण्णः।

बाहत्तरि। "सप्तत्यां रः" (२१०) इति तस्य रः॥

सालाहण। अलसि। "अतसीसातवाहने लः।" (२११) इति तस्य लः॥

पलिल पलिअ। "पलिते वा" (२१२) इति तस्य लो वा॥ (पीवल) पीअल। "पीते वो ले वा" (२१३) इति तस्य वो वा स्वार्थे ले परे॥

विहत्थि। माहुलिङ्ग। भरह। वसहिं। काहल। "वितस्ति-वसति-भरत-कातर-मातुलिङ्गे हः॥ इत्यादिना तस्य हः॥ बाहुलकात् क्वचिन्न। वसइ॥

सिढिलिअ। असढिला। मेढि। पढमं। "मेथि-शिथिर-शिथिल-प्रथमे थस्य ढः॥" (२१५)॥ इत्यादिना यस्य ढः॥

पुढवीए पुहवी। निसीढ निसीहिणी। "निशीथपृथिव्यो र्वा" इति थस्य ढो वा॥

डम्भिअ दम्भं। उद्दण्ड डण्ड। डरिआणं दर। डड्ढा दड्ढ। डसण दसण। डट्ठ दट्ठ। डाह दाह। डोहलयाण दोहलयं। कडण कदणं। डब्भ दब्भ। डोलिर अदोलिरेण। "दशन-दष्ट-दग्ध-दोला-दण्ड-दर-दाह-दम्भ-दर्भ-कदन-दोहदे दो वा डः।" (२१७)। इति दस्य डो वा॥दरस्य भयार्थ वृत्तेरेव। अन्यत्र दर।

कसन्वे । कहमाणो । "दंशदहोः" (२१८) इति दस्य डः ॥

बारह । गग्गर । "संख्या गद्गदे रः" (२१९) इति दस्य रः ।

करलि । "कदल्याम् अद्रुमे" (२२०) इति दस्य रः ॥ अद्रुम इति किम् । कयलि ॥

पलित्तो । दोहल । "प्रदीपि दोहदे लः" (२२१) प्रदीप्यतौ धातौ दोहदे च दस्य लः ।

कयम्ब कलम्ब । 'कदम्बे वा' (२२२) इति दस्य लो वा ॥

धिप्पिर दिप्पिर । दीपौ धो वा" (२२३) इति दस्य धो वा ।

कवट्टिअ । "कदर्थिते वः" (२२४) इति दस्य वः ॥

कउहाइं । "ककुदे हः" (२२५) इति दस्य हः ॥

निसढाइ । "निषेधे धो ढः" (२२६) इति धस्य ढः ॥

ओसहं ओसढिओ । "वौषधे" (२२७) इति धस्य ढो वा ॥

कित्तणय । "नो णः" (२२८) इति नस्य णः ॥ आर्षे अनिलो । अनल इत्यादि ॥ निअ । णिअ । 'वादौ" (२२९) इति नस्य णो वा ॥

**तन्मन्दिरं शत्रूणामपि धर्मोन्मुखत्व कारकम् (५२)**

लिम्बासय-निम्बगिरा कलि-ण्हाविअ-पाव-नाविआदरिसा ।
धम्म-रिउणो वि तस्सि दिट्ठे धम्मोम्मुहा हूया ॥५२॥

**अन्वयार्थ** (लिम्बासय कडुए) मलीन आशय वाले; (निम्बगिरा) कटुवाणी वाले, (कलि-ण्हाविअ) कलियुग रूप नापित—नाई द्वारा— (पाव-नाविअ) पाप-रूप नापित—नाई द्वारा, (आदरिसा) मलीन आदर्श वाले; (धम्म-रिउणो) धर्म से शत्रुता रखने वाले, धर्मशत्रु; (वि) भी; (तस्सि दिट्ठे) उस राजा के दर्शन करने पर; (धम्मोम्मुहा) धर्म के सन्मुख – धर्मानुरागी; (हूया) हो गये ।

**टिप्पण**—लिम्बा निम्ब । ण्हाविअ नाविअ । "निम्बनापिते लण्ह वा" (२३०) इति नस्य लण्हौ वा ॥ "पो वः" (२३१) इति पस्य च वः ॥ प्राय इत्येव । रिउणो ॥

**जिनस्तवन प्रस्ताव :**

सो फणस-फालिहद्दय-दीहर-भुअ-फलिह-जोडिअ-णडालो ।
अफरुस-गिराइ फालिअ-मोहाइअ जिण-थुइमकासि ॥५३॥

**अन्वयार्थ**—(फणस-फालिहद्दय-) पनस वृक्ष के समान जो मंगल रूप हैं; ऐसो (दीहर) दीर्घ; (भुअ-फलिह) भुजा रूप; (परिघ) परिघा; (जोडिअ) जोड़

करके रक्खी हैं; (णडालो) ललाट पर जिसने; अर्थात् दोनों विशाल हाथों को जोड़ करके और ललाट पर स्थापित करके; (सो) वह राजा; (अफरुस) कोमल—विनय भरी; (गिराइ) वाणी से; (फालिअ-मोहो) नष्ट कर दिया है मोह को जिसने—ऐसा होता हुआ; (इअ) इस प्रकार; (जिण-थुइम्) जिन स्तुति को; (अकासि) सम्पन्न किया=जिन प्रार्थना की।

**जिनस्तुति प्रकार :**

फलिहा-जलं वहुत्ताम्बुजेहि जह जह वणं च नीमेहि।
जग-सिरि-नीबावेडय सहइ मही तह तुह पएहि ॥५४॥

**अन्वयार्थ**—(फलिहा-जलं) खाई का जल; (जह) जैसे; (वहुत्त) बहुत; (अम्बुजेहि) कमलों से, (सहइ) सुशोभित होता है; (जह) जैसे; (वणं) जंगल; (नीमेहि) कदम्ब वृक्षों से; (सहइ) सुशोभित होता है; (तह) तथा—उसी प्रकार से; (जग-सिरि) हे जगत् के शोभारूप; (नीवावेडय) कदम्ब पुष्प की माला से सुशोभित हे भगवन्! (तुह) आपके; (पएहि) चरणो मे; (मही) यह पृथ्वी; (सहइ) सुशोभित होती है।

**टिप्पण**—फणस। फालिहद्दय। फलिह। अफरुस। फालिअ। फलिहा। "पाटि-परुष-परिघ-परिखा-पनस-पारिभद्रे फः" (२३२) इति ण्यन्ते पटि धातौ परुषादिषु च पस्य फः।

वहुत्त। "प्रभूते वः" (२३३) इति पस्य वः॥

तुह कय-कुसुमामेला पणट्ठ-पारद्धि-पमुह-पाव-मला।
मुत्ताहल-विमला इह हवन्ति रेभव्व मुद्धन्ना ॥५५॥

**अन्वयार्थ**—(तुह) आपकी कृपा से संसारी भव्य जीव; (कय-कुसुम-आमेला) धारण कर रक्खी है फूलों की माला मुकुट पर जिन्होंने; ऐसे (पनट्ठ) नष्ट हो गये हैं; (पारद्धि) पारधी-हिंसक व्याघ्र; (पमुह) प्रमुख—इत्यादि; (पावमला) पाप से मलीन आत्माएँ जिसकी कृपा से; ऐसे (मुत्ताहल-विमला) मोती के समान निर्मल होकर कर्ममल से रहित होकर—(इह) यहाँ से; (रेभव्व) "अर्ध र्" के समान; (जो कि ऊपर लिखा जाता है—जैसे कि "कर्म-धर्म-मर्म" में ऊपर है); (मुद्धण्णा) मूर्धन्य शिरस्थ के समान सर्वोपरि स्थित-मोक्ष-गामी होकर सिद्ध हो जाते हैं।

**टिप्पण**—'ऋवर्णटवर्गरषा मूर्धन्याः' इति मूर्धन्यः॥

नीमेहि। नीव। आवेड्य कुसुमामेला। "नीपापीडे मो वा" (२३४) इति पस्य मो वा ॥

पारद्धि। 'पापर्द्धौ रः" (२३५) इति अपवादो पस्य रः ॥

सहलो जम्मो सभलं च जीविअं ताण देव फणि-चिन्ध।

जे तं चम्पय-सवलेहिँ भिसिणि-कुसुमेहिँ अच्चन्ति ॥५६॥

**अन्वयार्थ**—हे (फणि-चिन्ध-देव) फणि सर्प के चिह्न वाले भगवान् पार्श्वनाथ; (जे) जो पुरुष; (तं) आपको; (चम्पय सवलेहिँ) चम्पक के विविध वर्णीय फूलों से; (भिसिणि-कुसुमेहिं) कमल के फूलों से; (अच्चन्ति) पूजते हैं; (ताण) उन्हीं का; (जम्मो) जन्म; (सहलो) सफल है; (जीविअं) जीवन; (सभलं) सफल है।

**टिप्पण**—क्वचिद् भः। रेभ ॥ क्वचित् हः। मुत्ताहल ॥ क्वचिद् उभावपि। सहलो। सभलं। "फो भ हौ" (२३६) इत्यनेन ॥ अनादेरित्येव। फणि ॥

सवलेहिँ। "बो वः" (२३७) इति बस्य वः ॥

भिसिणि। "बिसिन्यां भः" (२३८) इति बस्य भः ॥

असिर-कमन्धे अकयन्ध-सिरे समरम्मि तुज्झ झाणेण।

केढव-रिउणो व्व निवा विसढाविसमं न जानन्ति ॥५७॥

**अन्वयार्थ**—(असिर-कमन्धे) सिररहित धड़वाले युद्ध में; (अकयन्ध-सिरे) धड़ रहित सिर वाले=युद्ध में; (ऐसा युद्ध—जिसमें धड और धड़ रहित सिर ही युद्ध कर रहे हों मृत्यु के अन्तिम क्षणों में योद्धाओं के भग्न अंगोपांग भी जब तक जीव-प्रदेश शनैः शनैः निकलते रहे हों—उतने क्षणों तक भी मार-काट की प्रवृत्ति किया ही करते हैं—ऐसी मान्यता रण-विद्या-विशारद मानते आये हैं) (समरम्मि) ऐसे भयंकर—अन्धाधुन्ध युद्ध में; (तुज्झ) आप के; (झाणेण) ध्यान से; (केढव-रिउणो) कैटभ राक्षस के शत्रु—विष्णु की; (व्व) तरह; (निवा) योद्धा-राजा; (विसढाविसमं) युद्ध की विषमता और अविषमता;—भयंकरता और सरलता को; (न) नहीं; (जानन्ति) जानते हैं।

**टिप्पण**—कमन्धे—अकयन्ध। "कबन्धे मयौ" (२३९) इति बस्य मयौ ॥

केढव। "कैटभे भो वः" (२४०) इति भस्य वः ॥

विसढा विसमं। "विषमे मो ढो वा" (२४१) इति मस्य ढो वा ॥

वम्मह-पिआहिवन्नू अहिमन्नु-पिआ य अहरिओ तेण।
तुह भसल-साम पय-पङ्कएसु भमराइअं जेण ॥५८॥

**अन्वयार्थ**—(जेण) जिसके द्वारा; (तुह) आपके; (भसल-साम) कमल के समान श्याम; ऐसे (पय-पङ्कएसु) चरण-कमलों में; (भमराइयं) अपने आपको भँवरे के समान न्यौछावर कर दिया गया है; (तेण) उससे; (वम्मह पिआ) मन्मथ के पिता विष्णुदेव; (अहिवण्णू) अभिमन्यु; (य) और; (अहिमन्नु-पिआ) अभिमन्यु के पिता—अर्जुन, (अहरिओ) वीरता में और सफलता में तिरस्कृत कर दिये गये है। (आपका भक्त विष्णु-अभिमन्यु-अर्जुन से भी बढ़-कर हो जाता है।)

**टिप्पण**—वम्मह। "मन्मथे वः" (२४२) इति मस्य वः॥ पिआहिवन्नू अहिमन्नु। "वाभिमन्यौ" (२४३) इति मो वो वा॥ भसलभमराइअं। "भ्रमरे सो वा" (२४४) इति मस्य सो वा॥

पहु तुम्हकेर-अहखाय-संजमे सोवओग-साहूण।
न समो अह जाओ तव-किसङ्ग-लट्ठी वि हु कुदिट्ठी ॥५६॥

**अन्वयार्थ**—(पहु) हे प्रभु! (तुम्हकेर) आपके; (अहखाय-संजमे) यथा-ख्यात चारित्र मे; (सोवओग) परिपूर्ण उपयोग अर्थात् सावधानीपूर्वक पालन करते हुए; (साहूण) साधुओं की; (समो) बराबरी; (न) नहीं कर सकते है; वे मिथ्यादृष्टि; जो कि; (अह-जाओ) यथाजात अर्थात् नग्न रहते हुए ही= वर्षा-आतप-शीत आदि कष्ट सहन करते हुए और=; (तव-किसग लट्ठी) तप से कृश-शरीर होकर जो लकड़ी के समान हो गये है; (हु) निश्चय करके; ऐसे (कुदिट्ठी) कुदृष्टिवाले-जमदग्नि आदि ऋषि।

**टिप्पण**—जेण। "आदेर्यो जः" (२४५) इति यस्य जः॥ आदेरिति किम्। भमराइअं। बाहुलकात् सोपसर्गस्य अनादेरपि। संजमे॥ क्वचिन्न। सोवओग॥ आर्षे लोपो पि। अह-खाय। अह-जाओ।

तुम्हकेर। "युष्मद्यर्थपरे त।" (२४६) इति यस्य तः॥ लट्ठी। 'यष्टयां लः" (२४७) इति यस्य लः॥

करणिज्जाकरणीअं पेआपिज्जं च जे न वि मुणन्ति।
ते दोस-दुइज्जा वि हु गुण-वीआ हुन्ति तइँ दिट्ठे ॥६०॥

**अन्वयार्थ**—(करणिज्ज) कर्तव्य; (अकरणीअं) और अकर्तव्य को; (पेय) प्रिय; (अपिज्जं) और अप्रिय को, (जे) जो मूर्ख; (न वि) नहीं; (मुणन्ति) जानते हैं; (ते) वे; (दोस-दुइज्जा वि) दोष-द्वितीया=दुष्ट पुरुष भी; (हु)

निश्चय ही; (गुण-वीआ) गुणवान्; (हुन्ति) हो जाते हैं; (तइ दिट्ठे) आपके दर्शन करने पर।

वेकक्ख-उत्तरीआ धवल-दुगूलोत्तरिज्ज-पिहिअ-मुहा।
तुह कय-ण्हवणा घण-छाय-छत्त-छाहीओ माणन्ति ॥६१॥

**अन्वयार्थ**—(वेकक्ख) छाती पर यज्ञोपवीत की तरह पहना जाने वाला वस्त्र, (उत्तरीआ) उत्तरीय=ऊपर ओढ़ा जाने वाला वस्त्र; ऐसे वस्त्र वाले; (धवल) निर्मल-सफेद; (दुगूल) दुकूल—वस्त्र ऐसा जो; (उत्तरिज्ज) उत्तरीय वस्त्र से; (पिहिअ)=थूक आदि से आशातना एवं वायुकाय की हिंसा निवारणार्थ—ढँक लिया है; (मुहा) मुख को; जिन्होंने; ऐसे—पूजा करने वाले व्यक्ति; (तुह) आपके; (कयण्हवणा) कराया है स्नान आपको जिन्होंने; ऐसे; (घण) सघन; गाढ; (छाय) छायावाले; (छत्त) छत्र की; (छाहीओ) छाया का अनुभव करने वाले; (माणन्ति) सुखी होते हैं (शोभा का अनुभव करते हैं।)

**टिप्पण**—करणिज्जाकरणीअं। पेआपिज्जं। दुइज्जा बीआ। उत्तरीआ दुगूलोत्तरिज्ज। "वोत्तरीयानीयतीयकृद्ये ज्जः" (२४८) इति यस्य ज्जो वा॥

**राज्ञो जिन स्नपनम्**

इय सच्छाओ कइवाह-परिअणो कइ अवं थुइं काउं।
आइ-किडि व्व अभेडो जिण-ण्हवणे अह पयट्टो सो ॥६२॥

**अन्वयार्थ**—(इय) इस प्रकार; (सच्छाओ) शरीर की सुन्दर कान्ति वाला; (कइवाह परिअणो) जिसके साथ कतिपय-परिजन हैं (अर्थात् परिमित परिवार जन हैं) जिसके साथ; (आइ-किडिव्व) आदि वराह=वराह अवतार के समान; (अभेडो) कायर नहीं अर्थात् शूरवीर; (जिण-ण्हवणे) जिन-प्रतिमा को स्नान कराने पर; (अह) अथ=अर्थात् स्नान कराने के बाद तत्काल ही; बिना व्यवधान डाले ही; (सो) वह कुमारपाल; (कइअवं) कतिपय=समयानुसार आवश्यक; (थुइं) स्तुति को; (काउं) करने के लिए; (पयट्टो) प्रवृत्त हुआ।

**टिप्पण**—छाय छाहीओ। "छायायां होऽकान्तौ वा" (२४९) इति हो वा॥ अकान्तौ इति किम्। सच्छाओ।

कइवाह कइअवं। "डाहवौ कतिपये" (२५०) इति यस्य डि दाह-वौ पर्यायेण।

किढि । अमेडो । "किरि भेरे रो डः" (२५१) इति रस्य डः ।

पल्लाणिअ-अपडायाणिअ-हयमाएहि अवर-राएहि ।
कणवीरच्चिय-कलसो- हलिद्द-गोरो स किर दिट्ठो ॥६३॥

**अन्वयार्थ**—(पल्लाणिअ) काठी आदि सामान से सजाए हुए; और (अपडायाणिअ) काठी आदि सामान से नहीं सजाए हुए; (हयमाएहि) ऐसे घोड़ों से आये हुए; (अवर-राएहि) अन्यान्य राजाओं द्वारा; (कणवीरच्चिय) कनेर के फूलों से पूजा गया है जो ऐसा; (कलसो) कलशवाला; (हलिद्द-गोरो) हलदी के समान है गौर वर्ण जिसका; ऐसा; (स) वह राजा कुमारपाल; (किर) निश्चय ही; (दिट्ठो) हर्षपूर्वक देखा गया ।

**टिप्पण**—पल्लाणिअ अपडायाणिअ । "पर्याणे डा वा" (२५२) इति रस्य डा वा ॥

कणवीर । "करवीरे णः" (२५३) इति आद्यरस्य णः ॥

तेण जिणम्मि दुवालस-रवि-तेए मुहल-घण्ट-थोर-रवं ।
णङ्गलि-लङ्गलि भायर-सरिसेण पलोट्टिआ कलसा ॥६४॥

**अन्वयार्थ**—(णंगूलि) बलभद्र; (लंगलि-भायर=) बलभद्र के भाई श्रीकृष्ण इन दोनो के; (सरिसेण) समान रूप वाले; (तेण) उस राजा द्वारा; (मुहल) प्रतिध्वनि करने से मुखर याने वाचाल; ऐसे; (घट) घन्टे के; (थोर) स्थूल-भारी; (रव) आवाज जहाँ पैदा होती है ऐसे; (दुवालस रवि तेए) बारह सूर्य के समान तेजस्वी; (जिणम्मि) जिण प्रतिमा के आगे अर्थात् उस मन्दिर में; (पलोट्टिआ) खाली हुए एक स्थान पर रक्खे हुए थे; (कलसा) अनेक कलश जहाँ पर; सोना-मणि आदि से निर्मित कलश—प्रतिमा को स्नान करा देने के कारण से खाली हुए—एकान्त में रक्खे हुए थे ।

**टिप्पण**—हलिद्द । मुहल । "हरिद्रादौ लः" (२५४) इति रस्य लः ॥ आर्ष दुवालस । थोर । "स्थूले लो रः" (२५५) इति लस्य रः ॥

णङ्गूलि णाहलत्तण-अपुण-भवत्थं निवेण करुणाए ।
लङ्गूलि-लाहला वि हु सित्ता जिण-ण्हवण-सलिलेण ॥६५॥

**अन्वयार्थ**—(णगूलि) लम्बी पूँछ वाले—तिर्यंच प्राणित्व; और; (णाहलत्तण) म्लेच्छत्व; (अपुण-भवत्थ) इन उपरोक्त दोनों अवस्थाओं की प्राप्ति उन प्राणियों को पुनः न हो; इसलिए; (करुणाए) दया करके, (निवेण) राजा कुमारपाल ने; (जिणण्हवण) जिन प्रतिमा को स्नान कराने के पश्चात्—

यत् किंचित् (सविशेष) अवशिष्ट जल से; (लंगूलि-लाहूला) लम्बी पूँछ वाले वे—तिर्यंच प्राणी और म्लेच्छ जाति के पुरुष; (वि) भी; (हु) निश्चय करके; (पादपूरणार्थ;) (सित्ता) गीले किये गये; छींटे डाले गये; (इस जल से उनकी निकृष्ट अवस्था से मुक्ति हो जायगी—ऐसी मान्यता से)

टिप्पण—णङ्गुलि लङ्गुलि । णङ्गूलि । णाहल लाहला । लाहल लाङ्गल लाङ्गूले वादेर्णः । (२५६) एषु आदेर्लस्य णो वा ।

जिनार्थं स्त्रीसंगीत प्रस्तावः—

ससि-खण्ड-णडालाहिं समरी-भासाइ दूसिमिण-हरणं ।

सिविणे वि दुलहमणुजिणमकारि संगीयमित्थीहिं ॥६६॥

अन्वयार्थ—(ससि-खंड-णडालाहिं) अष्टमी के चन्द्रमा के समान है ललाट जिनकी, ऐसी; (इत्थीहिं) स्त्रियों के द्वारा; (समरी-भासाइ) भीलों की भाषा में; (दुसिमिण-हरणं) दु.स्वप्नों से उत्पन्न विघ्नों का हरण करने वाले ऐसे गीत को; (सिविणं वि) स्वप्न में भी जिसका सुनाई देना; (दुलहम्) दुर्लभ है; एसा (अणुजिणम्) पार्श्वनाथ भगवान को लक्ष्य करके=गाया हुआ; (संगीयम्) ऐसा सगीत; (अकारि) प्रारंभ किया ।

टिप्पण—णडालाहिं । "ललाटे च" (२५७) इति आदेर्लस्य णः ॥ समरी । "शबरे बो मः ।" (२५८) इति बस्य मः ॥

सगीतम् [६७-७७]

दढिआ सुनीविआहि नीमीओ नच्चणीहिं तक्कालं ।

सविसेस-सद्द-गीए सज्जाइ-कमोक्कम पयट्टे ॥६७॥

अन्वयार्थ—(सुनीविआहि) रचना की दृष्टि से सुन्दर वस्त्रों से सुशोभित ऐसी; (नच्चणीहिं) नृत्य करने वाली स्त्रियो द्वारा; (तक्कालं) तत्काल ही=नृत्यारंभ के पूर्व क्षण में ही; (नीमीओ) नाड़ा=इजार बन्द=लहंगा-पायजामा बाँधने का डोरा=(दढिआ) मजबूत बांधा गया=नृत्य के समय में कहीं खुल न जाय इसीलिए=; (सज्जाइ) षड्ज; (नासा, कंठ, उर, तालु, जिह्वा, दंत, इन छ: स्थानों से उत्पन्न ऋषभ आदि स्वरों की) (कमोक्कम) उतार-चढ़ाव, ह्रस्व, दीर्घ के क्रम के अनुसार; (पयट्टे) ऐसी प्रवृत्ति है जिसमें; ऐसा; शब्द (गीत का विशेषण=) (सविसेस) निर्दोष-सार्थक-रम्य इन विशेषताओं सहित; ऐसे हैं (सद्द-गीए) शब्द और गीत जिसमें;=ऐसा नृत्य उन स्त्रियों द्वारा प्रारंभ किया गया=।

टिप्पण—दूसिमिण सिविणे । सुनीविआहिं नीमीओ । "स्वप्ननीव्योर्वा" (२५९) इति वस्य मो वा ॥

सविसेस । सद्द । सज्जाइ । "शषोः सः" (२६०) इति शषयोः सः ॥

तइया वणिअ सुसाहिं निव-सुण्हा-वल्लहाओ ता दिट्ठा ।

पाहाण-पुत्तिआहि व पासाण-त्थम्भ-लग्गाहिं ॥६८॥

**अन्वयार्थ**—(तइया) नृत्य समय में=देखने के आगन में=(निव-सुण्हा--वल्लाहाओ) राजवधुओं के लिये भी प्रिय लगने वाली; (ता) वे नृत्य करने वाली स्त्रियाँ; (पासाण-त्थम्भ लग्गाहिं) पत्थर के थंभों के सहारे खड़ी हुई=जिससे कि अन्य व्यक्ति उन्हें नहीं देख सके—इस दृष्टि से लज्जावशात् ओट में खड़ी हुई; (वणिअ-सुसाहिं) वैश्यवर्ग की पुत्रवधुओं द्वारा; (पाहाण-पुत्तिआहिव)=नृत्य-गीत-इतना आकर्षक था कि वे पुत्रवधुएँ=मानो पाषाण—पुतलियाँ ही हों(=ऐसी चित्रस्थवत् निर्निमेष दृष्टि से) (दिट्ठा) देखने लगी या देख रही थी।

**टिप्पण**—सुसाहिं सुण्ह । "स्नुषायां ण्हो न वा" (२६१) इति षस्य ण्हो वा ।

वञ्जिअ-दस-विह-धाऊ जणणी लासस्स दह-विहस्सा वि ।

दिवसे दिवहावगमे अ सुह-यरी वाइआ वीणा ॥६९॥

**अन्वयार्थ**—(वजिअ) प्रकट किया है जिसने; (दस-विह-धाऊ) दस प्रकार के धातु अर्थात् नाट्यशास्त्र प्रसिद्ध आलत्तिका=(नृत्य-गान विशेष;=) वाली, (लासस्स) भरत-शास्त्र प्रसिद्ध गेयपद आदि के; (दह विहस्स) दस प्रकार के; (अवि) भी; (जणणी) मानो ये नृत्य करने वाली स्त्रियाँ ही इन नृत्यों की आदि=जननी हो; (दिवसे) दिन भर तक, (अ) और; (दिवहा-वगमे) दिन की समाप्ति पर—रात्रिकाल में भी, (सुहयरी) सुख उत्पन्न करने वाली; (वीणा) वीणा, (वाइआ) बजाई गई ॥

**टिप्पण**—पाहाण पासाण । दस दह । "दशपाषाणे हः (२६२) इति शषयोर्यथादर्शन हो वा ॥

दिवसे दिवहा । "दिवसे सः" (२६३) इति सस्य हो वा ।

रञ्जिअ-नर-सिंघेणं वंसिअ-सीहेण वाइओ वंसो ।

दाघत्त-दाह-हरणो-छुह-धवले जिण-गुणे गाउं ॥७०॥

**अन्वयार्थ**—(नर सिंघेण) मनुष्यों में सिंह के समान ऐसे कुमारपाल राजा को; (रंजिअ) प्रसन्न किया है; ऐसे (वंसिअ-सीहेण) वंशी बजाने में सर्व-श्रेष्ठ राजा द्वारा, (छुह-धवले) अमृत के समान निर्मल; (जिण गुणे) जिनेश्वर के गुणों को; (गाउं) गाने के लिए; (दाघत्त) दाह-जलन से दुःखी के; (दाह-हरणो) दाह को हरण करने वाली, (वंसो) बाँसुरी; (वाइओ) बजाई।

**टिप्पण**—सिवेणं सीहेण। "ह्रोवोऽनुस्वारात्" (२६४) इति हृस्य घो (वा) क्वचिद् अननुस्वारादपि। दावत्त दाहू॥

छमि-छत्तिवण्ण-गोरी छट्ठी भल्लि व्व पञ्च-बाणस्स।

मय-छावच्छी वर-मुहर-गायणी गिण्हिउं तालं ॥७१॥

**अन्वयार्थ**—(छमि-छत्ति वण्णगोरी) शमी सप्त-छद वृक्ष के फूलों के समान गौर वर्णवाली; (वर मुहर गायणी) श्रेष्ठ और मुखर-स्पष्ट गाने वाली; (मय-छावच्छी) मृग के बच्चे के समान आंखों वाली; (पंच-बाणस्स) कामदेव के; छट्ठी पांच बाणों के अतिरिक्त मानो यह छट्ठा अस्त्र के रूप में, (भल्लि) भाला=बर्छी के, (व्व) समान; (तालं) कांसे का निर्मित वाद्य ताल को; (गिण्हिउं) ग्रहण करके; जिन गान करने लगी इसका वर्णन आगे की गाथाओं में—

अमय-छिरा-महुर-सराअमय-सिरोवम-सराहि अणुगमिआ।

जिण-गाणम्मि-पयट्टा गुण-भायण-दाण-भाणं तो ॥७५॥

**अन्वयार्थ**—(अमय छिरा) अमृत की धारा के समान; (महुर-सरा) मधुर आवाज वाली; (अमय-सिरोवम-सराहि) अमृत की धारा के समान स्वरों से अन्य द्वारा सहायतार्थ गाये हुए—लय द्वारा; (अणगमिआ) अनुकरण की जाती हुई; (जिणगाणम्मि) जिनेश्वर की गायन रूप स्तुति में; (पयट्टा) प्रवृत्त हुई; (गुण-भायण-दाण-भाणं) गुण भाजन अर्थात् गुणवान पुरुषों के लिये जो दिया जाने वाला दान; उसके पात्र रूप गायन को (तो) उसके बाद।

**टिप्पण**—छुह। छमि। छत्तिवण्ण। छट्ठी। छावच्छो। "षट्शमी" (२६५) इत्यादिना आदेर्वर्णस्य छः।

छिरा सिरो। "सिरायां वा" (२६६) इति आदेश्छो वा।

दणु-कुल-दणुअ-कुलाराइ-दुल्लहं तोइ रा-उल-विहारे।

राय-उल-पियमबीअं गीअं सोउं न को आओ ॥७३॥

**अन्वयार्थ**—(दणु कुल) राक्षस कुल के लिए; और; (दणुअकुल-आराइ) राक्षस-कुल के शत्रु—देवताओं के लिए भी (दुल्लहं) दुर्लभ; (राय-उल-पियम्) राजा के लिए भी प्रिय; ऐसा (गीत का विशेषण); (तीइ) उन नाचने वाली—गाने वाली स्त्रियों के; (अबीयं) अद्वितीय; (गीअं) गीत को; (सोउं) सुनने के लिये; (रा-उल-विहारे) उस कुमार-विहार में; (को) कौन; नहीं; (आओ) आया। अर्थात् सभी आये।

टिप्पण—भायण भाणं। दणु दणुअ। रा-उल राय-उल। "लुग् भाजन" (२६७) इत्यादिना सस्वरस्स जस्य लुग् वा ॥

सक्कय-वारण-पाइअ-वायरण-पउत्त-सद्द-कय-गीए ।
आउज्जिअ-पायारे रङ्गे पुण आसि गुणि-पारो ॥७४॥

अन्वयार्थ—(सक्कय-वारण) संस्कृत व्याकरण तथा; (पाइअ वायरण) प्राकृत व्याकरण में; (पउत्त, प्रयुक्त=कहे गये; (सद्द) शब्दों द्वारा; (कय-गीए) किया गया है गीत जिसमें; ऐसी (रंगे) रंग भूमि में; (आउज्जिअ) वाद्य बजाने वाले; (पायारे) के मण्डल में केवल; (गुणि पारो) गुणज्ञ संगीत विशेषज्ञ ही; (आसि) था अर्थात् रंग भूमि के केवल विशेषज्ञों की ही मण्डली बैठी हुई थी शेष श्रोता दूर बैठे हुए थे।

तत्थागओ अ कालायस-सम-कालास-अहिअ-हिअओ जो ।
सो केलि-किसलयासोअ किसल-कोमल-हिओ आसि॥७५॥

अन्वयार्थ—(तत्थ) वहाँ पर; (आगओ) आया हुआ; (कालायस-सम) काले लोहे से भी; (अहिअ) अधिक काला; (हिअओ) हृदयवाला=ऐसा पुरुष भी; (जो) कोई भी; (सो) वह अर्थात् कठोर पुरुष भी; (केलि-किसलय) केले के कोमल पत्ते के समान=हृदयवाला; (असोअ-किसल) अशोक किशलय की, (कोमल) कोमलता के समान; (हिओ) हृदयवाला; (आसि, बन जाता था। अर्थात् गायन का माधुर्य और रस इतना प्रिय था कि कठोर से कठोर हृदय वाला भी कोमल हृदय वाला बन जाया करता था।

टिप्पण—वारण वायरण। पायारे पारो। आओ तत्थागओ। "व्याकरण प्राकारागते कगोः" (२६८) इति को गस्य लुग् वा ॥

कालायस कालास। किसलया किसल हिअओ। हिओ। "किसलय-कालायस-हृदये यः" (२६९) इत्यादिना यस्य लुग् वा ॥

दुग्गावी-पा-वीढं दुग्गा-एवीस-पाय-वीढं च ।
मोत्तुं गण-गंधव्वा तं गीअं सोउमोच्छरिया ॥७६॥

अन्वयार्थ—(दुग्गावी) दुर्गा-देवी के; (पा-वीढं) पाद-पीठ=सिंहासन को; तथा (दुग्गा-एवीस) दुर्गादेवी के स्वामी शंकर के, (पाय-वीढं) पाद-पीठ को; (मोत्तुं) छोड़ छोड़ करके; (गण गंधव्वा) नंदी आदिगण और किन्नर आदि गन्धर्व; (तं गीअं) उस गीत=गायन को; (सोउम्) सुनने के लिए; (उच्छरिया) वहाँ कुमारविहार में पहुंच गये।

जिण-पाय-वडण-गुरु-पा-वडणाइं चइअ तत्थ उब्भ-जणो ।
पुलयङ्कुरेहि कलिओ उउम्बरो उम्बरेहिं व ॥७७॥

**अन्वयार्थ**—(जिण-पाय-वडण) जिनेश्वर भ० के चरणों में गिरना=नमस्कार करना; (चइअ) छोड़ करके; (गुरु-पा-वडणाइं) गुरु के चरणों में नमस्कार करना; (चइअ) छोड़ करके; (तत्थ) उस रंग भूमि में; (उब्भ-जणो) खड़ा हुआ आदमी; (पुलयङ्कुरेहि कलिओ) ऐसा रोमाञ्चित हो आया कि जैसे (उउम्बरो) उदुम्बर; (उम्बरेहिं) उदुम्बर फलों से=पुलकित हो जाता है।

**टिप्पण**—दुग्गावी दुग्गा-एवी। पा-वढि पाय-वीढ। पाय-वडण पा-वडणाइं। उउम्बरो उम्बरेहिं। "दुर्गा देव्युदुम्बर-पाद-पतन-पाद पीठेन्तर्दः" (२७०) इत्यादिना दस्यान्तर्मध्ये लुग् वा। अन्तरिति किम्। दुर्गा देव्याम् आदौ मा भूत ॥

जाव निवो कय-पूओ आरत्तिय-मङ्गलं न जा कुणइ ।
ता देव-उले मरुवय-पूअं अणुसोइउं लग्गो ॥७८॥

**अन्वयार्थ**—(जाव) जब तक; (कय-पूओ) की है पूजा जिसने; ऐसा; (निवो) राजा; (आरत्तिय-मंगल) मंगल आरती; (जा) जब तक; (न) नहीं; (कुणइ) करता है; (ता) तब तक; (देव-उले) देव-मन्दिर में; (मरुवय-पूअं) मरुवक पूजा; (पूजा-विषयक पश्चात्ताप) के, (अणुसोइउं लग्गो) विषय में विचार करने लगा।

**राज्ञो मरुवक पूजाविषयमनुशोचनं-अनुशोचनप्रकार :—**

मइ ताव देउलमिमं निम्मविअं सहल-जीविअमणेण ।
सव्व-रिउ-कुसुम-पूआ नो जइ जीअं न मे सहलं ॥७९॥

**अन्वयार्थ**—(मइ) मेरे द्वारा; (इमं) यह; (देउलम्) मन्दिर; (निम्मविअं) बनाया गया है; (अणेण) इससे मेरा; (सहल-जीविअम्) जीवन सफल हो गया है; किन्तु; (जइ) यदि; (सव्व-रिउ-कुसुम पूआ) सभी ऋतुओं में खिलने वाले; पुष्पों से पूजा; (नो) नहीं की; तो (मे) मेरा; (जीअ) जीवन; (सहलं) सफल; (न) नहीं है।

**शासनदेवी वचनम्**—

अह भणिअं खे सासण-देवीए एवमेव मा जूर ।
आवत्तमाण-जस तुममेमेअ किमत्तमाण-मणो ॥८०॥

**अन्वयार्थ**—(अह) तब=चिन्ता के समय में=(सासण-देवीए) शासन-देवी द्वारा; (खे) आकाश में खड़े होकर; (भणिअं) ऐसा कहा गया कि—हे; (आवत्तमाण-जस !) तीनों लोक में फैल रहा है यश जिसका—ऐसा हे राजन् ! (एवमेव) इस तरह से; (मा जूर) चिन्ता मत कर; खिन्न मत हो; (तुमम्) तुम; (एमेअ) इस तरह से; (किम्) क्यों; (अत्तमाणमणो) आर्त मन वाले—(दुःखी मन वाले) हो रहे हो।

**उद्यानस्य सर्वऋतुकुसुमसमृद्धावाशीर्वाद :**

गुणि-पावारय-पारय दुह-अड-चिन्तावडेसु मा पडसु।
होही तुह उज्जाणं सइ सव्व-रिऊहि कय-कुसुमं ॥८१॥

**अन्वयार्थ**—(गुणि-पावारय) गुणवान-पुरुष रूप कपड़ों में भी तू; (पारय) सर्वश्रेष्ठ ढँकने वाला वस्त्र रूप है; अर्थात् सभी गुणियों में तू ही अकेला सर्वाधिक गुणवाला है; ऐसा हे राजन् ! (दुह-अड) दुःख-रूप कूप में; (चिन्तावडेसु) चिन्ता-रूप कूपो में; (मा पडसु) मत गिर; अर्थात् चिन्ता मत कर; (सइ) सदा, (सव्व-रिउहि) सभी ऋतुओं द्वारा; (कय-कुसुम) उत्पन्न किये गये हैं फूल जिसमें; ऐसा; (तुह) तुम्हारा; (उज्जाण) बगीचा; (होही) होगा।

**टिप्पण**—जाव जा ता। ताव। देव-उले देउल। जीविअं जाअं। एव-मेव एमेअ। आवत्तमाण अत्तमाण। पावारय पारय। अड चिन्तावडेसु। "यावत्तावज्जीवितावर्तमानावट-प्रावारक देव कुलैवमेवे वः" ॥२.१॥ इत्यादिना यावदादिषु वकारस्य अन्तर्वर्तमानस्य लुग् वा ॥ अन्तरित्येव। एवमेवेति अन्त्यस्य न ॥

इति प्राकृतद्व्याश्रये महाकाव्ये अष्टमस्याध्यायस्य उदाहरणप्रतिपादन द्वारेण प्रथम पादः सम्पूर्णः ॥

**राज्ञो गुरुप्रणाम :—**

आरत्तियमह काउं मुक्क-मलो अपरिमुत्त-माउक्को।
तव-सत्तं गुण-सक्कं माउत्त-निहिं गुरुं पणओ ॥८२॥

**अन्वयार्थ**—(अह) तदनन्तर; (आरत्तियम्) आरती; (काउं) करके; (मुक्कमलो) संकल्प-विकल्प की कलुषितता से रहित; (अपरिमुत्त-माउक्को) जिसने मृदुता को नहीं छोड़ा है; ऐसा राजा कुमारपाल; (तव-सत्तं) तपस्या करने में शक्तिशाली; (गुण-सक्कं) गुणों में समर्थ; (माउत्त-निहिं) विनय-

मृदुता के निधि; ऐसे; (गुरु) अपने गुरु को; (पणओ) राजा ने प्रणाम किया।

**जिनमन्दिराद्राज्ञ निर्गमनम्—**

विञ्चुअ-डक्कोरग-दट्ठ-जीव-जीआउ-चरण-रेणु-कणं ।
लुक्क-कलिं लुग्ग-भवं तं समुपासिअ गओ राया ॥८३॥

**अन्वयार्थ**—(विञ्चुअ-डक्क) बिच्छु के द्वारा काटे हुए; और; (उरग-दट्ठ) सर्प के द्वारा काटे हुए; (जीव) जीवों के लिए; (जीआउ) जीवन-औषधी के समान है; (चरण-रेणु-कणं) जिनके चरणों की धूलि का कण; ऐसे गुरु को, (लुक्क-कलिं) जिन्होने कलियुग को अथवा कलह को; सद् प्रवृत्ति द्वारा; नष्ट कर दिया है; ऐसे गुरु को; (लुग्ग-भवं) अभयदान आदि द्वारा जिन्होने संसार को—भव-भ्रमणा को—नष्ट कर दिया है; ऐसे; (तं) उन गुरुदेव की; (समुपासिअ) सम्यक्रीति से उपासना सेवा करके; (राया) राजा कुमारपाल; (गओ) कुमार विहार से निकल गया—प्रस्थान कर दिया।

**टिप्पण**—"संयुक्तस्य" (१) अधिकारोयम् "ज्यायाम् ईत्" (२·११५) इति यावत् ॥

मुक्क मुत्त। माउक्को माउत्त। सत्तं सक्कं। डक्को दट्ठ। लुक्क लुग्ग "शक्त-मुक्त-दष्ट-रुग्ण-मृदुत्वे को वा" इति एषु को वा ॥

**राजाश्वस्य वर्णनम्** [८४-९०]

लक्खण-पुण्ण-मखीणं अछीण-गमणं अझीण-तणु तेअं ।
खन्धाइ-सत्त-पिहुलं पोक्खर-गन्धं धुवावत्तं ॥८४॥

**अन्वयार्थ**—(लक्खण-पुण्णम्) शास्त्रोक्त सभी शुभ-चिह्नों से पूर्ण; (अखीण) सभी अंगोपांगों से परिपूर्ण; (अछीण गमनं) जिसकी चाल में किसी प्रकार का कोई दोष नही था; (अझीण-तणु-तेअं) जिसके शरीर का तेज-कान्ति-न्यून नही थी; (खन्धाइ-सत्त-पिहुलं) स्कन्ध-कंधा आदि शरीर के सात स्थानों पर जो विस्तृत अंगवाला था; (पोक्खर-गन्धं) कमल के समान सुगंधिवाला था; (धुवावत्तं) ध्रुव नामवाली—जो दश संख्याएँ हैं अर्थात् जिन दस अंको से गणित-शास्त्र का निर्माण होता है; उनके समान जिसके अंगोपांग पर दस भँवर जैसे चिह्न अंकित थे—ऐसा वह घोड़ा था।

खन्द पिउ-कन्द-सरीसावणीस-जुम्मं असुक्क-रोम-छविं ।
अणसुक्ख-मउलि-कुसुमं खेडय-जर-खेड अङ्ग-रयं ॥८५॥

**अन्वयार्थ**—(खन्द पिउ) कार्तिकेय के पिता—महादेव; और (कन्द) कार्तिकेय; इन दोनों के; (सरीस) समान; (अवणीस) पृथ्वी पति—राजाओं के; (जुग्गं) योग्य; (असुक्क-रोम-छवि) जिसके बालों का सौन्दर्य शुष्क-रूखा नहीं है अर्थात् चिकने केशों के सौन्दर्य से युक्त; (अणसुक्ख-मउलि-कुसुमं) जिसके मुकुट के फूलों का समूह सूखा-नहीं है; अर्थात् ताजे नूतन-फूलों से निर्मित मुकुट वाला, (खेडय) विष; और (जर) ज्वर; को; (खेड) नष्ट कर देती है; (अंग-रजं) जिसके शरीर की धूलि; ऐसा गुणवान् वह घोड़ा था।

थाणु-पिया-जल-पुण्णं अखाणु-वायं जणेहि दीसन्तं।
पडिखम्भि अट्ट-थम्भय-थम्भिअ-तणु-ठम्भिअच्छेहिं ॥८६॥

**अन्वयार्थ**—(थाणु) महादेव की; (पिया) प्रिया—अर्थात् गंगा के (जल) जलवत्; (पुण्णं) पवित्र; (अखाणु-वायं) ठूंठ आदि स्थानों पर जो ठोकर पतन—नहीं खाता है; ऐसा; अथवा "स्थाणु" नामक वात-रोग से रहित; ऐसा; (पडिखम्मि-अट्ट-थम्भय) ऊँचे-ऊँचे भवनों के स्तंभों के आगे जो ऐसे खड़े है मानों स्तंभ के आगे ही दूसरा स्तंभ खड़ा किया गया हो; इस रीति से खड़े हुए (=दर्शनार्थी पुरुषों का विशेषण) (थम्भिअ-तणु) उन पुरुषों का शरीर ही मानों स्तंभरूप हो गया हो; इस रीति से स्तब्ध खड़े हुए, (ठम्मि-अच्छेहिं) उन पुरुषो को वह दिव्य घोड़ा देखने पर इतना आश्चर्य हुआ कि; उनकी आंखे=निर्मिमेष होती हुई स्थिर-स्तब्ध हो गई थी ऐसे; (सभी विशेषण दर्शनार्थियों के हैं); (जणेहि) (दर्शनार्थी) पुरुषों द्वारा; (दीसन्तं) देखा जाता हुआ—घोड़े का विशेषण; क्रिया आगे की गाथा में—

रग्गं पिग-रत्त-सरं रवि-हय-सुक्कं व नील-किञ्चि-छविं।
सुङ्ग-करणग्ग-चच्चर - चइत्त - ठिअ - दिट्ठि-दुच्चज्जं ॥८७॥

**अन्वयार्थ**—(रग्गं) अश्व शिक्षा में अणुरक्त=प्रवीण, (पिग्ग) कोयल के समान, (रत्त) मधुर-गम्भीर; (सर) स्वर=हेषारव वाला, (रवि-हय सुक्कं) सूर्य द्वारा प्रदत्त शुल्क रूप, (सूर्य की गति उस मन्दिर के शिखर पर से होकर आगे बढ़ती थी; अतः उसे उसका शुल्क-कर भी चुकाना पड़ेगा, मानो उस शुल्क के मूल्य का एक घोड़ा, अपने घोड़ों में से दे गया हो ऐसा वह सूर्य प्रदत्त शुल्क रूप वह अश्व था; (व) समान; (नील-किञ्चि छविं) नील-

वर्ण वाला; (सुङ्क-करण-ग्ग) शुल्क-ग्रहण करने के कार्यालय-के आगे के; (चच्चर) चौक में इस पार्श्वनाथ प्रभु के मन्दिर में; (ठिअ) स्थित पुरुषों की; (दिट्ठि) दृष्टि से; (दुच्चज्जं) जो अश्व दुस्त्यज्य है; अर्थात् घोड़े पर स्थित दृष्टि हटाये भी नहीं हट रही है; ऐसा कान्ति-शील वह घोड़ा था।

पच्चूहा पच्चूसं पि पञ्च-धारासु अकय-णिव्वेअं ।
नच्चा बुज्झा पिच्छीइ वण्णिअं सिक्ख-विज्जं ति ॥८८॥

**अन्वयार्थ**—(पच्चूहा-पच्चूसंपि) प्रत्येक प्रभातकाल में; भी; (पंच-धारासु) गति सम्बन्धी विशेषता; उन पांचों विशेषताओं के प्रति; (अकय-णिव्वेअ) निर्वेद=उदासीनता नहीं रखने वाला; (ऐसा गतिशील वह घोड़ा था); (पिच्छीइ) पृथ्वीस्थ पुरुषों द्वारा; (अश्व-शिक्षा-शिक्षक द्वारा); (वण्णिअ) वर्णित सिखाये हुए गुणों को; (नच्चा) जान करके; (बुज्झा) समझ करके; (सिक्ख-विज्जं) उस शिक्षा का ज्ञाता-जानकार (वह घोड़ा था)।

विञ्चुअ-अहिविञ्छिअ-अच्छीविस-विस-हरण-छेत्त-सेअ-जलं ।
खुर ताडण-अखम-छमं रिक्ख-पवङ्गेस-सम-वेगं ॥८९॥

**अन्वयार्थ**—(विचुअ) बिच्छु, (अहिविञ्छिअ) सर्प के मूत्र से उत्पन्न तीक्ष्ण विषवाला बिच्छु, (अच्छी-विस) जिसके आंख में ही विष हो; ऐसा सर्प इन सब विषैले प्राणियों के; (विस) विष को; (हरण) दूर करने वाला है; (छेत्त-सेअ-जलं) जिसके शरीर का पसीना रूप जल; ऐसा वह घोड़ा था; (खुर ताडण-अखम-छमं) पृथ्वी भी जिसके खुरों के आघात को सहन करने में असमर्थ थी; ऐसा वह बलशाली था; (रिक्ख-पवंगेस) रीछ-जाम्बवद आदि; वानर-हनुमान आदि के स्वामी—सुग्रीव के; (सम) समान—(वेगं) वेगवाला —तेज गतिवाला; (ऐसा वह घोड़ा था)।

अवि रिच्छ-सरिच्छेहिं सणिच्छयं सच्छणं च लोएहि ।
अच्छी-पच्छं लिच्छूहि पेच्छिअं आसमारूढो ॥९०॥

**अन्वयार्थ**—(रिच्छ सरिच्छेहिं) रींछ आदि के समान चपल-तेज गतिवाला होने पर, (अवि) भी; (सणिच्छयं) एकाग्रचित्त वाला था; चपलता वश उत्पाती नहीं था; (सच्छणं) जो उत्सवरूप था, (अच्छी पच्छं) जिसका देखना आंखों के लिये प्रिय हो—पथ्य रूप हो—हितकारी हो; ऐसा; (लिच्छूहि) देखने की लिप्सावाले—लालसावाले; (लोएहि) लोकों द्वारा;

(पेच्छिअं) देखे हुए, उस; (आसम्) अश्व पर; (आरूढो) वह राजा कुमार-पाल चढ़ा। (भारी जनता के समूह द्वारा देखा जाता हुआ—उत्सव जैसी स्थिति में—राजा ने घोड़े पर चढ़ाई की)।

टिप्पण—लक्खण अक्खीणं। "क्ष: ख: क्वचित्तु छ-झौ" (३) इति क्षस्य ख: ॥ क्वचित्तु छझावपि। अछीण। अझीण ॥

खन्धाइ। पोक्खर। "ष्कस्कयोर्नाम्नि" (४) इति ख: ॥

खन्द कन्द। असुक्क अणसुक्ख। "शुष्कस्कन्दे वा" (५) इति खो वा ॥ खेडय। खेडअ। "क्ष्वेटकादौ" (६) इति ख: ॥

अखाणु। "स्थाणावहरे" (७) इति ख.। अहर इति किम्। थाणु ॥

पडिखम्भिअ अट्ट-थम्भय। "स्तम्भे स्तो वा" (८) इति स्तस्य ख: ॥

थम्भिअ। ठम्भिअ। "थठावस्पन्दे" (९) इति स्तम्भे स्तस्य थठौ ॥

रग्गं रत्त। "रक्ते गो वा" (१०) इति गो वा ॥

सुक्कं सुङ्ग। "शुल्के ङ्गो वा" (११) इति ङ्गो वा ॥

किच्चि। चच्चर। "कृत्ति चत्वरे च:" (१२) इति च: ॥

दुच्चज्जं। "त्योऽचैत्ये" (१३) इति त्यस्य च:। अचैत्य इति किम्। चइत्त ॥

पच्चूहा पच्चूसे। "प्रत्यूषे षश्च हो वा" (१४) इति त्यस्य च:। तत्सं-नियोगे षस्य हो वा ॥

णच्चा। बुज्झा। पिच्छीइ। विज्जन्ति। "त्वथ्वद्वध्वां च छ ज झा: क्वचित्" (१५) एषां यथासख्यम् एते क्वचित् ॥

विञ्चुअ विच्छिअ। "वृश्चिके श्चेश्ञ्चुर्वा" (१६) इति ञ्चु: ॥

अच्छी। छेत्त। सरिच्छेहिं। अच्छी। "छोऽक्ष्यादौ" (१७) इति खस्या-पवादश्छ: ॥ आर्षे तु इक्खू। खीर। सारिक्ख। इत्याद्यपि दृश्यते।

छमं। "क्षमायां कौ" (१८) इति छ:। काविति किम्। अखम ॥ रिक्ख रिच्छ। "ऋक्षे वा" (१९) इति छो वा ॥

**राज्ञो धवलगेहं प्रति गमनम्—**

> धवलगेहमइ-निच्चलाकिदी वच्छलो चुलुग-वंस-दीवओ।
> तच्च-देवय-वरेण तक्खणोसारिआखिल-दुहो पहुत्तओ ॥९१॥

**अन्वयार्थ**—(अइनिच्चला किदी) अति निश्चल=स्थिर स्वभाववाला; (वच्छलो) वत्सल—जीवदयाप्रेमी; (चुलुग-वंस-दीवओ) चौलुक्य वंश के लिये

दीपक समान; (तच्च-देवय-वरेण) तथ्यरूप-सत्यवादी देवता-शासन देवी द्वारा प्रदत्त वरदान से; (तक्खण) तत्क्षण ही—तत्काल ही; (ओसारिअ अखिल-दुहो) नष्ट हो गया है सभी प्रकार का दुःख जिसका; ऐसा वह राजा; (धवल गेहं) राज-प्रासाद को; निर्मल भवन को; (पहुत्तओ) प्राप्त हो गया; (राजभवन में पहुंच गया)।

टिप्पण—सच्छणं। "क्षण उत्सवे" (२०) इति छः॥ उत्सव इति किम्। तक्खणो॥

सणिच्छरं। पच्छं। लिच्छहिं। वच्छलो। "ह्रस्वात् थ्यश्चत्सप्साम् अनिश्चले" (२१) इति ह्रस्वान् परेषाम् एषां छः। अनिश्चल इति किम्। निच्चला। आर्षे तथ्ये चो पि॥ तच्च॥

इत्याचार्य श्री हेमचन्द्रविरचित श्री कुमारपालचरितप्राकृताद्व्याश्रयमहाकाव्यवृत्तौ द्वितीयः सर्गः समाप्तः॥

□ □

# तृतीय: सर्गः

**राज्ञ उद्यानं प्रति गमनम्—(वसन्तर्तु वर्णनम् २–८९)**

कय-वम्मह-सामच्छं वर-सामत्था कओसवमऊहि ।
नयणोच्छवमुज्जाणं गओ निवो उच्छुओ दट्ठुं ॥१॥

**अन्वयार्थ**—(कय-वम्मह-सामच्छं) जिसने काम-भावना की शक्ति को—सामर्थ्य को—जगा दिया है, ऐसा—(उद्यान का विशेषण); (वर-सामत्था) देवी के वरदान की शक्ति से; (उऊहि) ऋतुओं द्वारा; (कओसवम्) उत्सव जिसमें उत्पन्न कर दिया गया है; (अर्थात् विविध वर्णीय और सभी ऋतुओ मे उत्पन्न होने वाले फूल जहाँ पर खिला दिये गये हैं;) ऐसा, (नयणोच्छवम्) आँखो के लिये उत्सव समान अर्थात् आनन्दप्रद; ऐसे; (उज्जाणं) उद्यान को; (दट्ठुं) देखने के लिये, (उच्छुओ) उत्सुक होता हुआ, (निवो) राजा कुमारपाल; (गओ) (उद्यान मे) गया ।

जय-छिह-ऊसुअ-मयणो अवज्ज-निप्पिह-सभज्ज-जुव-लोओ ।
अलि-सेज्ज-चूअ-कलिओ तओ पयट्टो वसन्त-उऊ ॥२॥

**अन्वयार्थ**—(जय-छिह-ऊसुअ-मयणो) (धर्म-अर्थ मोक्षादि पुरुषार्थ को) जीतने मे स्पृह—भावना है जिसकी; ऐसा उत्सुक मनवाला "मदन" (जहाँ पर मौजूद था); (अवज्ज-निप्पिह) अवद्य-सदोष कार्यों के प्रति निस्पृह भावनावाले अर्थात् विमुख, (ऐसे), (सभज्ज) अपनी-अपनी पत्नियो के साथ (जुव-लोओ) तरुण पुरुष जहाँ पर उपस्थित थे; (ऐसे उस उद्यान में); (अलि-सेज्ज) भँवरो के लिये शैय्या समान, (चूअ) आम्र-वृक्षों से; (कलिओ) युक्त होता हुआ जो सुन्दर था; ऐसे उस उद्यान में, (तओ) इसके बाद; (वसन्त-उऊ) वसन्त ऋतु; (पयट्टो) प्रवृत्त हुई—प्रकटित हुई ।

**टिप्पण**—सामच्छं सामत्था । कओसव नयणोच्छव । उच्छुओ ऊसुअ । "सामर्थ्योत्सुकोत्सवे वा" (२२) इति छो वा ॥

छिह । "स्पृहायाम्" (२३) इति फस्य अपवादश्छः ॥ बाहुलकात् क्वचिद् अन्यदपि । निप्पिह ॥

अवज्ज । सभज्झ । सेज्ज । "सध्ययां जः" (२४) इति एषां जः ॥

अहिमज्जु-जणय-अहिमञ्जु-माउ-भायाहिमन्नु-पमुहाण ।

अहि उच्चि आसि मयणो वणवञ्झासज्झ-कुसुम-सरो ॥३॥

**अन्वयार्थ**—(अहिमज्जु-जणय) अभिमन्यु के पिता अर्जुन; (अहिमञ्जु-माउ-भाया) अभिमन्यु की माता के भाई बलदेव; (अहिमन्नु) अभिमन्यु; (पमुहाण) प्रमुख वीरों के लिये; (अणवञ्झ) सफल-(रीति से उन वीरों पर अधिकार करने वाला); (असज्झ कुसुम-सरो) जिसका फूलों का बाण भी असह्य होता है; ऐसा; (मयणो) मदन=कामदेव; (अहिउ-च्चिअ आसि) अधिक उच्च दर्जे का था।

**टिप्पण**—अहिमज्जु अहिमञ्जु । "अभिमन्यौ जञ्जौ वा" (२५) इति जो ञ्जश्च वा । पक्षे । अहिमन्नु ॥

गय-सज्झसस्स मयरद्धयस्स कुसुमज्झओउ-दुइअस्स ।

कङ्केल्लि-पल्लव-मिसा आसि पयावो समिज्झन्तो ॥४॥

**अन्वयार्थ** –(गय-सज्झसस्स) चला गया है भय जिसका; ऐसे; (मयरद्धयस्स) मकरध्वज=कामदेव का; (कुसुमज्झओ) फूल ही हैं ध्वज-चिन्ह जिसके, ऐसी; (उउ दुइ अस्स) वसन्त ऋतु साथ में है जिसके, ऐसे; (कामदेव का)(ककेल्लि-पल्लव-मिसा) अशोक वृक्ष के कोमल पत्तों के बहाने; (समिज्झन्तो) चारों ओर से चमकता हुआ; (पयावो) प्रतापवाला; (ऐसा कामदेव वहाँ पर विराजमान) (आसि) था।

**टिप्पण**—अणवञ्झ । असज्झ । सज्झसस्स । "साध्वसध्य ह्यां झः" (२६) इति झः ॥

द्धयस्स' ज्झओ । "ध्वजे वा" (२७) इति झो वा ॥

समिज्झन्तो । "इन्धौ झा" (२८) इति इन्धौ धातौ झा ॥

पट्टण-वहु-वलयाइअ-वट्ट-पयट्टालि-मण्डलो चूओ ।

पवण-कवट्टिअ-कुसुम-रज-सुरहि-महि-मट्टिओ जाओ ॥५॥

**अन्वयार्थ**—(पट्टण-वहु) नगर-वधू के; (वलयाइअ) कंकण के समान आकृतिवाले—चक्करदार गोल-रूपवाले; (वट्ट) घेरे में—वृत्त में; (पयट्ट अलि-मंडलो) प्रवृत्तिशील है—भ्रमणशील है—भँवरों का समूह; (जिस वृक्ष पर ऐसा आम का वृक्ष; (पवण-कट्टि अ—) वायु से कदर्थित—पीड़ित; (जो)

कुसुम फूल; (उनके) रज पराग से; (सुरहि) सुगन्धवाली; (महि-मट्टिओ) हो गई है पृथ्वी की मिट्टी जहाँ पर; (ऐसी मिट्टी वाला); (चूओ) आम का वृक्ष; (जाओ) हो गया था।

टिप्पण—पट्टण। वट्ट। पयट्ट। कवट्टिअ। मट्टिओ। "वृत्तप्रवृत्त-मृत्तिका-पत्तन-कदर्थिते टः॥ इत्यादिना टः॥

कामिणि-धुत्तिम-वत्ता-निवत्तणो वल्लि-नट्टईण नडो।
पयडिअ-वम्मह-वट्टो सिढिलिअ-वासन्तिआ-वेण्टो ॥६॥

अन्वयार्थ—(कामिणि-धुत्तिम-वत्ता) मदनोन्मत्त स्त्रियों की धूर्तता की वार्ता का; (निवत्तणो) निषेध करने वाला; (वल्लि नट्टईण) लतारूप नटणियों का, (नडो) प्रतिरूप नट समान; (पयडिअ) प्रकट कर दिया है; (वम्मट-वट्टो) कामदेव की वृत्ति को; जिसने; (ऐसा—सब मलयानिल के विशेषण हैं) (सिढिलिअ) शिथिल कर दिया है; (वासन्तिआ) माधवीलता के; (वेण्टो) फूलों के बन्धन को, (जिसने; ऐसा मलयपवन उस उद्यान में चल रहा था।)

विरहिणि-विसण्ठुलट्ठी-करणो रइणाह-रइ-महु-चउट्ठो।
कामट्ठत्थो सुहओ चउत्थ-पुरिसत्थगाणं पि ॥७॥

अन्वयार्थ—(विरहिणि-विसण्ठुलट्ठी-करणो) विरहिणी की हड्डियों को व्याकुल करने वाला; (रइणाह) (रतिनाथ (१), (कामदेव) (रइ) रति (कामदेव की स्त्री) (२); (महु) बसन्त ऋतु (३); और (चउट्ठो) चौथा; (यह मलयानिल) कामट्ठत्थो) काम की भावना होना ही है तात्पर्य जिसका; (ऐसा तात्पर्य वाला मलयानिल); (चउत्थ पुरिसत्थगाणं पि) चौथे पुरुषार्थ; (मोक्ष) मे जाने वालों के लिये भी; (सुहओ) जो सुख देने वाला है।

ठीणम्बु-सीअलो थीण-चूय-लट्ठि-महु-बिन्दु-चुम्बणओ।
वम्महसंदट्ठेसुं इट्टाघाओ महुट्टिअओ ॥८॥

अन्वयार्थ—(ठीणम्बु) जमे हुए पानी याने बर्फ के; (समान); (सीअलो) शीतल; (थीण) सघन रूप से; (अवस्थित; (चूय-लट्ठि) आम्र-लताओं के (महु-बिन्दु) मधु-रस की बिन्दुओं को; (चुम्बणओ) चुम्बन करने वाला—छूनेवाला अथवा इधर-उधर बहा ले जाने वाला; (ऐसा मलयानिल) (वम्मह-संदट्ठेसु) कामदेव से पीड़ित प्राणियों पर; (इट्टाघाओ) इष्ट-अनुकूल (कामदेव के अनुकूल) आघात करने वाला, (महुट्टिअओ) मधु वसन्त ऋतु का आज्ञाकारी भृत्य; ऐसा वायु चल रहा था)।

मुह-मइन्द-निबुड्डेहिँ व उच्च-विअडिड-ट्ठिएहिँ पिज्जन्तो ।
छड्डिअ - मलउज्जाणो मड्डिअ - वेइल्ल - विच्छड्डो ॥१०॥

अन्वयार्थ—(रय-संमद्द-सम-हरो) रति-क्रीड़ा से थके हुए प्राणियों के श्रम को दूर करने वाला; (कवड्डि-सिर) महादेव के सिर पर स्थित; (सरिअ-सलिल) नदी गंगा के जल के समान; (सीअलओ) जो शीतल है; (ऐसा वायु); (लंघिय) जिसने उल्लंघन कर दिया है; (गड्डहवाहण-पुरो); रावण की नगरी लंका को; ऐसा वायु; (मयण-गद्दहिअ-लोओ) (जिस वायु को सेवन करने वाला वहाँ का) लोक मदन के द्वारा गधे रूप—बेभान रूप बना दिये जाते हैं (ऐसा वायु वह था)।

मलयाचल-कण्डलिआ-आउह-सालाउ भिण्डिवालो व्व ।
ठड्ढेण - वुड्ढ-जग -जय-छिहाइ गहिओ महु - भडेण ॥११॥

अन्वयार्थ—(मलयाचल कंडलिया) मलयाचल की गुफाएँ हीं है; (एक प्रकार की); (आउह-सालाउ) आयुध-शालाएँ; उनमें से, (वुड्ढ जग-जय-छिहाइ) संसार पर विजय प्राप्त करने की महान इच्छा से; (ठड्ढेण) अहंकार शील, (महु-भडेण) वसन्त वीर द्वारा; (भिण्डि वालो व्व) भिन्दपाल—शस्त्र के समान; (उस वायु को) (गहिओ) ग्रहण कर रक्खी थी (वसन्त वीर-मलय वायु रूप शस्त्र-विशेष से कामियों पर प्रहार कर रहा था)।

दड्ढोज्जीविअ-मयणो विरहिणि नीसास-वुड्ढि-परिविड्ढो ।
अविअड्ढ-असड्ढ-अणिड्ढीणं पि विइण्ण-रइ-सड्ढो ॥१२॥

अन्वयार्थ—(दड्ढोज्जीविअ-मयणो) जलाया हुआ भी कामदेव पुनः जिस की सहायता से पुनर्जीवित हो उठा; (ऐसा पवन) विरहिणि-नीसास वुड्ढि) विरहिणि स्त्रियों के निश्वास की वृद्धि से; (परिविड्ढो) विस्तृत हुआ; (ऐसा पवन) अविअड्ढ-असड्ढ अणिड्ढीण पि=) (काम भावना में) अनिपुण, श्रद्धा नहीं रखने वाले और (काम-भावना से रहित होने के कारण से—इस दृष्टि से) दरिद्र पुरुषों के लिये भी; (विइण्ण रइ-सड्ढो) उत्पन्न कर दी है रति-श्रद्धा (काम-भावना) जिसने; ऐसा पवन—

रिद्धि-पत्तो कम्पिअ - लवली-मुड्ढो वसन्त - मुद्धन्नो ।
अड्ढक्खीकय-माणिणि - माणो पज्जुण्ण - ढिण्णाणो ॥१३॥

अन्वयार्थ—(रिद्धि पत्तो) सुरभि आदि जैसी ऋद्धि को प्राप्त हुआ; (कम्पिअ) कम्पित कर दिया है—आन्दोलित कर दिया है; (लवली -

मुड्ढो) लताओं के शिरों को जिसने; (ऐसा पवन) (वसन्त-मुद्धगो) वसन्त में जो प्रधान रूप है; (अड्डढीकय-माणिणि-माणो) रति-भावना की प्रबलतम उत्कण्ठा के कारण से) जिसने मानिनी-स्त्रियों के मान को खंड-खंड रूप कर दिया है; (पज्जुण्ण दिण्णाणो) कन्दर्प—कामदेव—की आज्ञा को जो प्रचारित कर रहा है; ऐसा।

पण्णास-गुणं मयणं पण्णरह-गुणं महुं च पयडन्तो।
मन्तुमइ-मन्नु-दलणो समत्त लय तम्ब वित्थरणो ॥१४॥

**अन्वयार्थ**—(पण्णास-गुणं) पचास गुना अधिक शक्तिवाला, (मयणं) मदन-कामदेव को; (पयडन्तो) प्रकट करता हुआ; (पण्णरह-गुणं) पन्द्रह गुना (अधिक शक्तिवाला) (महुं) वसन्त को; (पयडन्तो) प्रकट करता हुआ (मन्तुमइ मन्नु-दलणो) क्रोधी—(कामग्रस्त) स्त्रियों के क्रोध को; (काम-उत्कण्ठा से) दलता हुआ=नष्ट करता हुआ; (समत्तलय-तम्ब) समस्त लताओं के गुच्छों को; (वित्थरणो) अनुकूल रूप से वृद्धि करने वाला; (ऐसा वह पवन था)।

अविरहि-विरहि-थवातव-पत्तं पल्लत्थ-लयमपल्लट्टो।
उच्छाह करोणुत्थारयाण मलयाणिलो वाऊ ॥१५॥

**अन्वयार्थ**—(अविरहि-विरहि-थव अतव पत्तं) पत्नि सहित पुरुषों के लिए और पत्नि-रहित पुरुषो के लिये—(कभी अनुकूलता से) स्तुति का पात्र बनता हुआ, (और कभी प्रतिकूलता से निन्दा का पात्र बनता हुआ; (पल्लत्थ लयम्) लताओं को जिसने (पृथ्वी पर अपने वेग के कारण से सुला दिया था; (अपल्लटो) जो अन्य वायु के साथ समिश्रित नहीं था; (ऐसा); (अणुत्थार याण) (कामभावना के प्रति उत्साह नहीं रखने वालों को भी; (उच्छाह करो) उत्साह पैदा करने वाला था; (ऐसा वह) (मलयाणिलो वाऊ) मलयाचल की मलयानिल नामक हवा चल रही थी।

**टिप्पण**—नट्टईण। "तस्या धूर्तादौ" (३०) इति तस्य टः। अधूर्तादा-विति किम्। धुत्तिम। वत्ता। निवत्तणो॥ बाहुलकाद् वट्टो॥

वेण्टो। "वृन्ते ण्टः" (३१) इति ण्टः॥

विसण्ठुलट्ठी। "ठोऽस्थिविसंस्थुले" (३२) इति ठः॥
चउत्थो चउत्थ। अट्ठत्थो। पुरिसत्थ। ठीण थीण। स्त्यानचतुर्था

र्थे वा' (३३) इति ठो वा। परम् अर्थशब्दे व्यवस्थित विभाषया ठत्वम्। धनार्थे न भवति ॥

लट्ठि "ष्ट स्यानु०" (३४) इत्यादिना ष्टस्य ठः। अनुष्ट्र ष्टासंदष्ट इति किम्। संदट्टसु। इट्टा। महुद्दिट्ठओ॥

गड्ड। "गर्तेड:" (३५) इति तस्य डः। टापवादः॥

वि अड्डि। छड्डिअ। मड्डिअ। विच्छुड्डो। समड्ड। कवड्डि "संमर्द० (३६) इत्यादिना र्दस्य डत्वम्॥

गड्डह गद्दहिअ। "गर्दभे वा" (३७) इति र्दस्य डो वा॥ कण्डलिआ। भिण्डिवालो। "कन्दरिका भिन्दिपालेण्ड: (३८) इति ण्डः॥

ठड्ढेण। "स्तब्धे ठढौ" (३९) इति यथाक्रमं ठ ढौ॥

वुड्ढ। दड्ढो। वुड्ढि। अविअड्ढ। "दग्ध-विदग्ध-वृद्धि-वृद्धे ढः" (४०) इति ढः॥ क्वचिन्न। परिविद्धो॥

असड्ढ सद्धो। अणिड्ढीणं रिद्धि। मुड्ढो मुद्धन्नो। अड्ढद्धी। "श्रद्धर्द्धि मूर्धा र्धन्ते वा (४१) इत्यादिना ढो वा॥

पज्जुण्ण। आणो। "म्न ज्ञोर्णः (४२) इति णः॥

दिण्णा। पण्णास। पण्णरह। "पञ्चाशत्पञ्चदशदत्ते" (४३) इति णः॥

मन्तु मन्नु। "मन्यौ न्तो वा" (४४) इति न्तो वा॥

वित्थरणो। "स्तस्यथोसमस्त-स्तम्बे (४५) इति स्तस्य थः। असमस्तस्तम्ब इति किम्। समत्त। तम्ब॥

थवातव। "स्तवे वा" (४६) इति स्तस्य थो वा। पल्लत्थ पल्लट्टो। "पर्यस्ते थटौ" (४७) इति पर्यायेण थटौ॥

उच्छाह अणुत्थारयाण। "वोत्साहे थो ह्रस्व रः" (३८) इति थो वा। तत्संनियोगे च ह्रस्य रः॥

भमरालिद्धे झसचिन्धय-चिण्हे आसि सिन्दुवारम्मि।
भस्सिय-असिन्ध-जीवाउ-भप्प-चुन्नं किर पराओ ॥१६॥

**अन्वयार्थ**—(भमरालिद्धे) (सुरभि से आकर्षित होकर) अनेक भँवरे जिस पर झूम रहे हैं; (ऐसे-सिन्दुवार का विशेषण) (झस चिन्धय-चिण्हे) मछली के चिन्ह की ध्वजा है जिसके—ऐसे कामदेव के जो साक्षात् चिन्ह

रूप हैं; ऐसे, (सिन्दुवारम्मि) सिन्दुवार-निगुंण्ड वृक्ष पर; (पराओ) पराग= पुष्प-रेणु (आसि) थी। (पुष्प-रेणु का विशेषण कहते हैं—) (भस्सिअ) (शिवजी द्वारा) भस्मीभूत हुए; (झसिन्ध) कामदेव के; (जीवाउ) संजीवनी प्रदान करने में—जीवन—औषधिरूप; (भप्प-चुन्न) भस्मवत् चूर्ण (के समान) (किर) निश्चय ही; (एसा वह पराग था)।

अप्पाणत्ता मुक्को भरियप्प - पिएहि पहिअ-सत्थेहिं।

कङिकल्लि-कुम्पलं रुप्पिणि-सुअ - बाणं व दट्ठूण ॥१७॥

**अन्वयार्थ**—(रुप्पिणि-सुअ-बाणं) कामदेव के बाण के; (व) समान; (कंकिल्लि-कुम्पलं) अशोक वृक्ष के अविकसित पुष्प को, (दट्ठूण) देख करके; (भरिय-अप्प-पिएहि) स्मृति हो आई है अपनी प्रियाओं की जिन्हें; ऐसे, (पहिअ-सत्थेहि) पथिक—सार्थों द्वारा—मुसाफिरों के समूहो द्वारा, (अप्पाणत्ता) अपना जीवन ही, (मुक्को) मुक्त कर दिया गया अर्थात् जीते हुए भी मृत्यु-ग्रस्त जैसे हो गये।

**टिप्पण**—आलिद्ध। "आश्लिष्टे लधौ" (४९) इति यथासंख्यं लधौ॥ भस्सिय भप्प। अप्पाणत्ता अप्प। "भस्मात्मनोः पो वा" (५१) इति पो वा॥

चिन्ध झसिन्ध। "चिन्हे न्धो वा" (५०) इति न्धः ण्हापवादः॥ पक्षे सो पि। चिण्हं॥

रुच्मि निव-सरिस-जोव्वण-गुणेहि तस्सिं कया जुआणेहि।

फुप्फि अ - असो अ - विपिणे परोप्पर - प्फद्धमन्दोला ॥१८॥

**अन्वयार्थ**—(तस्सि) उसमे, (उद्यान का विशेषण); (पुप्फि अ-असो अ-विपिणे) पुष्पित अशोक उद्यान में, (रुच्मि-निव) रुक्मी नामक राजा के (सरिस) समान; (जोव्वण-गुणेहि) यौवन के गुणों से सहित, ऐसे; (जुवाणेहि) यौवन-सम्पन्न पुरुषो द्वारा; (परोप्पर) परस्पर में; (प्फद्धमन्दोला) प्रतिस्पर्धात्मक आन्दोलन; (कया) किया गया। अर्थात् युवावर्ग एक दूसरे को हराने के लिए झूले झूलने लगे।

**टिप्पण**—कुंपल। रुप्पिणि। "ड्मक्मोः" (५२) इति पः। क्वचित् च्मोपि। रुच्मि॥

सो वि बुहप्फइ-सीसो बुहप्फई सो वि तत्थ ओच्छरिओ।

निप्पहिअ - तिअस - लीलं दोला - लीलोसवं दट्ठुं ॥१९॥

**अन्वयार्थ**—(बुहप्फइ-सीसो) बृहस्पति का शिष्य; (सो वि) वह भी; (कुमारपाल भी); (सो वि बुहप्फइ) वह (गुरु=) बृहस्पति भी; (तत्थ) वहाँ पर; (उद्यान में) (निप्पहिअ तिअस-लीलं) देवताओं की लीलाओं को भी

जिसमें हीन कोटि की अर्थात् निष्प्रभावाली प्रमाणित कर दी है; ऐसे (दोला-लीओ सव्वं) झूला झूलने रूप क्रीड़ा के उत्सव को; (दुट्ठु) देखने के लिए (ओच्छरिओ) आये (कुमारपाल और इनके गुरु दोनों ही आये)।

टिप्पण—पुप्फिअ। प्फद्ध। "ष्पस्पयोः फः" (इति फः) ।। बाहुलकात् क्वचिद् वा। बुहप्फइ। बुहप्फई ।। क्वचिन्न। परोप्पर। निप्पहिअ ।।

विरहिअ-भिप्फं असिलिम्ह-कण्ठ्यं विगय-सेफ-कण्ठेहिं।

तम्बम्ब-दलोत्तंसं दोलिर-तरुणीहि अह गीअं ।।२०।।

**अन्वयार्थ**—(विरहिअभिप्फ) जिस गीत में भीष्मता श्रुतिकटुता नहीं है ऐसा; (अ-सिलिम्ह-कण्ठ्यं) जिस (गीत) में कफ आदि के कारण से पड़ने वाली बाधावाला कंठ नहीं है अर्थात् रोगरहित—बाधारहित कंठ द्वारा स्वस्थ रीति से जो गाया जा रहा है; ऐसा; (तम्बम्ब-दलोत्तंसं) ताम्र-वर्णीय-आम्र के पत्तों का निर्मित शिरो-भूषण-अथवा कर्ण-भूषण आदि गेय विषय हैं जिस गीत में; ऐसा (विगय-सेफ कंठेहिं) जिन पुरुषों के कंठों में कफ आदि नहीं है; ऐसे पुरुषों के साथ; (दोलिर-तरुणीहि) झूलती हुई रमणियों द्वारा; (अह) अथ; (गीअं) गीत गाया गया।

टिप्पण—भिप्फं। "भीष्मे ष्मः" (५४) इति ष्मस्य फः ।। असिलिम्ह सेफ। "श्लेष्मणि वा" (५५) इति ष्मस्य फो वा: ।।

तम्बम्ब। ताम्राम्बे म्बः" (५६) इति मयुक्तो बः ।।

**छह गाथाओं का कुलक**—

अखलिअ-जिब्भं पइ-नाम पुच्छिआ तत्थ खलिअ-जीहाओ ।

मय-विहलाहि मय-भिब्भलाओ लट्ठीहि विब्भलिआ ।।२१।।

**अन्वयार्थ**—(मय-विहलाहिं) मद से विह्वल (सखियों द्वारा) (मय-भिब्भलाओ) मद से विह्वल स्त्रियों को, (जब अपने) (पइ-नाम-पुच्छिआ) पति का नाम पूछा (तो); (तत्थ) उस समय में वे; (खलिअ-जीहाओ) स्खलित जिव्हावाली हो गई (लज्जावश अस्पष्ट बोली अथवा कुछ भी नहीं बोल सकीं) (ऐसी स्थिति में) (लट्ठीहि) लता-निर्मित लकड़ियों (के प्रहार) से; (विब्भलिआ) विह्वल होती हुई—घबराती हुई (अखलित जिब्भ) अस्खलित जिह्वावाली हो गई अर्थात् (प्रहार के कारण से) तत्काल ही स्पष्ट वाणी वाली हो गईं। स्पष्ट बोल उठीं (ऐसी स्त्रियों को राजा ने देखा क्रिया २६ वीं गाथा में है।

उब्भमणुद्धं च ठिआ दोलासु विज्ज-विजिय-कम्हारा ।

कम्भारजम्म-पीवल-कर - जुगय - चरण - जुम्माओ ।।२२।।

**अन्वयार्थ**—(विज्ज-विजिय-कम्हारा) विद्या के बल से जिन्होंने काश्मीर के पंडितों को भी जीत लिया है; (ऐसी स्त्रियाँ) (कम्मार जम्म) काश्मीर में उत्पन्न कुंकुम से; (पीवल) पीले हैं; (कर-जुग्ग) दोनों हाथ जिनके; (य) और; (चरण-जुम्माओ) दोनों पैर जिनके; (ऐसी स्त्रियाँ); (दोलासु) झूलों में, (उब्भम्) कोई-कोई खड़ी हुई; (च) और; (अणुद्ध) (कोई-कोई) बैठी हुई; (ठिआ) (उन झूलों) में स्थित थी।

कय-बम्भचेर-भङ्गा सुन्दरेणं स बंभचरिआण।
चल-नेउर-जय तूराहिअ-सर-सोंडीर - धीराओ ॥ २३ ॥

**अन्वयार्थ**—(स-बम्भचरिआण) (नियमित रूप से ब्रह्मचर्य पालने वालों का; (सुन्दरेणं) (अपने)—सौंदर्य से; (कय-बंभचेर-भंगा) (जिन स्त्रियों ने) ब्रह्मचर्य भग कर डाला है; (ऐसी स्त्रियों को राजा ने देखा) (चल-नेउर) चंचल-ध्वनिमान नुपुर—आभूषण ही हैं (जय-तूर) जय के बाजे जहाँ पर; ऐसे वाद्यो द्वारा, (आहिअ) आघात पहुंचाया है; (सर) काम-क्रीडा मे; (सोंडीर) पराक्रम शील; (और) (धीराओ) धैर्य शील पुरुषों को; जिन स्त्रियों ने; ऐसी (स्त्रियो को राजा ने वहाँ पर देखा)।

धिज्ज-गुरु-घुम्मण-समुन्नय-पय-पेरन्त हणिअ-पज्जन्ते।
खण-पुप्फिए असोए अच्छेरस्स वि कयच्छरिआ ॥२४॥

**अन्वयार्थ**—(धिज्ज-गुरु-घुम्मण) धैर्य पूर्वक बहुत घूमने की प्रवृत्ति है जिसकी, (ऐसी) (समुन्नय-पय-पेरन्त) उन्नत-पैर के अग्रिम - अन्तिम भाग से; (हणिअ-पज्जन्ते) चोट पहुंचाई गई है जिस अशोक वृक्ष के अग्र भाग पर ऐसे; (खण-पुप्फिए) तत्क्षण में ही जो विकसित पुष्पवाला हो गया है; ऐसे (असोए) अशोक वृक्ष के होने पर; (अच्छेरस्स वि) आश्चर्य के लिए भी, (कयच्छरिआ) उत्पन्न कर दिया आश्चर्य को, जिन स्त्रियों ने; (ऐसी उन स्त्रियो को राजा ने देखा)

अच्छ अर-सोअमल्ला कयच्छरीआ पिअच्छरिज्जाण।
पल्लत्थ-दोहरोरु अमभिपल्लाणिअ-पिअ-कडीओ ॥ २५ ॥

**अन्वयार्थ**—(अच्छ-अर-सोअमल्ला) आश्चर्य जनक है कोमलता जिनके शरीर को, (ऐसी स्त्रियो को); पिअच्छरिज्जाण) प्रिय है आश्चर्य जिनको; (ऐसे पुरुषो के लिये); (कयच्छरीआ) विविध रीति से उत्पन्न किये हैं आश्चर्यों को जिन्होने, (ऐसी स्त्रियों को;) (पल्लत्थ-दीहरोरुअम्) पति के पास में ही

फैलाई हैं मोटी-मोटी जंघाएँ जिन्होंने; (ऐसी स्थिति उत्पन्न करके) (अभि-पल्लाणिअ-पिअ-कडिओ) अपने-अपने पतियों की कमरों को; (उपरोक्त रीति से जंघाएँ पास में ही फैलाकर उन जंघाओं पर) अवस्थित कर दी हैं; जिन स्त्रियों ने; (ऐसी स्त्रियों को राजा ने देखा)।

धरणि-बहस्सइ-सीसेण सयल-कल-कोसले बहुप्फइणा ।

विलया वणस्सइ-वणे दिट्ठा उवणय-वणप्फइणा ॥ २६ ॥

**अन्वयार्थ**—(धरणि-बहस्सइ-सीसेण) इस पृथ्वी के बृहस्पति के शिष्य (कुमारपाल) से; (सयल-कल-कोसले) सभी कलाओं की कुशलता में; (बहुप्फइणा) साक्षात् बृहस्पति के समान; ऐसे राजा द्वारा; (विलया) ऐसी वनिताएँ; (दिट्ठा) देखी गईं; जिन्होंने कि, (वणस्सइ-वणे) वनस्पति के वन में; (उवणय-वणप्फइणा) उत्पन्न कर दी है—उपस्थित कर दी हैं वनस्पतियों को; जिन्होंने; (ऐसी स्त्रियो को)

**टिप्पण**—जिब्भ जीहाओ। "ह्वो भो वा" (२७) इति ह्वस्य भो वा ॥

विहलाहि भिब्भलाओ विब्भलिआ। "वा विह्वले वो वश्च" (५८) इति ह्वस्य भो वा तत्संनियोगे च वेर्वस्य वा भः ॥

उब्भं अणुद्धं। "वोर्ध्वे" (५९) इति भो वा ॥

कम्हारा कम्भार। "कश्मीरे म्भो वा" (६०) इति म्भो वा ॥

जम्म। "न्मो मः" (६१) इति न्मस्य मः अधोलोपापवादः ॥

जुग्गय जुम्माओ। "ग्मो वा" (६२) इति ग्मस्य मो वा ॥

बम्भचेर। सुन्देरेणं। सोंडीर। तूरा। "ब्रह्मचर्य-तूर्य-सौन्दर्य—शौण्डीर्ये र्यो रः (६३) इति र्यस्य रः। जापवादः। चौर्यसमत्वाद् बम्हचरिआण ॥

धीराओ धिज्ज। "धैर्ये वा" (६४) इति र्यस्य रो वा ॥

पेरन्त। "एतः पर्यन्ते" (६५) इति एकाराद् र्यस्य रः। एत इति किम्। पज्जन्ते ॥

अच्छेरस्स। "आश्चर्ये" (६६) इति एकाराद् र्यस्य रः। एत इत्येव। कयच्छरिआ। अच्छअरं। कयच्छरीआ। पिअच्छरिज्जाण। "अतो रिआर-रिज्ज-रीअं (६७) इत्यादेशाः। अत इति किम्। अच्छेरस्स ॥

सोअमल्ला। पल्लत्थ। अभिपल्लाणिअ। पर्यस्त पर्याण-सौकुमार्ये ल्लः (६८) इति र्यस्य ल्लः ॥

बहस्सइ बहुप्फइणा। वणस्सइ वणप्फइणा। "बृहस्पति वनस्पत्योः सो वा" (६९) इति सो वा ॥

बप्फुल्ल-वयण-बाहुल्ल-लोयणकिय- पउत्थमुल्लसिअं ।
दस-काहावण-वीस-कहावण-मुल्लं तिलय-फुल्लं ॥ २७ ॥

**अन्वयार्थ**—(बहुल्ल-वयण) (पसीने के कारण से) गीला है—मुख जिनका; (बाहुल्ल-लोयणी) अश्रुओं से गीली हैं आँखें जिनकी; ऐसों द्वारा; (कय-पउत्थम्) किया गया है प्रेषण-कार्य (जिस तिलक फूल के लिये) जिन्होंने; (ऐसे व्यक्तियों द्वारा) (दस-काहावण-वीस-कहावण-मुल्लं) दस कार्षापण मूल्यवाला बीस कार्षापण मूल्यवाला; (तिलय-फूल्लं) तिलक-पुष्प;(उल्लसिअं) विकसित हो गया। (अर्थात् उद्यान में तिलक पुष्प खिल उठे)।

**टिप्पण**—बाहुल्ल। 'बाष्पे होऽश्रुणि" (७०) इति हः। अश्रुणी ति किम्। बप्फुल्ल॥ काहावण। "कार्षापणे" (७१) इति हः॥ कथं कहावणेति। "ह्रस्वः संयोगे" (१. ८४) इति प्रागेव ह्रस्वत्वे पश्चात् हा देशे कहावणेति भविष्यति॥

दुहिआण दुक्ख-हरणम्मि दक्खिणो काम-दाहिण-करो व्व ।
उम-तित्थिआण तूहं फुड-फुल्लो आसि महुअ-तरू ॥२८॥

**अन्वयार्थ**—(दुहि आण-दुक्ख-हरणम्मि) (प्रतिकूल प्रकृति वाली स्त्री मिलने के कारण से) दुःखी पुरुषों के दुःख को दूर करने में; (दक्खिणो) चतुर; (ऐसा मधूक नामक वृक्ष); (काम-दाहिण-करो व्व) कामदेव के दाहिने हाथ की तरह; अर्थात् काम भावना जागृत करने में सहायक, (उम-तित्थिआण तूहं) उमा-गौरी-पार्वती के भक्तों के लिये; (जो वृक्ष) तीर्थ समान है; ऐसा (फुड-फुल्लो) विकसित फूल वाला; (महुअ-तरू) ऐसा मधूक=महुआ का वृक्ष; (आसि) (वहाँ पर—उद्यान में) था।

**टिप्पण**—दुहिआण दुक्ख। दक्खिणो दाहिण। तित्थिआण तुहं। "दुःख दक्षिण तीर्थे वा" (७२) इति हो वा॥

पायाहओ असोओ कोहलि-सामाहिं पम्हलच्छीहिं ।
कोहण्डी-कुसुमो कम्हारज-किसलो अ हवइ म्ह ॥२९॥

**अन्वयार्थ**—(कोहलि-सामाहिं) कद्दू के समान श्याम वर्ण वाली; और (पम्हलच्छीहिं) जिनके आँखों पर सुन्दर बाल हैं ऐसी स्त्रियों द्वारा; (पायाहओ) पाद का=पैर का आघात पहुंचाया हुआ; (असोओ) अशोकवृक्ष;

(कोहण्डी-कुसुमो) कद्दू की लता के फूल के समान फूल वाला; (कम्हारअ-किसलो) कुंकम-केशर के कोमल पत्ते के समान कोमल-पत्तों वाला; (अ) और (हुवइ म्ह) हो गया था।

**टिप्पण** –कोहलि कोहण्डी। "कूष्माण्ड्यां ष्मो लस्तु ण्डो वा" (७३) इति ष्मा इत्यस्य ह:। ण्ड इत्यस्य तु वा लोऽपि॥

नव-रवि-रस्सि-पसूणो सर-उम्ह-करो अलक्खि बम्ह-तरू।

रोलम्ब-सण्ह-रव-कय-सागय-पण्हो महु-सिरीए ॥३०॥

**अन्वयार्थ**—(नव-रवि-रस्सि-पसूणो) बाल सूर्य की किरणों के समान (रक्त वर्णीय) फूल वाला; (सर-उम्ह-करो) जिसको देखकर काम जागृत हो जाता है; (अतः) स्मर-कामदेव की उष्णता=सन्ताप पैदा करने वाला अथवा काम-ज्वर उत्पादक; (महु-सिरीए) वसन्त की शोभा से आकर्षित; (रोलम्ब-सण्ह-रव) भँवरों की सूक्ष्म-आवाज-ध्वनि, (हो जहाँ पर) (कय सागय-पण्हो) स्वागत का प्रश्न बना दिया गया है; (अर्थात् भ्रमर-ध्वनि ही जहाँ पर स्वागत-करने वाली है); ऐसा; (बम्ह-तरु) पलास का वृक्ष; (अलक्खि) दिखलाई देता था।

**टिप्पण**—पम्हल। कम्हार। म्ह। उम्ह। बम्ह। "पक्ष्मश्मष्म-स्म-ह्मां म्ह" (७४) इति पक्ष्मस्थस्य क्ष्मस्य श्मष्म ह्मां च म्हः॥ क्वचिन्न। रस्सि। सर॥

जण्हवि-जल-ससि-जुण्हा-सीयलमलि-पडल-कसण-कसिणदलं ।

अवरण्ह-विअसिअं आसि पाडलं रइअ-पल्हायं ॥३१॥

**अन्वयार्थ**—(जण्ह वि-जल) गंगा के पानी (के समान शीतल); (ससि-जुण्हा-सीयलम्) चन्द्रमा की चान्दनी के समान शीतल; ऐसा; (अलि-पडल-कसण) भँवरों के समूह के कारण से श्याम वर्ण वाले हो गये हैं; (कसिण) सभी पंखुड़ियाँ—सभी पत्ते (जिस फूल के) ऐसा; (अवरण्ह-विअसिअं) दिन के अन्तिम प्रहर में जो विकसित हुआ है; (रइअ-पल्हायं) (सुगन्ध आदि से) उत्पन्न की है प्रसन्नता जिसने; ऐसा (पाडलं) गुलाब का फूल (आसि) था।

**टिप्पण**—सण्ह। पण्हो। जण्हवि। जुण्हा। अवरण्ह। "सूक्ष्म श्न-ष्ण-स्न-ह्न-ह्ण-क्ष्णां ण्हः (७५) इत्यादिना सूक्ष्मस्य स्य क्ष्मस्य श्नष्णस्नह्नह्णक्ष्णां च ण्हः" विश्लेषे तु कृष्णकृत्स्नयोः कसण कसिण॥

पल्हायं "ह्लो ल्हः" (७६) इति ल्ह स्य ल्हः॥

अक्खलिअ-सुत्त-निच्चल-अणिट्ठुरोग्गीव-छच्चरण-भुत्तं ।
विरहिणि-दुक्खोप्पायन्तप्पायं कुरवयं फुडिअं ॥३२॥

**अन्वयार्थ**—(अक्खलिअ) अस्खलित=अर्थात्—उपद्रव नहीं करने वाले; अतएव (सुत्त) सोये हुए (के समान); अतः (निच्चल) स्थिर; (और) अणिट्ठु रो ग्गीव) कोमल और ऊँची कधरावाले; ऐसे; (छच्चरण) भँवरों द्वारा; (भुत्तं) जिसका रस खा लिया=चूस लिया गया है; ऐसा; (विरहिणी-दुक्खोप्पाय) विरहिणी—स्त्रियों के लिये दुःख उत्पन्न करने में, (अन्तप्पायं) अन्त—प्रायवाला अर्थात् मरणान्त कष्ट की पीड़ा उत्पन्न करने वाला; ऐसा (कुरवयं) कुरबक वृक्ष, (फुडिअं) (फूलों से) विकसित हुआ।

खग्गि-पिअ-सेर-मुद्धय-सिरीस-लग्गा अलक्खि भमरोली ।
नासीकय व्व भल्ली विक्कमि - कंदप्प - वीरेण ॥३३॥

**अन्वयार्थ**—(खग्गि) गेंडा; (के लिये) (पिअ) प्रिय; (सेर) विकसित, (मुद्धय) मनोज्ञ; (ऐसे) (सिरीस) शिरीष (के फूल थे) उन पर, (लग्गा) बैठी हुई (भमरोली) भँवरो की पंक्ति, (अलक्खि) दिखलाई पड़ रही थी (फूलों पर भँवरों की पक्ति ऐसी मालूम पड़ती थी कि—मानो) (विक्कमि कन्दप्प-वीरेण) पराक्रमी कन्दर्प-वीर से; (भल्ली) भल्ली नामक अस्त्र; (लोक को अपने वश में करने के लिये) (नासी कय व्व) मानो स्थापित किया हो।

**टिप्पण**—अक्खलिअ। सुत्त। निच्चल अणिट्ठुरो ग्गीव। छच्चरण। भुत्तं दुक्खोप्पाय। अन्तप्पायं। खग्गि। मुद्धय। "क-ग-ट-ड-त-द-प-श-ष-स-ᳵ-क-ᳶ पा मूर्ध्व लुक्॥ (७७) इत्यादिना एषाम् ऊर्ध्वस्थितानां लुक्॥

सेर। लग्गी। नासी। "अधो मनयाम्" (७८) इति मनयाम् अधः स्थानां लुक्।

भव्व-सरा वण-वारे सद्दिअ विक्कव पउत्थ वहु वन्द्रा ।
भद्रं व भद्द-सिरिणो पढिउं लग्गा पिगी महुणो ॥३४॥

**अन्वयार्थ**—(वण-वारे) वन के मुख्य द्वार पर; (सद्दिअ) शब्द बोल करके; (विक्कव-) कामदेव से विह्वल बना दिया है; (पउत्थ-वहु-वन्द्रा) प्रोषित—पतियो के समूह को जिसने; (ऐसी कोयल); (भव्वसरा) भव्य-स्वर वाली होती हुई; (महुणो) वसन्त ऋतु के; (भद्द-सिरिणो) श्रेष्ठ और सुन्दर शोभा रूप लक्ष्मी वाले के; (वसन्त का विशेषण); (भद्रं व) मंगलवाक्य की तरह;

(पढिउं) पढने के लिये; (पिगी) कोयल; (लग्गा) प्रारंभ हुई अर्थात् कोयल कामियों को उत्तेजित करने वाले मधुर स्वरों में बोलने लगी।

वक्कलि-दिआण सव्वाणोव्वेय -करी अकम्मसाणं पि।
आबल्ल - विरत्ताण वि दारन्ती हियय - दाराइं ॥३५॥

**अन्वयार्थ**—(सव्वाण वक्कलि दिआण) वृक्षों की छालों को पहिनने वाले सभी तापसों के लिये भी; (उव्वेय - करी) उद्वेग उत्पन्न करने वाली; (अकम्मसाणं पि) पाप को जिन्होंने धो डाला है, उनके (भी) (हियय-दाराइं) हृदय-द्वारों को; (आबल्ल-विरत्ताण वि) बच्चे से लगाकर विरक्त पुरुषों तक के भी; (हियय दाराइं) हृदय-द्वारों को=चित्त को; (दारन्ती) (अपनी वाणी द्वारा काम-भावना उत्पन्न करने के कारण से) चीरती हुई सी=घायल करती हुई सी (वह कोयल प्रतीत होती थी)

**टिप्पण**—विक्कमि। कंदप्प। सद्दिअ। विक्कव। वक्कलि। "सर्वत्र लबराम् अवन्द्रे" (७९) इत्यूर्ध्वाधः स्थितानाम् एषां लुक्॥ संयुक्तानाम् उभय प्राप्तौ यथादर्शन लोपः। क्वचिद् ऊर्ध्वम्। सव्वाणो। अकम्मसाणं। क्वचित्त्व धः। दिआण। आबल्ल॥ क्वचित् पर्यायेण। वारे दाराइं। अवन्द्र इति किम्। वन्द्र। संस्कृतसमोयं प्राकृत शब्दः॥ अत्र उत्तरेण विकल्पो पि न निषेध सामर्थ्यात्॥ भद्रं भद्द। "द्रे रो न वा" (८०) इति द्रे रस्य वा लुक्॥

अगणिअ धाइं धारी - सुआणुसरिआओ कोउहल्लेण।
फुल्लन्धुअ - धत्ति धाविआओ बाला नवं लवलिं ॥३६॥

**अन्वयार्थ**—(धाइं) धातकी-वृक्ष को; (अगणिअ) अवगणना करके उस ओर आकर्षित नहीं होकर; (धारी-सुअ-अणु-सरिआओ) धाय-माता के पुत्रों के पीछे-पीछे चलती हुई; (बाला) छोटी-छोटी बालिकाएँ; (कोउहल्लेण) कुतुहलता के साथ—आश्चर्य के साथ; (फुल्लन्धुअ-धत्ति) भँवरों के लिए रस प्रदान करने से धाय-माता के समान; (ऐसी) (नवं लवलिं) नूतन लवली=लता की ओर; (धाविआओ) दौड़ी। अर्थात् धातकी के फूलों की अपेक्षा भी लवली के फूल अधिक रमणीय और आकर्षक प्रतीत हुए; अतः बालिकाएँ उस ओर दौड़ीं।

**टिप्पण**—धाइं धत्ति। "धात्र्याम्" (८१) इति रस्य लुक्। पक्षे धारी॥

मायन्द-निउञ्जे कूजिएहिं अन्नाण-जाणि-मण-हरणा ।
मत्ता अतिण्ह-सर-सर-तिक्खण-विण्णाणिणि व्व पिगी ।। ३७ ।।

**अन्वयार्थ**—(मायन्द-निउञ्जे) आम्र वृक्षों के कुंज में; (कुजिएहिं) अपने मीठे कूजने रूप शब्दों द्वारा; (जिसने); (अन्नाण-जाणि-मण-हरणा) अज्ञानियों के और ज्ञानियो के मन को हरण कर लिया है; (अतिण्ह-सर-सर) अतीक्षण याने धारवाला नही है=भौठा—जो कामदेव का बाण है; उसको; (तिक्खण) तेज करने मे=धारदार करने मे; जो (विण्णाणि वि) विचक्षण बुद्धिवाली है; ऐसी; (पिगी) कोयल; (मत्ता) आम्र मंजरी का आस्वादन करने से मन्दोन्मत्त होती हुई (बोलने लगी)

**टिप्पण**—चूतस्य माकन्दादेशो "गोणादयः" (२.१७४) इत्येनेन । संस्कृतेपीत्यन्ये ।। तीक्ष्णं करोति "णिज् बहुलम्" (३.४) इति णिजि अन्त्य-स्वरलोपे तीक्ष्ण्यते इति घुति तीक्ष्णनम् ।।

अतिण्ह तिक्खण । "तीक्ष्णे णः" (८२) इति णस्य लुग् वा ।। अन्नाण जाणि । "ज्ञो भ" (८३) इति अस्य लुग् वा ।। क्वचिन्न विण्णाणिणि ।।

मज्झण्ह तरू मज्झण्ण-पुप्फ-जीविअ-दसार-वइ-पुत्तो ।
महु-जुव-मंसु-सरिच्छालि-गुच्छओ आसि मण-हरणो ।।३८।।

**अन्वयार्थ**—(मज्झण्ण-पुप्फ-जीविअ) मध्यान्हकाल मे खिलने वाले फूलों से जीवन-दान दिया है; (दसार-वइ-पुत्तो) विष्णु के पुत्र कामदेव को; जिस वृक्ष ने; ऐसा; (महु-जुव-मंसु-सरिच्छ) वसन्तरूप नवयुवक को मूंछों के समान; (अलिगुच्छाओ) भ्रमरो के गुच्छे लगे हुए—चिपके हुए है जिस वृक्ष पर; ऐसा वृक्ष; (मणहरणो) जो मन को आर्कषित करने वाला है; ऐसा; (मज्झण्ह-तरू) मध्याह्न तरू अर्थात् अत्यन्त रक्त वर्ण वाले और मध्याह्न में खिलने-वाले ऐसे फूलों वाला—वृक्ष (वहाँ पर) (आसि) था ।

**टिप्पण**—मज्झण्ह मज्झण्ण । "मध्याह्ने हः" इति हस्य लुक् वा ।।
दसार । "दशार्हे" (८५) इति हस्य लुक् ।।

हरि अन्द-रुप्पि- सरिसाण वि पहिआणं वणं मसाणं व ।
रत्तीसु अराईसु वि कसिण-पलासेहि खोहयरं ।।३९।।

**अन्वयार्थ**—(हरि अन्द-रुप्पि-सरिसाण वि) हरिश्चन्द्र और रुक्मी (रुक्मिणी का भाई) के समान, (पहिआणं) पथिकों के लिये; (वि) भी; (वणं)

वह; (पलाश वन) (मसाणं व) श्मशान की तरह; (भयंकरता उत्पन्न करता था) (रत्तीसु) रात्रियों में; (और) (अराईसु वि) दिनों में भी; अर्थात् रात और दिन; (कसिण-पलासेहिं) सभी पलाश-जाति के वृक्षों से; (खोहयरं) (वह वन) क्षोभ कर था—डरावना था।

**टिप्पण**—मंसु। मसाणं। "आदे: श्मश्रु श्मशाने" (८६) इति आदेर्लुक्॥ आर्षे श्मशानस्य सी आणं सुसाणं इत्यपि॥

हरि अन्द। "श्चो हरिश्चन्द्रे" (८७) इति लुग् वा॥

रुप्पि। रत्तीसु। "अनादौ शेषादेशयो द्वित्वम्" (इति द्वित्वम् क्वचिन्न। कसिण। अनादाविति किम्। खोह।

मुच्छिर-सरा कय-गुणक्खाण व्व अविग्घ-कट्ठमहु-पाणे।
नीसास-निज्झरा इव चउ-कट्ठं सिसिर-सिरि-मुक्का॥४०॥

**अन्वयार्थ**—(मुच्छिर-सरा) जिसका गुंजन रूप स्वर बढ़ रहा है; (ऐसे भ्रमर) (अविग्घ) बिना किसी बाधा के; (कट्ठ महु पाणे) फूल के रस-पान करने में, (कय-गुणक्खाण व्व) किया है गुणों का वर्णन जिन्होंने, मानो इस तरह से; (वे भँवरे) (चउ कट्ठं) चारों दिशाओं में; (नीसास-निज्झरा इव) निश्वास के झरने के समान; (सिसिर-सिरि-मुक्का) शीत-काल की लक्ष्मी द्वारा छोड़े गये हो; (ऐसे विचरते हुए वें भँवरें) बकुल-पुष्प पर गये—मँडराने लगे) (क्रिया आगे की गाथा में)।

निब्भर-महद्धि-गन्धे वण-सिरि-गुप्फत्थ-नील-मणि-निउरा।
अच्छि-पडिक्खण-मज्झे अवुड्ढ-बउले गया अलिणो॥४१॥

**अन्वयार्थ**—(वण-सिरि) वन की शोभा रूप लक्ष्मी के; (गुप्फत्थ) गुल्फस्थ-चरण-ग्रन्थि मे रहे हुए; (नील-मणि-निउरा) नीलमणियों वाले नुपूर के समान दिखलाई पड़ने वाले वे भँवरे; (निब्भर-महद्धि-गन्धे) सभी दिशाओं में व्याप्त महान् गन्ध वाले; (अवुड्ढ-बउले) नूतन-विकसित मौल सर-बकुल पुष्पों पर; (अलिणो) भँवरें; (अच्छि-पडिक्खण-मज्झे) आँख के पलक खुलने-गिरने-जितने समय-मात्र में ही; (गया) गये। (अर्थात् फूलों पर टूट पड़े)।

भसलालिद्ध-पसत्थोग्गय-पुप्फो आसि कामि-भिब्भलणो।
दिग्घामोओ दीहं ऊससिअ-रईसरो सिरिसो॥४२॥

**अन्वयार्थ**—(भसलालिद्ध) भवरों से; (रस-पान के लिए) छुवाया हुआ; अर्थात् जिस पर अनेक भँवरें बैठे हुए हैं; ऐसा; (पसत्थोग्गय-पुप्फो) जिसके

मनोहर पुष्प विकसित हो गये हैं; ऐसा, (कामि-भिब्भलणो) कामियों की विह्वलता उत्पन्न करने वाला; (दिग्घामोओ) जिसकी सुगन्ध सर्वत्र फैल रही है; ऐसा (ऊससिअ-रईसरो) जिसने रतीश्वर-कामदेव को पुनर्जीवित कर दिया है; ऐसा; (दीहं) विस्तृत=लम्बा (सिरिसो) शिरीष वृक्ष (आसि) था।

**टिप्पण**—मुच्छिर। गुणक्खाण। अविग्घ। कट्ठ। निज्झरा। कट्ठं। निब्भर। महद्धि। गुप्फत्थ। अच्छि। पडिक्खण। मज्झे। अवुड्ढ। आलिद्ध। पसत्थो। पुप्फो। भिब्भलणो। "द्वितीय तुर्ययोरुपरि पूर्वः" (९०) इति दित्व प्रसङ्गे उपरि पूर्वः। दिग्घा दीहं। "दीर्घे वा" (९१) इति घस्योपरि पूर्वो वा॥

**दो गाथाओं द्वारा कणेर वृक्ष का वर्णन—**

वम्मह - तंस - सरोवम - संझा-सुन्देर-हारि-कुंपल ओ।
विहलिअ-पहिओ धट्ठज्जुण-भाउ-समे वि कामकरो॥४३॥
कणिआर-तरू नव-कण्णिआर सुन्देर-दरिअ-सब्भावो।
हर-खन्द-जुग्ग-कुसुमो जाओ रञ्जिअ - हर-क्खन्दो॥४४॥
[युग्मम्]

**अन्वयार्थ**—(वम्मह-तंस-सरोवम) कामदेव के तीन कोण वाले बाण के समान है कुंपल-जिनकी; (संझा-सुन्देर-हारि कुंपलओ) संध्या की सुन्दरता को अपहरण करने वाली हैं कुंपलें जिनकी; ऐसे कनेर; (विहलिअ-पहिओ) (हृदय में कामभावना उत्पन्न करके) जो पथिकों को विह्वल बना देता है; (धट्ठज्जुण-भाउ-समेवि) धृष्टद्युम्न के भाई जो नपुंसक थे; ऐसे नपुंसकों में भी (कामकरो) जो कामभावना उत्पन्न कर देता था; ऐसा कणेर—

(हर खन्द-जुग्ग-कुसुमो) महादेव और कीर्तिकेय देवों के लिए पूजा के योग्य है पुष्प जिनके, (ऐसा कणेर) (रंजिअ हर-क्खन्दो) प्रसन्न हैं जिन फूलो से महादेव और कार्तिकेय (ऐसे फूलवाले कणेर) (नव-कण्णिआर-सुन्देर) नूतन उत्पन्न हुए कणेर के फूलों की सुन्दरता से; (दरिअ-सब्भावो) उत्पन्न हो गई है अहकार की भावना, जिसमें; ऐसा अहंकारशील प्रकृति-वाला (कणिआर-तरू) ऐसा कणेर का पौधा उस उद्यान में; (जाओ) उत्पन्न हो गया था।

टिप्पण—ऊससिअ । रईसरो । तंस । संझा । कुंपल ओ । "न दीर्घानुस्वारात्" (९२) इति न द्वित्वम् ॥

सुन्देर । विहलिअ । "रहो:" (९३) इति न द्वित्वम् ॥ अट्ठज्जुण । "धृष्टद्युम्ने ण:" (९४) इति न द्वित्वम् ॥

कणिआर कण्णिआर । "कर्णिकारे वा" (९५) इति वा न द्वित्वम् ॥ दरिअ । "दृप्ते" (९६) इति न द्वित्वम् ॥

पिअ-कुसुम-पयर-पूरिअ-कुसुम-प्पयरो पमुक्क-मेव-सिरी ।
तेल्ल-सणिद्धालि-कलापम्मुक्को आसि वेइल्लो ॥४५॥

**अन्वयार्थ**—(पिअ कुसुम-पयर) प्रिय है जिन्हें फूलों का समूह उनके लिए; (पूरिअ-कुसुम-प्पयरो) प्रदान किया है फूलों का समूह जिसने; ऐसा; (पमुक्क-मेर-सिरी) जिस वृक्ष के सौन्दर्य की कोई अवधि नहीं हैं; ऐसा; अर्थात् अपरिमित सौंदर्यवाला; (तेल्ल-सणिद्धालि-कलापम्मुक्को) तेल के समान स्निग्ध=मनोरम-कान्तिवाले भँवरों के समूह से जो परिलिप्त हैं; ऐसा, (वइल्लो) विचकिल नामक वृक्ष-विशेष=फूलोंवाला; (आसि) (उस उद्यान में) था ।

**टिप्पण**—(हर-खन्द हर-कखन्दो) कुसुम-पयर कुसुम-प्पयर । "समासे वा" (९७) इति द्वित्वम् ॥ बाहुलकाद् अशेषादेशयो रपि । पमुक्क पम्मुक्क इत्यादि ।

कोल्ला-सोत्त-पडिच्छन्दीकय-रय-सेव्व-घम्म-सलिलेण ।
पुप्फिअ-लवली जाया सेवा-जुग्गा मयच्छीणं ॥४६॥

**अन्वयार्थ**—(कोल्ला-सोत्त) बनावटी छोटी नदी; (के) (पडिच्छन्दी) समान; (कय-रय-सेव्व) रति के सेवन से उत्पन्न; (घम्म-सलिलाण) पसीने रूप जलवाली; (मयच्छीणं) मृगाक्षी स्त्रियों के; (सेवा-जुग्गा) उपयोग-योग्य; (पुप्फिअ-लवली) ऐसी—फूलोंवाली लवली, (जाया) (उस उद्यान में) उत्पन्न हो गई थी ।

**टिप्पण**—तेल्ल । वेइल्लो । सोत्त । "तैलादौ" (९८) इति द्वित्वम् । आर्षे । पडिसोओ । विस्सो असिआ ।

महु-नक्ख-आउह-नह व्व आसि सारङ्गि-वत्थ-कन्तीइं ।
छमरुह-रयण-पलासे कुसुमाइं सलाह-पत्ताइं ॥४७॥

**अन्वयार्थ**—(महु-नक्ख-आउह-नह व्व) वसन्त-रूप सिंह के नखों के समान आयुध वाला; (सारङ्गि-वत्थ-कन्तीइं) विष्णु के वस्त्रों के समान

कान्तिवाले;(सलाह-पत्ताइं)प्रशसा के योग्य पंखुड़िवाले(कुसुमाइँ)पुष्प;(छमरुह-रयण-पलासे) वृक्षों में रत्न के समान पलाश पर; (आसि) (उग आये) थे ।

**टिप्पण**—सेव्व । सेवा । नक्ख । नह । "गेवादौ वा" (९९) इति वा द्वित्वम् ।।

सारङ्गि । "शार्ङ्गे ङात् पूर्वोत्" (१००) इति ङात् पूर्वः अत् । छम । रयण । सलाह । "क्ष्माश्लाघा-रत्नेन्त्यव्यञ्जनात् ।। (१०१) पूर्वः अत् ।।

जुव-जण-जणिअ-सणेहा पउत्थ-विरहागणिम्मि णेह-समा ।
मयण-पयावग्गि-णिहा पलक्ख-तरु-पल्लवा जाया ।।४८।।

**अन्वयार्थ**—(जुव-जण-जणिअ-सणेहा) युवा पुरुषों में उत्पन्न कर दिया है अपनी स्त्रियो के प्रति अनुराग जिसने; (पउत्थ-विरह-अगणिम्मि) अपनी-अपनी प्रियाओ का विरह ही है अग्नि जहाँ पर; ऐसी अग्नि में; (णेह-समा) (अग्नि को उत्तेजित करने में) जो तेल आदि के समान हैं; (मयण-पयावग्गि) (कामदेव के प्रताप को सहन करना अति कठिन है) अत: ऐसी अग्नि के; (णिहा) तुल्य; (जो वृक्ष हैं) (पलक्ख-तरु-पल्लवा) ऐसे बड़-वृक्ष के पत्ते; (जाया) उत्पन्न हो गये थे ।

**टिप्पण**— सणेहाणेह । अगणिम्मि अग्गि । "स्नेहाग्न्यो र्वा"(१०२) इति सयुक्तान्त्यात् पूर्वः अत् ।।

पलक्ख । "प्लक्षे लात्" (१०३) इति लात् पूर्वः अत् ।।

सिरि-नन्दण-किरिआरिह-तरुणीहिं चइअ-कसिण-हिरिआहिं ।
अह कुसुमावचय-कलाओ दंसिआ दिट्ठिआ भणिउं ।।४९।।

**अन्वयार्थ**—(सिरि-नंदण-किरिआ-अरिह-तरुणीहि) कामदेव के अनुरूप याने कटाक्ष-विक्षेप-सहास्य-कथा आदि-क्रियाओं में योग्य—ऐसी स्त्रियों द्वारा; (चइअ-कसिण हिरिआहिं) जिन्होने सभी प्रकार की लज्जा का परित्याग कर दिया है, ऐसी स्त्रियों द्वारा; (अह) अथ; (कुसुमावचय-कलाओ) फूलों के चुनने की कलाओं को, (भणिउं) परस्पर में कह करके; (दिट्ठि आ) आनन्द-पूर्वक, (दसिआ) (उस उद्यान में) प्रदर्शित की गई ।

**टिप्पण**—सिरि । किरि आरिह । कसिण । हिरिआहिं । दिट्ठि आ "ई-श्री ह्री-कृत्स्न क्रिया दिष्ट्या स्वित्" (१०४) इत्यादिना एषु संयुक्तान्त्यात् पूर्व इः ।

**कुसुमोच्चय वर्णनम्** (५०-७२)

वासेणं वरिसेहिं वि नामरिसो किर पियाइ जो गमिही ।
सो दरिसिअ-नव-चूए पिए गओ झत्ति हरिस-वसा ॥५०॥

**अन्वयार्थ**—(वासेणं वरिसेहिं वि) एक वर्ष से अथवा-अनेक वर्षों से; (जो) जो; (पियाइ) प्रिया का; (अमरिसो) मान; (किर) निश्चय करके; (न) नहीं; (गमिही) गया था; (सो) वह; (पिए) प्रिय-आनन्द-दायक; (दरिसिअ-नव-चूए) नूतन आम्र-पल्लव देखते ही; (झत्ति) जल्दी से; (हरिस-वसा) हर्ष के कारण से; (गओ) चला गया ।

मयण-वइरग्गि-तत्तेण तोसिआ सुदढ-माण-तविअ-पिआ ।
का वि वज्ज-कढिण हिअया केण वि दाउं-बउल-दामं ॥५१॥

**अन्वयार्थ**—(मयण-वइरग्गि-तत्तेण) कामदेव ही है एक प्रकार की वज्राग्नि; उससे संतप्त; (केण वि) किसी भी; (कामुक) द्वारा; (सुदढ-माण-तविअ-पिआ) सुदृढ-मान से तप्त-प्रिया; (वज्ज-कढिण-हिअया) वज्र के समान कठिन है हृदय जिसका; ऐसी—पत्नि (का वि) कैसे भी-किसी तरह से; (बउल-दामं) मोलसरी बकुल पुष्पों की माला; (दाउं) दे करके; (तोसिआ) प्रसन्न की गई ।

**टिप्पण**— दंसिआ दरिसिअ । वासेणं वीरसेहिं । वइर वज्ज । तत्तेण तविअ । "र्श-र्ष तप्त-वज्रे वा" (१०५) इत्यादिना संयुक्तान्त्यात् पूर्व इर्वा ॥ व्यवस्थित विभाषया क्वचिन्नित्यम् । नामरिसो । हरिस ॥

कीइ वि किलन्त-कम-विप्पव-हरणा मल्लिआण मालाओ ।
महु-सुक्क-पक्ख-जुण्हा-पव व्व उप्पाविआ गयणे ॥५२॥

**अन्वयार्थ**—(कीइ वि) किसी (स्त्री) द्वारा; (किलन्त-कम-विप्पव-हरणा) थके हुओं के खेद के कारण से अंगों को उत्पन्न शिथिलता को जो दूर करने वाली है; ऐसी; (मल्लि आण-मालाओं) विचकिल ,जाति के फूलों की मालाएँ; (गयणे) आकाश में; (उप्पाविआ) फेंकी हुई; (ऐसी मालूम होती थी-मानों) (महु-सुक्क-पक्ख-जुण्हा-पव व्व) वसन्तरूप-शुक्लपक्ष की चान्दनी का-पूर आया हो—जैसा; (मालूम देता था) ।

**टिप्पण**—किलन्त । "लात्" (१०६) इति संयुक्तान्त्यलात् पूर्व इः । क्वचिन्न । कम । विप्पव । सुक्क-पक्ख । पव । उप्पाविआ ॥

गुम्फन्ती जव-दामं भविअ-सिआवाइ-चेइअ निमित्तं ।
का वि जुवई जुवाणय-मण-थेरिअ-चोरिअमकासि ॥५३॥

**अन्वयार्थ**—(भविअ-सिवावाइ-चेइअ-निमित्तं) भव्य स्याद्वादी-जिनेश्वर के चैत्य के निमित्त; (जव-दाम जवा-कुसुम की माला को; (गुम्फन्ती) गूंथती हुई; (का वि) किसी एक, (जुवई) युवती ने; (जुवाणय-मण-थेरिअ-चोरिअम्) नव युवक के मन की स्थिरता की चोरी; (अकासि) कर ली। (नवयुवक माला गूंथती हुई स्त्री की ओर अत्यधिक आकर्षित हो गया।

**टिप्पण**—भविअ। सिआवाइ। चेइअ। थेरिअ। चोरिअ। "स्याद्भव्य-चैत्य-चौर्यसमेषु यात्" (१०७) इत्यादिना स्यादादिषु चौर्यसमेषु च यात् पूर्व इः ॥

सिविणम्मि व अइदुलहा सिणिद्ध-कुसुमा सणिद्ध-मयरन्दा ।
परिमल-णिद्धा कीइ वि रइआ वासन्तिआ-माला ॥५४॥

**अन्वयार्थ**—(सिविणम्मि वि अइदुलहा) स्वप्न में भी अति दुर्लभ; (सिणिद्ध-कुसुमा) स्निग्ध-सरस फूलोंवाली; (सणिद्ध-मयरन्दा) स्निग्ध पराग से युक्त परिमल, (णिद्धा) सुगन्ध से परिपूर्ण ऐसे; (वासन्तिआ-माला) माधवी-लता के पुष्पों से एक माला; (रइआ) बनाई गई।

**टिप्पण**—सिविणम्मि "स्वप्ने नात्" (१०८) इति नात् पूर्व इः ॥

सिणिद्ध सणिद्ध। "स्निग्धे वादितौ" (१०९) इति नात् पूर्वौ आदितौ वा। पक्षे णिद्धा ॥

कण्ह-कसिणालि-कसणा लवली गन्धारिहा वि नोच्चिणिआ ।
केण वि कज्जल-कण्हं सुमरिअ कबरिं पिअयमाए ॥५५॥

**अन्वयार्थ**—(कण्ह-कसिणा-अलि-कसणा) कृष्ण के समान काले रंगवाले भ्रमरों के द्वारा काली-काली दिखाई पड़ने वाली; (गंधारिहा वि) सुगन्धसहित होती हुई भी; (लवली) लवली लता के फूल; (केण वि) किसी एक पुरुष द्वारा; (कज्जल कण्हं) काजल के समान काली; (पिअयमाए) प्रियतमा की; (कबरिं) चोटी को; (सुमरिअ) याद करके; (नोच्चणिआ) चयन=इकट्ठे नहीं किये; (कहीं इन फूलों का चयन करने से प्रिया की स्मृति नहीं जाग उठे इस भय से उन फूलों पर हाथ नहीं लगाया।)

**टिप्पण**—कसिण। कसणा कण्हं। "कृष्णे वर्णे वा" (११०) इति संयुक्तान्त्यात् पूर्वौ आदितौ वा। वर्ण इति किम्। विण्हो कण्ह ॥

अणरहु अणरुहु-दामं रे मुक्ख मुरक्ख करसि इअ भणिउ ।
पोम्मच्छीए हणिओ को वि पिओ पाय-पउमेण ॥५६॥

**अन्वयार्थ**—(अणरहु) अयोग्य और; (रे मुक्ख-मुरुक्ख) अरे मूर्ख ! मूर्ख ! (अणरुहु-दामं) (मेरी माला को) अयोग्य माला; (करसि) करता है; (इअ) ऐसा; (भणिउ) कह करके; (पोम्मच्छीए) पद्म जैसी आंखों वाली स्त्री के; (पाय-पउमेण) चरण-कमल-द्वारा; (को वि पिओ) कोई भी प्रिय; (हणिओ) पीटा गया अर्थात् किसी प्रियतमा ने अपने प्रिय को लात मारी।

**टिप्पण**—मुक्ख-मुरुक्ख इत्यत्र कोपे "संमत्यसूया" (हे० ७४) इत्यादिना द्विरुक्ति ॥

अरिहु अणरहु अणरुहु। "उच्चार्हति" (१११) इति सयुक्तान्त्यात् पूर्वं उत् अदितौ च ॥

छउमेण अछम्मेण य साम-दुवारेण दण्ड-वारेण ।
केण वि का वि अगेज्झा बउलेहि पसाइआ तणुवी ॥५७॥

**अन्वयार्थ**—(छउमेण) कपट से; (य) और; (अछम्मेण) अकपट=सरलता से; तथा (साम-दुवारेण) शान्ति के साथ समझाने से; (दंड-वारेण) यदि आज्ञा नही मानोगी तो अपना संबंध टूट जायगा=इस प्रकार दंड-रीति से; (केण वि) किसी एक नायक द्वारा; (का वि) कोई एक नायिका, (तणुवी) कोमल अंगवाली; (अगेज्झा) कठोर हृदयवाली भी; (बउलेहि) केशर के फूलों से या मोलसरी के फूलों से; (पसाइआ) प्रसन्न की गई।

**टिप्पण**—मुक्ख मुरुक्ख । पोम्म पउमेण । छउमेण अछम्मेण । (दुवारेण वारेण) "पद्मच्छद्ममूर्खद्वारे वा" (११२) इति संयुक्तान्त्यात् पूर्वं उत् वा ॥

गरुवीओ लवलीओ सुहुमे वत्थे सुरुग्घजे खित्ता ।
कीए वि हु मुद्धाए सुवे विहसिरा वि कलिआओ ॥५८॥

**अन्वयार्थ**—(कीए वि मुद्धाए) किसी एक मुग्धा द्वारा; (हु) निश्चय करके; (सुहुमे) सूक्ष्म; (सुरुग्घजे) विशेष देश में उत्पन्न; (वत्थे) वस्त्र; में (गरुवीओ) बड़ी; (लवलीओ) लवली लता के; (सुवे) काल=दूसरे दिन; (विहसिरा) खिलनेवाली; (कलिआओ वि) कलिकाएँ भी; (खित्ता) (तोड़-तोड़ करके) डाली गई; अर्थात् इकट्ठी की गई।

**टिप्पण**—तणुवी । गरुवी । उकारान्ता ङी प्रत्ययान्तास्तन्वीतुल्या स्तेषु "तन्वीतुल्येषु" (११३) इति संयुक्तान्त्यात् पूर्वं उः ॥ क्वचिद् अन्यत्रापि ॥ स्रु रुग्घ । आर्षे । सुहुमं ।

कुसुमाकर-रिउ-स-जणा सुवे जणा पारिजाय-तरुणो व्व ।
सर-जीआ भालि-कुला सर-ठग-वाणारसि-पएसा ॥५९॥

**अन्वयार्थ**—(कुसुमाकर-रिउ) फूलो की उत्पत्ति स्थानरूप वसन्त ऋतु के; (सजणा) स्वजन अर्थात् पुष्प-पत्र आदि; (पारिजाय-तरुणो व्व) पारिजात-देववृक्ष के, (सुवे जणा) स्वजन के समान; (प्रतीत होते थे) (सर-जीअ-आभा-अलि-कुला) कामदेव के धनुष की डोरी के समान भँवरों का समूह है जहाँ पर ऐसा, (सर-ठग-वाणारसि-पएसा) कामदेव रूप ठग के निवास-स्थान-रूप बनारस के समान वह उद्यान प्रतीत होता था ।

आणाल व्व कणेरूहि कुरवया दढयरं समालिद्धा ।
वर-विलयाहि अहरिआचलपुर - मरहट्ठ - जुवईहि ॥६०॥

**अन्वयार्थ**—(अहरिअ) (अपने सौन्दर्य से) तिरस्कृत कर दिया है अचलपुर=देवताओं की नगरी को भी; जिन्होने; ऐसी; (मरहट्ठ-जुवईहि) महाराष्ट्रीय नव-यौवन-सम्पन्ना; (वर-विलयाहि) ऐसी श्रेष्ठ स्त्रियों द्वारा; (कुरवया=) कुरबक कट सरैया का वृक्ष; (दढयर) मजबूती के साथ (इस प्रकार) (समालिद्धा) भुजाओं से आबद्ध करके घेर लिया गया था; (जिस प्रकार कि) (कणेरुहि) हाथियों द्वारा; आणाल)=स्तंभ; (हाथी बांधने का स्तंभ) घेर लिया जाता है, (व्व) की तरह ।

**टिप्पण**—"वाक्यर्थ वचनाद्याः" (१.३३) इति आलानस्य पुंस्त्वम् ॥

सुवे । सुवे । "एक स्वरे श्व स्वे" (११४) इति श्वः स्वयोरन्त्य व्यञ्जनात् पूर्वं ईत् ॥

वाणारसि । कणेरूहि । "करेणूवाराणस्यो-र-णोर्व्यत्ययः (११६) इत्यादिना रणयोर्व्यत्ययः करेणू इति स्त्रीलिङ्गा निर्देशात् पुंसि न ॥

आणाल । "आलाने लनोः" (११७) इति लनोर्व्यत्ययः ॥

मरहट्ठ । "महाराष्ट्रे हरोः" (११९) इति हरयोर्व्यत्ययः ॥

लवणिम-जल-द्रह निह-नाहि-मण्डले उच्चिणेसु लहु अमिमं ।
हलि आर-गोरि हरि आल-वन्नयं हलुअममिलायं ॥६१॥

**अन्वयार्थ**—(लवणिम-जल) लावण्य ही है एक प्रकार का जल; (उस जल के लिये) (द्रह-निह) ह्रद=कुण्ड के समान है; (नाहि-मंडले)

नाभिमंडल जिसका; ऐसी (हे सुन्दर शरीर वाली और सुन्दर नाभिवाली); (हे हलिआर-गोरि) हे हरिताल के समान गौर-वर्णवाले; (इमं) इस; (लहु अम्) छोटे से; (अभिलाय) कुरंटक के फूल को; (हलुअम्) धीरे से परन्तु शीघ्रता के साथ; (उच्चिणेसु) तोड़ ले=चयन कर ले।

वण-सिरि-णडाल-तिलयं तिलयं गेग्रहं तए वर-णलाडे।
गेज्झा थोव-परिमलं अथोक्क-जहणे अथेव-सिरि ॥६२॥

**अन्वयार्थ**—(वरणलाडे) हे रम्य ललाटवाली! (अथोक्क जहणे) हे व्यवस्थित आकार की जंघावाली! (वण-सिरि-णडाल तिलयं) वन-शोभा-रूप लक्ष्मी के ललाट के लिए तिलक समान; (अथेव-सिरि) महान शोभामय; (अथोव-परिमलं) महान सुगंध मय; (गेज्झ) ग्रहण करने योग्य; [तए] तुम्हारे द्वारा; [गेग्हं] ग्रहण करने योग्य है। तिलयं यह तिलक का फूल।

दाही अथोअ-कुसुमेहि सेहरं दिट्ठिएह बिम्बोट्ठि।
धूआ-बहिणी-भइणी-दुहिअ व्व तुह प्पिआ लवली ॥६३॥

**अन्वयार्थ**—(धूआ-बहिणी भइणी-दुहिअ व्व) पुत्री बहिन और बहिन की लड़की के समान; (तुह) तुम्हें; (प्पिआ) जो प्रिय है; ऐसी; (लवली;) लवली-लता (बिम्बोट्ठि) हे बिम्ब-फल के समान होंठ वाली; (अथोअ-कुसुमेहि) बहुत पुष्पो से; (दिट्ठिएह) आनन्दपूर्वक; (सेहरं) शेखर, (दाही) देगा।

छूढासव-गण्डूसे खित्तं - पउत्ताडणे समुच्चिणसु।
पुप्फाइं बउल-वच्छे असोअ-रुक्खे अ बिलय-वरे ॥६४॥

**अन्वयार्थ**—(छूढ-आसव-गण्डूसे) मुंह में कुल्ला भरके छांटा है आसव को; जिस बकुल वृक्ष पर; ऐसे (बउल-वच्छे) मोलसिरी के वृक्ष पर स्थित फूलों को; (अ) ओर; (खित्त-पउत्ताडणे) (पैर फेंककर) पैर की चोट पहुंचाई है जिस वृक्ष को; ऐसे (असोअ-रुक्खे) अशोक वृक्ष पर; (स्थित) (पुप्फाइं) पुष्पों को; (हे विलय-वरे!) हे स्त्रियों में श्रेष्ठ!; (समुच्चिणसु) इकट्ठे कर।

सुर-वणिआ-नाग-त्थी-अक्कूर-कय-हरिसमीसि-उल्लसिअं।
पिच्छेत्थी-धिइ-जणइं दिहि-मइ हिंताल-मञ्जरिअं ॥६५॥

**अन्वयार्थ**—(सुर-वणिआ-नाग-त्थी) देवताओं की वनिताओं के लिये और नागजाति की स्त्रियों के लिये; (अक्कूर-कय-हरिसम) उत्पन्न किया है

प्रभूत हर्ष; जिसने ऐसा; (ईसि-उल्लसिअं) जो थोड़ा सा ही खिला है; (इत्थी-धिइ-जणइं) जो स्त्रियों में धैर्य को उत्पन्न करने वाला है; ऐसे; (हिंताल मंज-रिअं) हिन्ताल की मंजरी को; (हे दिहिमइ !) हे धैर्य शील बुद्धि वाली ! (पिच्छ) देख।

सिसु-मञ्जर-जुव-वञ्जर-जर-मज्जारेहिँ पल-भमा दिट्ठं।

वेरुलिअ-केसि वेडुज्ज-भूसणे किंसुअं लेसु ॥६६॥

**अन्वयार्थ**—(सिसु-मंजर-जुव-वंजर-जर-मज्जारेहिं) बाल-युवा और वृद्ध सभी बिल्लिओ द्वारा; (पल-भमा) जो (फूल) भ्रम से मांस रूप; (दिट्ठं) देखा गया है=समझा गया है; ऐसे (किंसुअं) पलास के फूल को; (हे वेरुलिअ केसि) हे नील मणि के समान बालवाली; (हे वेडुज्ज-भूसणे) हे मरकत मणियों से विभूषित आभूषणो वाली; (लेसु) उस फूल को लो।

एण्हि पिच्छेत्ताहे गिण्हसु रम्भं कुणेसु अ इमाए।

पुरिमाणं पि अपुव्वं आमेलं हित्थ-हरिणच्छि ॥६७॥

**अन्वयार्थ**—(एण्हि) इस समय में, (रम्भं) कदली के फूल को, (पिच्छ) देख; (एत्ताहे) इस समय में (गिण्हसु), (कदली फूल-को) ग्रहण कर, (अ) और; (इमाए) इस कदली फूल द्वारा; (पुरिमाणं पि) पहिले इसको देखे हुए व्यक्तियो के लिये भी; (अपुव्वं) अपूर्वदृष्ट=अनोखा ही; (इमाए) इसका; (आमेल) पुष्पो का शिरो-भूषण; (कुणेसु) तैयार कर; (हे हित्थ-हरिणच्छि) हे डरे हुए हरिण के समान आँखोंवाली; (अर्थात् मुकुट पर रखने योग्य फूलो की माला तैयार कर)।

तट्ठा तत्थालि-कुलो भयस्सई अट्ठमो व्व पहिआण।

तुह जुग्गो पुन्नामो रूवेण बहस्सइ-घरिल्ले ॥६८॥

**अन्वयार्थ** (पहिआण) पथिकों के लिए; (अठ्मो) आठवाँ; (भयस्सई व्व) बृहस्पति के समान; (तट्ठ अतत्थ-अलिकुलो) जिस फूल पर भँवरों का समूह; (चंचलता के कारण से मानों) चकित है अथवा अचकित है इस रीति से घूम रहा है; ऐसा (पुन्नामो) पुन्नाग लता का फूल; (हे रूवेण बहस्सइ-घरि-ल्ले) हे रूपसम्पन्न होने के कारण बृहस्पति के लिये पत्नि बनने योग्य महिला; (तुह) तुम्हारे लिये (जुग्गो) (यह पुन्नाग फूल) योग्य है।

अमइल-तणु परिगुम्फिअ-पोप्फलि-मउरेण भसल-मलिणेण।

अवह-कुचोवह-हत्थोभय-चलणे तुज्झ भूसेमि ॥६९॥

**अन्वयार्थ**—(भसल-मलिणेण) भवरों के कारण से जो मलीन जैसी दिखलाई पड़ रही है; ऐसी; (परिगुम्फिअ) जो चारों ओर से परिवेष्टित है; ऐसी; (पोप्फलि-मउरेण) सुपारी के बाल पुष्प से; (हे अमइल-तणु) हे अमलिन तनु अथवा विशद आकृतिवाले शरीरवाली; (तुज्झ) तुम्हारे; (अवह-कुच) दोनों स्तनों को; (अवह-हत्थ) दोनों हाथों को; और (उभय-चलणे) दोनों पैरों को, (भूसेमि) अलंकृत करता हूं।

सिप्पि-पिहु-नयण-छुत्तोत्तंसे आढत्त-संझ-रायमिमं।
उच्चिणसु भमर-छिक्कं महु-पाइक्कं जवा-कुसुमं ॥७०॥

**अन्वयार्थ**—(हे सिप्पि-पिहु-नयण-छुत्त-उत्तंसे) हे सीप के समान विस्तीर्ण-आंखों द्वारा छुए गये हैं दोनों कर्ण-पूर जिसके ऐसी; तुम (आढत्त-संझ-रायम्) जिसने धारण कर लिया है संध्या कालीन-रक्तता को; ऐसा (भमर-छिक्क) जो भँवरों की बहुलता से छा जाने पर लुप्त जैसा हो गया है; (महु-पाइक्कं) जो मधु-वसन्त ऋतु के लिये (काम-उत्तेजना में सहायक होने से) नौकर जैसा है ऐसा; (इमं) इस; (जवा-कुसुमं) जवा-जाति के फूल को; (उच्चिणसु) चुनलो।

आरद्ध-बहल-परिमल-केलि-पयाई कयन्न-तरु-कुसुमं।
किडि-दाढ-सुत्ति-भङ्गोज्जल मुच्चिण फुल्ल-वेइल्लं ॥७१॥

**अन्वयार्थ**—(आरद्ध-) प्रारंभ की है; (बहल-परिमल-केलि) प्रगाढ़ सुगन्ध की विलासिता को; (आनन्द को) जिसने ऐसा; (ऐसी विलासिता से जिसने) (पयाई कयन्न-तरु कुसुमं) हीन-कोटि के प्रमाणित कर दिये हैं अन्य तरुओं के फूलों को जिसने; (किडि-दाढ) शूकर की दाढ के समान; (—उज्ज्वल); (सुत्ति-भंग) सीप के टुकड़ों के समान; (उज्जलम्) उज्ज्वल; (फुल्ल-वेइल्लं) विकसित-मल्लिका के फूल को; (उच्चिण) चुन लो।

**टिप्पण**—द्रह। "ह्रदे हृदोः" (१२०) इति हृदयोर्व्यत्ययः। आर्षे हरए मह-पुण्डरिए॥

हलिआर हरिआल। "हरिताले रलोर्न वा" (१२१) इति रलयो र्व्यत्ययो वा।

लहुअं हलुअं। "लघुके लहोः" (१२२) इति लहोर्व्यत्ययो वा॥

णडाल णलाडे। "ललाटे लडोः" (१२३) इति लडोर्व्यत्ययोः वा॥
आदेर्लस्य णविधानाद् (१.२५७) द्वितीयो लः स्थानी॥

गेय्हं गेज्झ "ह्य ह्यो:" (१२४) इति हययो र्व्यत्ययो वा ।

अथोव अथोक्क अथेव । "स्तोकस्य थोक्क थोव थेवा:" (१२५) इति स्तोकस्य त्रय आदेशा वा । पक्षे अथो अ ।

धूआ दुहिअ । बहिणी भइणी । "दुहितृ भगिन्यो धूआ बहिण्यौ" (१२६) इति अनयो: एतावादेशौ वा ।।

छूढा खित्त । वच्छे रुक्खे । "वृक्षक्षिप्तयो रुक्ख छूढौ" (१२७) इति अनयोर्यथासंख्यरुक्खछूढौ वा ।।

विलय वणिआ । "वनिताया विलया" (१२८) इति विलयादेशो वा । विलयेति सस्कृतेपीति केचित् ।।

अकूर । "गौणस्येषत कूर:" (१२९) इत्यादिना ईषतो गौणस्य कूरो वा । पक्षे ईसि ।। थी (इत्थी) "स्त्रिया इत्थी" (१३०) इति स्त्रिया इत्थी वा ।।

धिइ दिहि । "धृतेर्दिहि:" (१३१) इति धृते र्दिहिर्वा ।।

मञ्जर वञ्जर । "मार्जारस्य मञ्जर-वञ्जरो (१३२) इत्यनेन मार्जारस्य मञ्जर वञ्जरी" पक्षे मज्जारेहि ।।

वेरुलिअ वेडुज्ज । "वैडूर्यस्य वेरुलिअं" (१३३) इति वेरुलिअ वा ।।

एण्हि एत्ताहे । "एण्हि एत्ताहे इदानीम:" (१३४) पक्षे इआणिं ।।

पुरिमाणं । "पूर्वस्य पुरिम:" (१२५) पक्षे अपुव्वं ।।

हित्थ तट्ठा । "त्रस्तस्य हित्थतट्ठौ" (१३६) पक्षे तत्थ ।।

भयस्सई । "बृहस्पतौ बहो भय:" (१३७) पक्षे बहस्सइ ।।

मइल मलिण । अवह उभय । सिप्पि सुत्ति । छुत्तो छिक्कं ।। आढत्त आरद्ध । पाइक्कं पयाई । "मलिनो भय-शुक्ति-छुप्तारब्ध पदातेमईलावह-सिप्पि छिक्काढत्त-पाइक्क (१३८) इत्यादिना एषां यथासंख्यं मइलादयो वा । उवह इत्यपि केचित् ।। आर्षे उभओ काल इति ज्ञेयम् ।।

दाढ । "दंष्ट्राया दाढा" (१३९) दाढा संस्कृतेप्यस्ति ।।

बाहिं अबाहिरे फुड-पमेहिं पेअसीओ तरु-हेट्ठे ।
केहिं पि इआलविआ रईइ माउच्छ-धूअ व्व ।।७२।।

**अन्वयार्थ**—(बाहि-अबाहिरे) बाह्य और भीतर दोनों ही दृष्टि से; (फुड-पमेहिं) प्रगाढ़ प्रेमवालों (द्वारा); (केहिं पि) किन्हीं द्वारा; (तरु-हेट्ठे) वृक्ष के नीचे; (पेअसीओ) अपनी प्रियतमाएँ; (इअ) इस प्रकार; (आलविआ) बोली गई; (रईइ) रति की; (माउच्छ) मौसी की; (धूअ व्व) पुत्री के समान; (तुम हो)

रति की माता की दो बहिनें हैं जिनमें से एक ने तो रति को उत्पन्न किया है; और दूसरी ने "हे प्रियतमे ! तुमको उत्पन्न किया है; इसीलिये तुम रति के समान सुन्दर दिखलाई पड़ रही हो।"

**टिप्पण**—बाहि अबाहिरें। "बहिसो बाहि बाहिरौ" (१४०) हेट्ठे। "अधसो हेट्ठं" (१४१)।

नियं-माउसिआ-पिउसिअ-पिउच्छ-तणया-घरे व्व उज्जाणे।

मिहुणेहिं हित्थ-तिरच्छि - पिच्छिरेहिं रमिअमेअं ॥७३॥

**अन्वयार्थ**—(निअ) अपनी; (माउसिआ) मौसी का; (पिउसिअ) भुवा का; और (पिउच्छ-तनया) भुवा की लड़की का; (घरे व्व) ही मानो घर हो ऐसे; (उज्जाण) उस बगीचे में; (हित्थ-तिरिच्छि) डरे हुए और तिरछी दृष्टि से; (पिच्छिरेहिं) देखते हुए; (मिहुणेहिं) उन स्त्री-पुरुषों के युगलों द्वारा; जोड़ों द्वारा, (ऐअं) इस प्रकार; (रमिअम्) रमण क्रिया की गई।

**टिप्पण**—माउच्छ माउसिआ। पिउसिअ पिउच्छ। "मातृ पितुः स्वसुः सिआ-छौ (१४२) इत्यादिना मातृ-पितृभ्यां परस्स स्वसुः सिआ छा इत्यादेशौ॥

तिरिच्छि। "तिर्यचस्तिरिच्छिः (१४३)॥ आर्षे तिरि आ इति ज्ञेयम्॥

आसण-ठिआइ घरिणीइ गह-वई झम्पिऊण अच्छीइं।

हसिरो मोत्तुं सङ्कं चुम्बिअ अन्नं सढो मुइओ॥७४॥

**अन्वयार्थ**—(आसण-ठिआइ) आसन पर बैठी हुई; (घरिणीइ) अपनी पत्नि की; (अच्छीइं) दोनों आंखों को; (झम्पिऊण) बन्द करके; (संकं) (अपनी पत्नि की ओर से) शंका को; (मोत्तुं) छोड़कर; (अर्थात् निश्शंक होकर) (अन्नं) किसी अन्य स्त्री को; (चुम्बिअ) चुम्बन करके; (इस प्रकार अपनी स्त्री को धोखा देकर) (हसिरो) हँसता हुआ; (सढो) शठ=गूढापराधी; (गहवइ) गृहस्वामी; (मुइओ) प्रसन्न हुआ।

**टिप्पण**—"भ्रमेष्टिरिटिल्ल०" (४.१६१) इति भ्रमेर्झम्पादेशो "धातवोऽर्थान्तरेपि" (४.२५१) इति पिधानार्थत्वम्॥

घरिणी। "गृहस्य घरोऽपतौ" (१४४) इति घरः। अपताविति किम्। गह-वई॥

पिच्छिरेहि । हसिरो । "शीलाद्यर्थस्येरः" (१४५) इति "तृन् शील०" (हे० ५.२) इत्यादिभिर्विहितस्य प्रत्ययस्य इरः ॥

मा सोउआण अलिअं कुप्प मईआ सि तुम्हकेरो हं ।
इअ केण वि अणुणीआ णिअय-पिआ पाणिणी अजडा ॥७५॥

**अन्वयार्थ**—(आलिअं) (उपरोक्त) शठता पूर्ण झूठ को; (सोउ आण) सुन करके दुखी हुई पत्नि को पति कहता है; कि (मा कुप्प) क्रोध मत कर; (मईआ) मेरी; (सि) तू है; (तू मेरी ही है) और (हं) मैं; (तुम्हकेरो) तुम्हारा ही हूं; (इअ) इस प्रकार, (केण वि) किसी (नायक द्वारा); (पाणिणी-अजडा) पाणिनीय व्याकरण में कुशल ऐसी; (णिअय-पिआ) अपनी प्रिया; (अणुणीआ) अनुनय-विनय द्वारा प्रसन्न की गई ।

**टिप्पण**—झम्पिऊण । मोत्तुं । चुम्बिअ । सोउ आण । "क्त्वस्तुमत्तूण-तुआणाः (१४६) इत्यादिना तुम् अत् तूण तुआण इत्येते आदेशाः । वन्दित्तु इति अनुस्वारलोपात् । वन्दित्ता (इति) सिद्धसंस्कृतस्यैव व लोपेन । कट्टु इत्यार्षे ज्ञेयम् ॥

तुम्हकेरो । "इदमर्थस्य केरः" (१४७) इति इदमर्थस्य केरः न च भवति । मईआ । पाणिणीअ ॥

किं हवसि पारकेरा न हु पारक्को तुहाह मिअ भणिआ ।
राइक्क-वार विलया केणावि हु रायकेरेण ॥७६॥

**अन्वयार्थ**—(केणावि रायकेरेण) किसी भी राजपुरुष से निश्चित रूप से, (राइक्क-वार-विलया) राजकीय-वार वनिता=राज्य-वेश्या; (इअ) इस प्रकार; (भणिआ) कही गई; (किं) क्या तूं (पारकेरा) दूसरों की; (हवसि) होती है; (अहम्) मैं; (तुह) तुम्हारे लिये; (हु) निश्चय ही; (न) नहीं; (पारक्को) परकीय—(दूसरों से प्रेम करने वाला) नहीं हू ।

**टिप्पण**—पारकेरा । पारक्को । राइक्क । रायकेरेण । "परराजभ्यां क्कडिक्कौ च" (१४८) इति आभ्या यथासंख्यं क्क डित् इक्क श्च । चकारात् केर श्च ।

तुम्हेच्चया य अम्हेच्चया य एगव्व होउ तणु-लट्ठी ।
इअ जम्पिऊण दइआ केण वि सव्वङ्गिअं गहिआ ॥७७॥

**अन्वयार्थ**—(तुम्हे च्चया) तुम्हारी; (य) और; (अम्हेच्चया) हमारी; (तणु-लट्ठी) शरीररूप यष्टी; (एगव्व) एक शरीरवत् प्रतीत हो; इस प्रकार

से; (होउ) होवें; (इअ) ऐसा; (जम्पिऊण) कह करके; (केणवि) किसी एक पुरुष के द्वारा; (दइआ) अपनी; (पिया सव्वङ्गिअं) सर्वांगरूप से; परिपूर्ण रूप से सभी अंगोपांगों को; (गहि आ) आश्लिष्ट किया गया; (चिपट गया)।

**टिप्पण**—तुम्हेच्चया। अम्हेच्चया। "युष्मदस्मदोत्र एच्चयः (१४६) इत्यादिना अत्र एच्चयः ॥

एगव्व। "वतेर्व्वः" (१५०) इति वतेः प्रत्ययस्य व्वः ॥

सव्वंगिअं। "सर्वाङ्गादीन स्येकः" (१५१) इति "सर्वादेः पथ्यङ्ग° हे० (७·१) इत्यादिना विहितस्य ईनस्य स्थाने इकः ॥

तुह पय-पह-पहिओ हं अप्पणयो पीणिभ-प्पणइ-जहणे।
पीणत्तण-सालि-थणे इअ केण वि तोसिआ रमणी ॥७८॥

**अन्वयार्थ**—(पीणिम-प्पणइ-जहणे) हे कठिन और मोटी जंघावाली; (पीण-त्तण-सालि-थणे) हे मोटे-मोटे कठोर स्तन वाली; (तुह) तुम्हारे; (हं) मैं; (अप्पणयो) (स्वकीय) खुद के; (पय-पह-पहिओ) चरण-पथ का पथिक हूं; (अर्थात् मैं तुम्हारे चरणों का दास हूं।) (इअ) इस प्रकार; (केण वि) किसी नायक विशेष द्वारा; (रमणी) कोई स्त्री विशेष; (तोसिआ) प्रसन्न की गई।

**टिप्पण**—पहिओ। "पथो णस्येकट्" (१५२) "नित्यं णः" हे० (६·४) इति यः पथो णो विहितस्तस्येकट् ॥

अप्पणयो। "ईयस्यात्मनो णयः" (१५३) इति ईयस्य णयः ॥

पीणत्त-निहि-निअम्बे तिलेल्ल-अङ्कोल्लतेल्ल-कन्तिल्ले।
मातित्तिएण कुप्पेत्ति इत्तिअं को वि पियमाह ॥७९॥

**अन्वयार्थ**—(पीणत्त-निहि-निअम्बे) जिसके नितम्बपीछे का पुट्ठे का भाग) पीनत्व के निधिरूप हैं अर्थात् जो मोटे-मोटे और कठोर नितम्बवाली है; ऐसी हे प्रिया! तू; (तिलेल्ल-अंकोल्ल-तेल्ल) तिल के तेल और अंकोठ—वृक्ष के तेल के समान; (कन्तिल्ले) स्निग्ध कान्तिवाली;=मनोरम और रमणीक कान्तिवाली होती हुई; (तित्तिएण) (सखी द्वारा) उतना सा (झूठ कहने पर) (अर्थात् सखी द्वारा मेरी अन्यासक्ति का वर्णन करने पर) (मा कुप्प) क्रोध मत कर; (इत्ति) ऐसा; (इत्तिअं) इस प्रकार से; (को वि) कोई नायक (पियं) प्रिया को; (आह) बोला।

**टिप्पण**—पीणिम पीणत्तण। "त्वस्य डिमात्तणौ वा" (१५४) इति त्वस्य डिमात्तणौ। पक्षे पीणत्त ॥

तिलिल्ल । "अनकोङ्ठात्तैलस्य डेल्लः" (१५५) इत्यादिना तैलस्य डेल्लः । अनङ्कोठाद् इति किम् । अङ्कोल्लतेल्ल ॥

जित्तिअमत्तं रत्तो म्हि एत्तिअं रच्च एत्तिलं किमिमं ।
केण वि एद्दहमुत्ता तुण्हिक्का माणिणी जाआ ॥८०॥

**अन्वयार्थ**—(जेत्तिअ) जितनी मात्रा में; (रत्तो) (तुम्हारे प्रति) अनुराग रखनेवाला; (म्हि) मैं हूं; (एत्तिअं) इतना ही; तू भी मेरे प्रति; (रच्च) अनुराग रखनेवाली बन । (एत्तिलं) इतना; (इम) यह; (क्रोध का आडम्बर) (किम्) क्यो; (करती हो) (केण वि) किसो नायक द्वारा, (एद्दहम) इतना; (उत्ता) कही जाती हुई (माणिणी) मान रखने वाली; (असंतुष्ट सी); (तुण्हिक्का) मौन; (जाआ) हो गई अर्थात् चुप चाप हो गई ।

**टिप्पण**—तित्तिएण । इत्तिअ । जित्तिअ । "यत्तदेतदोतो रित्ति अ एतल्लुक् च । (१५६) इत्यनेन एभ्यो डाबादेरत्तोपरिमाणार्थस्य इत्तिअः एतदो लुक् च ।

सिहिओ सि जेत्तिअं जेत्तिलं च भणिओ सि जेद्दहं थविओ ।
न हु तेत्तिएण होसि त्ति पई कीइ वि उवालद्धो ॥८१॥

**अन्वयार्थ**—(जेत्तिअं-) जितना ही, (सिहिओ सि) तू चाहा गया; (च) और, (जेत्तिल) जितना ही; (भणिओ सि) तू कहा गया, (तुझे कहा गया) (आओ) आओ तुम मेरे प्रियतम हो; और (जेद्दह) जितनी ही; (थविओ) तुम्हारी स्तुति की गई; (हु) निश्चय ही; (तेत्तिएण) उतने ही; (उतनी मात्रा में) (न होसि) तुम; (वैसे) नहीं प्रमाणित हुए; (त्ति) ऐसा; (कीई वि) किसी नायिका द्वारा, (पइ) उसका पति, (उवालद्धो) उलाहना दिया गया (कि—तू धृष्ट है आदि(—

तं तेत्तिल-पेम्मं तुह न केत्तिअं तेद्दहा य अणुवित्ती ।
न हु केत्तिला वि केद्दहमित्थं कीइ वि सढो भणिओ ॥८२॥

**अन्वयार्थ**—(तुह) तुम्हारा; (तं) वह; (तेत्तिल) उतना सा; (पेम्म) प्रेम; (न केत्तिअ) कुछ भी नही है (य) और; (तेद्दहा) उतनी सी; (अणुवित्ती) अनुवृत्ति अनुकूल क्रिया; (न हु केत्तिला) निश्चय ही कुछ भी नहीं है; (इत्थं) इस प्रकार; (कीइ वि) किसी नायिका विशेष द्वारा; (सढो) शठ-गूढ अपराधी (अपना पति) (केद्दहम्) (उपरोक्त रीति से) कुछ भी; (भणिओ) कहा गया (उलाहना दिया गया)

टिप्पण—एत्तिअं एत्तिलं एद्दहं । जेत्तिअं जेत्तिलं जेद्दहं । तेत्तिअं तेत्तिलं तेद्दहा । केत्तिअं । केत्तिला केद्दह । "इदं किमश्च डेत्तिअ-डेत्तिल-डेद्दहाः ।(१५७)

सयहुत्तं विणइल्लो दइओ जोण्हाल-चन्द-सिरिमन्तो ।
णेहालूए कीइ वि बाहुल्लच्छीइ अहिसित्तो ॥८३॥

अन्वयार्थ—(सयहुत्तं) सौ बार; (अर्थात् अनेकबार) (विणइल्लो) (अपनी पत्नी के प्रति) विनयवान होता हुआ; (जोण्हाल चन्द सिरिमन्तो) चान्दनीवाले चन्द्रमा के समान शोभा—कान्तिवाला; (दइओ) (किसी स्त्री का) पति, (णेहालूए) स्नेह शीला; (कीइ वि) किसी भी एक स्त्री द्वारा; (बाहुल्लच्छीइ) (पति का इतना विनय देखकर; स्नेहार्द्र होती हुई, अश्रुशील आँखों द्वारा; (अहिसित्तो) (वह पति) अभिषिक्त गीला किया गया।

टिप्पण—सयहुत्तं। "कृत्व सो हुत्तं" (१५८) वारे विहित कृत्व सः हुत्तं ।

गव्विर न माणइत्ता सहन्ति गव्वं ति भणिअ कीए वि,
दइओ हणिओ हणुभा - लङ्गूल - पलम्ब - लट्ठीए ॥८४॥

अन्वयार्थ—(हे गव्विर !) हे घमण्डी; (माणइत्ता) मानवती महिलाएँ; (गव्वं) गर्व को; (न सहन्ति) सहन नहीं किया करती हैं। (ति) ऐसा; (भणिअ) कह करके, (कीए वि) किसी एक नायिका द्वारा; (दइओ) अपना पति; (हणुमा-लंगूल-पलम्ब-लट्ठीए) हनुमान की पूछ के समान लंबी लकड़ी से; (हणिओ) मारा गया; ताड़ित किया गया।

टिप्पण—विणइल्लो। जोण्हाल। सिरिमन्तो। णेहालूए। बाहुल्ल। गव्विर। माणइत्ता। "आल्विल्लोल्लाल-वन्त-मन्तेत्तेर-मणा मत्तोः" "(१५९) इत्यादिना मतोः स्थाने आलु इत्यादयो नव आदेशा यथायोगम्। केचिद् मादेशमपि इच्छन्ति। हणुमा॥

अन्नत्तो अन्नहि एसि तह वि अन्नत्थ अन्नदो जासि ।
एक्कसि न खु त्थिरो सि त्ति पिओ कीइ वि उवालद्धो ॥८५॥

अन्वयार्थ—(अन्नत्तो) (अपनी पत्नि को छोड़ करके) अन्य की पत्नि के पास; (अन्नहि) अन्य स्थान पर; (एसि) तुम जाते हो; (तह वि) वहाँ पर भी; (कुछ समय तक ठहर कर) (उसको छोड़कर) (अन्नदो) किसी अन्य की पत्नि के पास; (अन्नत्थ) अन्यत्र ही; (जासि) जाते हो; (त्ति) इस प्रकार; (एक्कसि) एक स्त्री में; (खु) निश्चय करके; (न त्थिरो सि) तुम स्थिर नहीं

(इस प्रकार) (कीइ वि) किसी एक नायिका द्वारा; (पिओ) पति; (उवालद्धो) उलाहना दिया गया।

**टिप्पण**—अन्नत्तो अन्नदो। "त्तो दो तसो वा" (१६०) अन्नहि। तह। अन्नत्थ। "त्रपो हिहत्थाः" (१६१)

एक्कसिअं चिअ भणिओ एकइआ णेगया य गामिल्लि।

अप्पुल्ल-पियं वच्चेत्ति भच्छिओ को वि अन्नाए ॥८६॥

**अन्वयार्थ**—(कोई स्त्री किसी स्त्री-लम्पट को फटकार के साथ कहती है कि): (एकसिअं) एक बार; (चिअ) निश्चय पूर्वक, (भणिओ) (तुझे) कह दिया गया है कि, (गामिल्लि) खुद के ग्राम में रहनेवाली; (अप्पुल्ल-पियं) अपनी ही पत्नि का; (एकइआ) एक बार; (य) और; (णे गया) अनेक बार, (इच्छानुसार) (वच्च) (भोग) भोगो। (इत्ति) ऐसा, (को वि) कोई, (पुरुष) (अन्नाए) किसी अन्य की स्त्री द्वारा; (भच्छिओ) भर्त्सना की गई।

**टिप्पण**—एक्कसि एक्कसिअं एकइआ। "वैकाद्ः सि सिअं इआ (१६२) इत्यादिना एकाद् दा। प्रत्ययस्य सि सिअं इआ। पक्षे णे गया। गामिल्लि। अप्पुल्ल। "डिल्लडुल्लौ भवे" (१६६) इति डितौ इल्लोल्लौ।

निच्च-नवल्लय-रच्चिर मं एक्क-मणं नवाणुराइल्लं।

एकल्लं चिअ मुञ्चसि कीइ वि रमणम्मि इअ रुन्नं ॥८७॥

**अन्वयार्थ**—(निच्च-नवल्लय-रच्चिर) हे नित्य नवीन नायिकाओं पर अनुराग रखने वाले; (ऐसे तुम हो); (एक्क-मण) (किन्तु मैं तो केवल तुम्हारे प्रति ही) एक मन रखने वाली; (नवाणु राइल्लं) उत्पन्न हुआ है स्नेह (तुम्हारे प्रति) जिसको; ऐसी (मुझको) (म) मुझ को; (चिअ) निश्चय ही; (एकल्ल) एकाकी (अवस्था में ही) (मुञ्चसि) छोड़ते हो; (इअ) इस प्रकार (बातचीत करते हुए ही) (कीइ वि) किसी नायिका द्वारा (रमणम्मि) रति-क्रिया के समय मे (ही); (रुन्नं) रो पड़ी।

**टिप्पण**—अप्पुल्ल। नवल्लय। राइल्लं। "स्वार्थे कश्च वा" (१६४) इति कः चकारात् डितौ इल्लोल्लौ। नवल्लय। एकल्लं। "ल्लो नवैकाद् वा" (१६५) इति ल्लः। पक्षे एक्क। नव।

अवरिल्लञ्चल-गहिओ भालोवरि-निहिअ-भुमयमन्नाए।

भमया-दासो व्व पिओ विहसन्तो सपिअ मवगूढो ॥८८॥

**अन्वयार्थ**—(भाल-उवरि-निहिअ-भुमयम्) ललाट पर रख दिये हैं अथवा चढ़ा दिये हैं दोनों भौंए; (ऐसी स्थिति के साथ) अर्थात् पूर्ण क्रोध के

साथ; (अवरिल्ल-अंचल-गहिओ) (जिस परस्त्री गामी पुरुष के) उत्तरीय वस्त्र के प्रान्त-भाग को (खुद की स्त्री ने) पकड़ लिया है; (ऐसा पुरुष); (भमया दासो व्व) (जो परस्त्री गामी) अपनी पत्नि के कटाक्ष का दास सा प्रतीत हो रहा है; (अन्नाए विहसन्तो) जो अपनी पत्नि द्वारा इस प्रकार दुर्दशा ग्रस्त हो रहा है; (अतएव) जो अन्य किसी स्त्री के लिए हँसी का पात्र बन रहा है ऐसा; (पिओ) प्रियतम-पति (जब पत्नि की भर्त्सना अत्यधिक बढ़ गई तो धीरे-धीरे चलने लगा तो (पत्नि द्वारा) (सणिअम्) धीरे-धीरे; (अवयूढो) (रोकने की दृष्टि से) आलिंगन कर लिया गया।

टिप्पण—अवरिल्ल। "उपरेः संव्याने (१६६) इति ल्लः ॥ संव्यान इति किम्। भालोवरि ॥

भुमय भमया। "भुवो मया डमया (१६७) इत्यादिना मया उमया इत्येतौ ॥

सणिअं। "शनैसो डिअं" (१६८) इति डित् इअं ॥

मणयं च मुच्छिरो वेविरो अ मणिअं पिओ मणा हसिरो।
कीइ वि रइ-मीसाए वम्मह-मीसालिओ रमिओ ॥८९॥

अन्वयार्थ—(मणयं) थोडासा; (मुच्छिरो) मूर्च्छा वाला; (मणियं) थोड़ासा, (वेविरो) कांपता हुआ, (मणा) थोड़ा सा; (हसिरो) हँसता हुआ ऐसा; (पिओ) प्रियतम; प्रेमी; (रइ-मीसाए) रति की इच्छावाली; (कीइ वि) किसी (स्त्री) के साथ; (वम्मह-मीसालिओ) (काम-क्रीड़ा की इच्छा वाला होता हुआ ऐसे पुरुष ने (उपरोक्त स्त्री के साथ) (रमिओ) रति क्रीड़ा की।

टिप्पण—मणयं मणिअं ॥" मनाको न वा डयं च" (१६९) इति डयं डिअं च। पक्षे मणा॥ मीसालिओ। "मिश्राड्डालिअ." (१७०) पक्षे मीसाए॥

राज्ञो ग्रीष्म वर्णनम्—

गिम्हो दीह-गन्ध-अन्धालिणि-दीहर-पत्त-चंपओ।
मण-मउअत्तयाइ कामन्धल-विज्जुलिआ-दुरिक्खओ॥
दिट्ठो विज्जु-पीअ-नव-किंसुअ-पत्तल-पीवलोवणो।
तत्ताऊ विओअ-विहुरीकय-पन्थिअ-गोण-खेअणो ॥९०॥

अन्वयार्थ—(रीह-गन्ध-अन्ध-अलिणि) पुष्कल और प्रभूत गन्ध के कारण से अन्धे हुए भँवरें जिस पर बैठे हैं ऐसा; (दीहर-पत्त चम्पओ) लम्बे

लम्बे पत्तों वाला चंपक (है जिस ऋतु में ऐसी ऋतु); (मण-मउ-अत्तयाइ) मन की मृदुता से, (याने भावुकतापूर्ण मन होने के कारण से) (कामन्धल) काम-भावना द्वारा अन्धे हुए पुरुषों द्वारा, (विज्जुलिया) बिजली के तेज की तरह; (दुरिक्खओ) (जो ऋतु। देखे जाने के लिए अशक्य है (कामियों के लिए तो वसन्तऋतु अनुकूल होती है अतः यह ग्रीष्मऋतु उनके लिए दुःखप्रद और अदर्शनीय है—देखना कष्ट प्रद है) (ऐसी ऋतु) (विज्जु-पीअ) बिजली के समान है पीला रंग जिनका; (ऐसे) पत्र-पुष्प; (नव-किसुअ-पत्तल) नूतन पुष्प और पत्रवाला; (तदनुसार इन बिजली के समान पीले पीले नूतन पुष्प और पत्र वाले वृक्ष से जो स्वय) (पीवलो वणो) पीला-पीला बन वाला है; (ग्रीष्म ऋतु) (तत्ताउ) जो ऋतु गरम जलवाली हो; गई है; (विओअ विहु-री कय) (जिस ऋतु के कारण से उत्पन्न) वियोग से दुःखी हुए; (पंथिअ-) पथिक, (वे ही है एक प्रकार के) (गोण-) पत्थर; अर्थात् जो पत्थर समान हो गये हैं); ऐसे वियोगियों को (जो) (खेअणो) खेद उत्पन्न करने वाला है; (ऐसा); (गिम्हो) ग्रीष्म ऋतु, (राजा कुमारपाल द्वारा) (दिट्ठो) देखा गया। अर्थात् ग्रीष्म ऋतु आ गई है ऐसा राजा को प्रतीत हुआ।

**टिप्पण**— दीह दीहर। "रो दीर्घात्"(१७१) इति रो वा॥
मउअत्तयाइ। "त्वादेः सः" (१७२) इति स एव त्वादिर्वा॥

अन्धा अन्धल। पत्त पत्तल। विज्जुलिआ विज्जु-पीअ पीअलो। "विद्युत्पत्र-पीतान्धाल्लः (१७३) इत्यादिना एभ्यः स्वार्थे लो वा।

तत्ताउ गोग। "गोणादयः" (१७३) गोणादयः शब्दा अनुक्त प्रकृति प्रत्ययलोपागमवर्ण विकारा बहुलं निपात्यन्ते।

इत्याचार्य हेमचन्द्रविरचित श्री कुमारपाल चरित द्वयाश्रय महाकाव्य-वृत्तौ—

**॥ तृतीय सर्गस्य अन्वयार्थ-भावार्थश्च अनुवादः समाप्तः॥**

□□

# चतुर्थः—सर्ग।

**ग्रीष्म-ऋतु वर्णनम्—**

तं निव-पुच्छिअ-दोवारिएण भणिअं त्ति आम गिम्ह-सिरी ।
उण्हेह सीअला णवि कयलि-वणे पेच्छ पुणरुत्तं ॥१॥

**शब्दार्थ**—(तं) वाक्य के प्रारम्भ में अलंकाररूप अर्थ में प्रयुक्त है। (निव-पुच्छिअ-दोवारिएण) राजा (कुमारपाल) के द्वारा पूछे गये द्वारपाल से; (त्ति) ऐसा; (भणिअ) उत्तर प्रदान किया गया कि; (आम) हाँ; (गिम्ह-सिरी) ग्रीष्म श्री (उपस्थित हो गई है); (णवि) यदि ऐसा नहीं होता (अर्थात् विपरीत होता तो) इह यहाँ पर तो (उण्हा) उष्णता; (और) (कयलि-वणे) कदली वन में; (सीअला) शीतलता; (पेच्छ) देखो, (पुणरुत्तं) एक बार देख करके पुनः देखते हैं।

**टिप्पण**—"अव्ययम्"। १७५। अधिकारोयम्। इतः परं ये वक्ष्यन्ते आ पाद समाप्तेस्ते अव्ययसंज्ञका ज्ञातव्या.) ॥

तं। 'वाक्योपन्यासे" (१७६) ॥

आम। "आम अभ्युपगमे" (१७७) ॥

णवि। "णवि वैपरीत्ये" (१७८) ॥

पुणरुत्तं। 'पुणरुत्तं कृत करणे" (१७९) ॥

हन्दि विदेसो जीवइ हन्दि पिआ हन्दि किं पिआ मुक्का।
हन्दि मरणं जमो गिम्हो हन्दि लवन्ति इअ पहिआ ॥२॥

**शब्दार्थ**—(हन्दि) खेद है कि; (विदेसो) हम विदेश में हैं; (और हमारी प्रियाएँ स्वदेश में—हमसे दूर हैं); (हन्दि) (कल्पना अर्थ में)—अरे—(कहीं); (जीवइ पिआ) प्रिया जीवित है? (अथवा) (किं) क्या; (हन्दि) (पश्चाताप—खेद अर्थ में); (पिआ) प्रिया (मुक्का) बिछुड़ गई (होगी)? (भटक

गई होंगी) (हन्दि !) (निश्चय ही) (मरणं) (हमारी) मृत्यु हो जायगी। (हन्दि) (यह सत्य ही है कि) अरे ! (जमो गिम्हो) यमराज रूप ग्रीष्म ऋतु (उपस्थित हो गई है) (इअ) इस प्रकार; (पहिआ) पथिक; (लवन्ति) परस्पर में बातचीत करते हैं।

**टिप्पण**—हन्दि। "हन्दि विषाद विकल्प पश्चात्ताप निश्चयसत्ये" (१८०)।

हन्द महु हन्दि परिमलमिमं व भणिरेहि भसल-मिहुणेहि।
उअ सहइ कञ्चणारो मउडो इव गिम्ह-लच्छीए ॥३॥

**शब्दार्थ**—(महु हन्द) मधु को ग्रहण करो; (इमं परिमलं हन्दि) इस पराग को ग्रहण करो; (व) (मानों ऐसा भँवरे अपने गुंजारव द्वारा व्यक्त कर रहे हैं) ऐसा; (भणिरेहि) बोलते हुए (गुंजारव करते हुए) (भसल मिहुणेहि) भँवरों के जोड़ों द्वारा (जो ऋतु सुशोभित है); ऐसी ऋतु को (उअ) देखो। (गिम्ह-लच्छीए) ग्रीष्म-ऋतु रूप लक्ष्मी के; (मउडो इव) मुकुट के समान; (कञ्चणारो) यह कचनार का वृक्ष; (सहइ) सुशोभित हो रहा है।

**टिप्पण**—हन्द। हन्दि। "हन्द च गृहाणार्थे" (१८१)

जणणिं मिव धूवं पिव नत्तिं विअ सोअरं विव सहिं व।
मालारीओ सिनेहा नव-कञ्चण-केअइमुवेन्ति ॥४॥

**शब्दार्थ**—(जणणिं मिव) माता के समान; (धूवं-पिव-) लड़की के समान; (नत्तिं विअ) पौत्री के समान; (सोहरं विव) बहिन के समान; (सहिं व) सखी के समान; (सिणेहा) स्नेहपूर्वक; (मालारीओ) मालाकार की स्त्रियाँ; (नव-कंचण-केअइअ) नूतन-स्वर्ण केतकी लता के पास; (उवेन्ति) उपस्थित होती हैं। (समीप जाती है फूलों के चयनार्थ)

**टिप्पण**—इम व। जणणिं मिव। धूअं पिव। नत्तिं विअ सोअरं विव। सहिं व। "मिव पिव विव व्व व विअ इवार्थे वा। (१८२) इत्यादिना एते इवार्थे अव्ययसंज्ञका: प्राकृते प्रयुज्यन्ते वा। पक्षे मउडो इव॥

जेण अहुल्ला लवली वोलीणा णइ वसन्त-उउ-लच्छी।
फुल्लं च धूलिकम्बं तेण फुडा चेअ गिम्ह-सिरी ॥५॥

**शब्दार्थ**—(जेण) जिससे; (णइ) निश्चय ही; (वसन्त-उउ-लच्छी;) वसन्त ऋतु की लक्ष्मी; (वोलीणा) अतिक्रान्त कर दी गई है: हीन कोटि की

प्रमाणित कर दी गई; और लवली नामक लता; (अहुल्ला) अविकसित ही रही; (तेण) उसी से; (धूलि कम्बं फुल्लं) धूलि कदम्ब नामक पुष्प-वृक्ष; (फुल्लं) विकसित हुआ; और (चेअ) निश्चय ही; (गिम्ह-सिरी) ग्रीष्म-ऋतु; (फुडा) विकसित हो उठी।

टिप्पण—जेण। तेण। "जेण तेण लक्षणे" (१८३)

फुल्ल च्च सुगन्ध च्चिअ लयाण नोमालिआ बले रम्मा।
जा किर मल्ली जा दूर जवा बले ते मयण-बाणा ॥६॥

शब्दार्थ—(लयाण) सभी लताओं के मध्य में; (तुलना की दृष्टि से) (फुल्लच्च) निश्चयपूर्वक फूलों वाली; (च्चिअ) निश्चयपूर्वक; (सुगन्ध) सुगन्ध-वाली; (नोमालिआ) नवमालिका लता (बले) निश्चय ही अत्यधिक; (रम्मा) रमणीय है; (किर) निश्चयपूर्वक; (जा) जो मल्ली नामक लता के फूल और; (किर) निश्चयपूर्वक; (जा जवा) जो जपा के कुसुम हैं; (ते) वे, (बले) निश्चय ही; (मयण-बाणा) कामदेव के बाण हैं।

टिप्पण—णइ। चेअ। च्च। च्चिअ। 'णइ चेअ चिअ च्च अवधारणे" (१८४) बले। "बले निर्धारणनिश्चययोः" (१८५)

सुत्ते जणम्मि जो हिर सद्दो चीरीण सुव्वए णवर।
गाअइ किल तस्स मिसा णवरि वसन्तस्स गिम्ह-सिरि ॥७॥

शब्दार्थ—(सुत्ते जणम्मि) सोये हुए मनुष्य को भी; (हिर) निश्चय ही; (चीरीण) झींगुर नामक कीट का; (जो सद्दो) जो शब्द; (सुव्वए) सुना जाता है; (सुनाई देता है;) (णवर) केवल; (इसका कारण यही है कि) (गिम्ह-सिरी) ग्रीष्म ऋतु की लक्ष्मी; (वसन्त स्स णवरि) वसन्त ऋतु के बाद में; (तस्स मिसा) उस चिरी शब्द के बहाने से; (किल) निश्चय ही; (गाअइ) गायन करती है।

टिप्पण—किर। इर। हिर। "किरेर हिर किलार्थे वा" (१८६) पक्षे किल॥ णवर। "णवर केवाले" (१८७)॥

णवरि। 'आनन्तर्ये णवरि" (१८८)

पहिआ अलाहि गन्तुं अणदइआण कुसलाइँ इह णाइं।
माइं इह एध हद्धी इअ व्व चीरीहि उल्लविअं ॥८॥

शब्दार्थ—(पहिआ) अरे पथिकों! (अलाहि गन्तुं) आगे मत जाओ; (इह) यहाँ पर—आगे; (अणदइआण) पत्नि रहित पुरुषों के लिए; (णाइं

(कुसलाइं) कुशल-क्षेम नहीं है; (इह माइँ एध) यहाँ पर; (आगो) मत आओ; (इअ) ऐसा; (व्व) मानो; (चीरीहि) झींगुर द्वारा; (हद्धी) खेदपूर्वक; (उल्लविअं) बोला गया।

**टिप्पण**—अलाहि। "अलाहि निवारणे" (१८९)॥

अण। णाइं। "अण णाइं नञर्थे" (१९०)

माइं। "माइं मार्थे" (१९१)

हद्धी। "हद्धी निर्वेदे" (१९२)

समुहोट्ठिअम्मि भमरे वेव्वे त्ति भणेइ मल्लि उच्चिणिरी।
वारण-खेअ-भएहिं भणिउं वेव्वे वयंसे त्ति ॥९॥

**शब्दार्थ**—(वेव्वे वयंसे) अरे सखी! (त्ति) ऐसा; (भणिउं) सम्बोधन करके; (समुह-उट्ठिअम्मि) सम्मुख उपस्थित हुए; (भमरे) भँवरों को; (वारण-खेअ-भएहिं) इनका निवारण करने पर इन्हे खेद होगा और उससे ये काटने दौड़ेंगे; इनके दौडने पर मुझे भय होगा, उस भय का; (वेव्वे) तुम निवारण करो, (त्ति) ऐसा; (मल्लि उच्चिणिरी) मल्लिका के फूलों का चयन करने वाली; (भणेइ) बोलती है।

**टिप्पण**—वेव्वे। "वेव्वे भयवारणविषादे" (१९३)

वारवनितानां संबद्धासंबद्धलपनकर्त्रीणां द्राक्षारसपानम्।

वेव्व सहि चिट्ठसु हला निसीद मामि रम जासि कत्थ हले।
दे पसिअ किमसि रुट्ठा हुं गिण्हसु कणय-भायणयं ॥१०॥

**शब्दार्थ**—(वेव्वसहि) हे सखि; (चिट्ठसु) ठहरो; (हला) अरे! (निसीद) बैठो; (मामि) हे सखि; (रम) खेलो; (हले) अरे! (कत्थ जासि) कहाँ जाती हो? (दे) अरे! (पसिअ) प्रसन्न होओ; (किम् रुट्ठासि) रुष्ट क्यों हो? (हुं) लो, (कणय-भायणयं) सोने का बर्तन, (गिण्हसु) ग्रहण करो।

हुँ तुह पिओ न आओ हुं किं तेणज्ज सो हु अन्न-रओ।
तुमयं खु माणइत्ता तस्स हु जुग्गा सि सा खु न तं ॥११॥

**शब्दार्थ**—(हुं) (मैं पूछती हूँ कि); (तुह पिओ) तुम्हारा पति; (न आओ) नहीं आया; (उत्तर देती है—); (अज्ज) आज; (तेण) उससे; (किं) कुछ भी; (हुं) प्रयोजन नहीं है; (सो) वह; (मेरा पति) (हु) निश्चय ही; (अन्न रओ) किसी अन्य स्त्री के साथ है; (तुमयं खु माणइत्ता) निश्चय ही तुम

मानवती हो; (अर्थात् इसका दुःख तुम्हें अवश्य होना ही चाहिये); (हु) मेरी कल्पना है कि; (तस्स) तुम्हारे पति के लिये; (सा) वह; (पर स्त्री) (जुग्गा) योग्य हो सकती है; (खु) किन्तु; (त) उसके लिये; (सि) तुम; (न) (योग्य) नहीं हो।

सहि बव्वरो खु अह धीवरो हु एसो खु तुज्झ ऊ रमणो।
ऊ इअ हसेइ लोओ इमम्मि ऊ किं मए भणिअं ॥१२॥

**शब्दार्थ**—(सहि) हे सखि; (तुज्झ) तुम्हारा; (ऊ) निन्दा-पात्र; (रमणो) पति; (खु) निश्चय ही; (वव्वरो) पामर है, मूर्ख है; (अह) अथवा; (एसो) यह; (हु) निश्चय ही; (धीवरो) धीवर है; (ऊ) अरे; (इमम्मि) इसके प्रति; (लो ओ) लोक अर्थात् सखी-समूह; (हसेइ) हँसती है निन्दा करती है; (ऊ) अरे ! (मए) मेरे द्वारा; (किं) क्या; (भणिअं) कह डाला गया है ? (अर्थात् क्या इतना स्पष्ट मुझे कहना चाहिये था ?)

ऊ अच्छरा मह सही थूरे निक्किट्ठ कलह-सील अरे।
दासो सि इमाइ हरे सढो सि ओ ओ किमसि दिट्ठो ॥१३॥

**शब्दार्थ**—(ऊ) आश्चर्य है कि; (मह सही) मेरी सखी; (अच्छरा) अप्सरा के समान है; (थूरे) अरे निन्दनीय तू ! (कलह-सील) कलह करने वाला है। (निक्किट्ठ) निकृष्ट—अधम है; (हरे) अरे ! (इमाइ) इस मेरी सखी का; (दासो सि) तू दास है; (सढो सि) तू शठ-गूढ अपराधी है; (ओ! ओ!) अरे ! अरे ! (पश्चाताप—दुख है कि) (किम् दिट्ठो असि) क्यों दिखलाई पड़े हो ! (तुम्हारा मुख देखना ही पाप है)

अव्वो नओ तुह पिओ अव्वो तम्मेसि कीस किं एसो।
अव्वो अन्नासत्तो अव्वो तुज्झेरिसो माणो ॥१४॥

**शब्दार्थ**—(अव्वो) अरे ! (तुह पिओ) तुम्हारा पति; (नओ) नम्र हो गया है; (अव्वो) अरे खेद है कि; (कीस) किस कारण से; (तम्मेसि) तुम खेद करती हो ? (किं) क्या; (एसो) यह (समीपवर्ती) (अन्नासत्तो) किसी अन्य स्त्री के प्रति आसक्त है ? (अव्वो) आश्चर्य है कि; (तुज्झ) तुम्हारा; (एरिसो) ऐसा; (माणो) अहंकार है।

अव्वो पिअस्स समओ अव्वो सो एइ रूसणो अव्वो।
अव्वो कट्ठं अव्वो किं एसो सहि मए वरिओ ॥१५॥

**शब्दार्थ**—(अव्वो) (आनन्द की बात है) कि (पिअस्स) पति के आने का; (समओ) समय हो गया है। (अव्वो) आदर अर्थ में; (ओ ! हो !; (सो एइ) वह आता है अथवा आ रहा है; (अव्वो) (भय अर्थ में) अरे ! (रूसणो) (थोड़े से अपराध पर ही) क्रोध करनेवाला है; (अव्वा) (विषाद अर्थ में); अरे; अरे; (कट्ठं) कष्ट की बात है कि; (अव्वो) (पश्चात्ताप अर्थ में) अरे ! अरे ! (किं एसो) क्या यही है ?—(जिसको) (सहि) हे सखि ! (मए) मेरे द्वारा; (वरिओ) पति रूप में ग्रहण किया गया है।

अइ एसि रइ-घराओ वणे मिलाणा सि दइअ-दरवलिआ।
मुणिमो वणे न मुणिमो तं न वणे कहइ न जमङ्गम् ॥१६॥

**शब्दार्थ**—(अइ) (सम्भावना अर्थ में) अरे ! (तू) (रइ-घराओ) रति घर से काम-क्रीड़ा-भवन से; (एसि) आ रही हो, (वणे) (सम्भावना अर्थ में) अरे ! (दइअ-दर-वलिआ) प्रेमी द्वारा उपभोक्ता होती हुई; (थकावट से) (मिलासि) म्लान हो रही हो; (मुणिमो वणे न मुणिमो) चाहे हम जानते हों अथवा नही जानते हों; (वणे) किन्तु निश्चित है कि; (तं न) वह नहीं है; (जं अग न कहइ) जिसको कि अंगोपाङ्ग नही कहते हैं; (अर्थात् तेरे अंगोपांग दन्त नख-आदि द्वारा क्षत-विक्षत हैं; अतः अंगोपाङ्ग ही कह रहे हैं कि तुम उपभोक्ता हो)

दासो वणे न मुच्चइ मणे पिओ तुज्झ मुच्चइ स अम्मो।
पत्तो खु अप्पणो च्चिअ तए सयं चेअ निउणाए ॥१७॥

**शब्दार्थ**—(मणे) मैं विचार करता हुं कि; (वणे) उस पर; (अनुकम्पा कर के इस अर्थ में) (तुज्झ पिओ दासो) तुम्हारा पति तुम्हारा दास है; (न मुच्चइ) (उससे) तुम नहीं छोड़ी जाती हो; (अम्मो) आश्चर्य है कि; (स) वह, (तुम्हारे द्वारा) (मुच्चइ) छोड़ दिया जाता है। (खु) आश्चर्य है कि; (अप्पणो) वह स्वयमेव; (च्चिअ) निश्चय ही; (पत्तो) तुम्हारे पास आता है; (तए निउणाए) तुझ चतुर के द्वारा, (सय) वह स्वयमेव; (चेअ) निश्चय ही; (मुच्चइ) छोड़ दिया जाता है, (अर्थात् मेरी चतुराई ही है कि अत्यन्त नम्र-प्रेमी-प्रियतम की भी तू अवगणना करती है; फिर भी वह तुझे नहीं छोड़ता है)

पाडिक्कं दइआओ ताण वयंसीओ पाडिएक्कं च।
पत्ते अं मित्ताइं उअ एसो एइ भासन्तो ॥१८॥

शब्दार्थ – (पाडिक्कं) प्रत्येक; (दइआओ) स्त्रियों की; (ताण) उनकी; (वयंसीओ) अनेक सखियां हैं; (पाडिएक्कं) प्रत्येक के; (पत्ते अं) प्रत्येक-अलग-अलग; (मित्ताइं) अनेक मित्र हैं; (उअ) देखो; (एसो) यह; (तुम्हारा प्रिय) (एइ) आता है अथवा आ रहा है। (अर्थात् प्रत्येक नायिका के अनेक प्रेमी; उनके अनेक सखियां और उनके अनेक मित्र-सखियां आदि हैं)

देक्ख तुहेसो दइओ कहमिहरा पुलइआ सि दट्ठुमिमं ।

भणिमो न वयमिअरहा मुणिअमिमं एक्कसरिअं ति ॥१९॥

शब्दार्थ—(देक्ख) देखो; (तुह) तुम्हारा; (एसो) यह; (दइओ) प्रेमी (है); (इहरा) यदि (प्रेमी) नहीं होता तो; (कहम्) क्यों; (अथवा कैसे) (इमं) इस प्रेमी को, (दट्ठुम्) देख करके; (पुलइआ सि) पुलकित हो गई हो; (वयम्) हम; (इअरहा) अन्यथा—(झूठ) (न) नहीं; (भणिमो) बोलते हैं। (अथवा बोलती हैं) (इमं) यह; (एक्कसरिअं) आजकल; (का ही प्रेमी है); (ति) ऐसा; (मुणिअम्) ज्ञात होता है।

मा तम्म मोरउल्ला दर-विअसिअ-बन्धुजीव कुसुमोट्ठि ।

अणुसोचसि धुत्तमिमं सरल-सहावे किणो रमणं ॥२०॥

शब्दार्थ—(दर-विअसिअ-) जो फूल अर्ध विकसित हुआ है; ऐसे (बन्धुजीव-कुसुम) जपा-पुष्प के समान; (ओट्ठि) होंठवाली—ऐसी हे नायिका ! (मोरउल्ला) व्यर्थ ही; (मा) मत; (तम्म) खेद कर; (हे) (सरल सहावे) हे सरल स्वभाव वाली ! (किणो) क्यों; (इमम्) इस; (धुत्तम्) धूर्त—शठ; (रमणं) पति को; (अणुसोचसि) चिन्ता करती है; (अर्थात् दुष्ट की दुष्टता का विचार नहीं करना चाहिए)

टिप्पण—वेव्वे । वेव्व । "वेव्व चामन्त्रणे" (१९४)

हला । मामि । हले । "मामि हला हले सख्या वा" (१९५) पक्षे सहि ।

दे । "दे संमुखी करने च" (१९६)

हुं । "हुं दानपृच्छानिवारणे" (१९७)

हु । खु । "हु खु निश्चयवितर्कसम्भावनविस्मये" (१९८)

ऊ । "ऊ गर्हाक्षेपविस्मयसूचने" (१९९)

थू । "थू कुत्सायाम्" (२००) ॥

रे । अरे । "रे अरे संभाषणरतिकलहे" (२०१) ॥

हरे । "हरे क्षेपे च" (२०२) ॥

ओ । "ओ सूचनापश्चात्तापे" (२०३) ॥

अव्वो। "अव्वो सूचना दुःख संभाषणापराध-विस्मयानन्दादर भय खेदविषाद-पश्चातापे" (२०४) ॥

अइ। "अइ संभावने" (२०५) ॥

वणे। "वणे निश्चय विकल्पानुकम्प्ये च" (२०६) ॥

मणे। "मणे विमर्शे" (२०७) ॥

अम्मो। "अम्मो आश्चर्ये" (२०८)

अप्पणो। "स्वयमोर्थे अप्पणो न वा" (२०९) पक्षे सयं।

पाडिक्कं। पाडिएक्कं। "प्रत्येकमः पाडिक्क पाडिएक्कं" (२१०) पक्षे पत्ते अं।

उअ। "उअ पश्ये" (२११) पक्षे देक्ख।

इहरा। "इहरा इतरथा" (२१२) पक्षे इअरहा॥

एक्क सरिअं। "एक सरिअं झगिति संप्रति" (२१३)

मोरउल्ला। "मोरउल्ला मुधा' (२१४)

दर। "दरार्धाल्पे" (२१५)

किणो। "किणो प्रश्ने" (११६)

[इ। जे। र। "इजेराः पादपूरणे" (२१७)]।

वि। पि। "प्यादयः" (२१८)

इति प्राकृत द्वयाश्रय महाकाव्ये अष्टमस्याध्यायस्य
उदाहरण प्रतिपादनद्वारेण द्वितीय पादः सम्पूर्णः

वार-विलया इ एआ गिम्ह-सुहं माणिउं पयट्टा जे।
इअ जं वि तं पि लविराओ पिअन्ति र पिक्क-दक्ख-रसं ॥२१॥

**शब्दार्थ**—(एआ) ये; (वार-विलया) वार-वनिताएँ=वेश्याएं; (इ) पाद पूरणार्थ; (गिम्ह-सुहं) ग्रीष्म-ऋतु के सुख को; (माणिउं) मनाने के लिए; (पयट्टा) प्रवृत्त हुई। (जे) पाद पूरणार्थ; (इअ) इस प्रकार; (जं वि तं वि) जैसा-वैसा-सभी प्रकार का; (जो भी मन में आया—वैसा) (लविराओ) बोलती हुई; (र) पाद पूरणार्थ; (पिक्क-दक्ख-रसं) पकी हुई दाख के रस को; (पिअन्ति) पीती हैं।

एक्केक्क मेस स महू अम्बो वि हु एक्कमेक्कमेसो सो।
लोआ हणिही पहिआऽलीण रवेणेममाह वणं ॥२२॥

शब्दार्थ—(एक्कमेक्कम्) पृथक्-पृथक् रूप से प्रत्येक; (एस स महू) यह वही महुआ नामक वृक्ष है; जो कि; (एक्कमेक्कं) पृथक्-पृथक् रूप से प्रत्येक; (एसो सो अम्बो वि) यह वही आमवृक्ष भी; (हु) निश्चय ही; (लोआ) हे लोगो! (पहिआ) (उपरोक्त वृक्ष); पथिकों को; (हणि ही) (गिर करके) मार डालेंगे; (मानो यह उक्ति); (इमम् वणं) यह जंगल; (अलीण रवेण) भ्रमरों के गुञ्जारव के (रूप में); (आह) बोला अथवा बोलता है। (अन्योक्ति यह भी हो सकती है कि हे मुसाफिरो! आम और महुओं के वृक्ष के नीचे चोर बैठे हैं; अतः उनके नीचे मत जाओ।)

टिप्पण—एक्कमेक्कम्। "वीप्स्यात् स्यादेः" (इत्यादिना वीप्सार्थात् पदात् परस्य स्यादेः स्थाने स्वरादौ वीप्सार्थे पदे परे मो वा। पक्षे एक्कैक्कम्।।

अम्बो। "अतः सेर्डोः" (२) डो वा।।

लोआ। पहिआ। "जश्शसो र्लुक्" (४)

इमं। "अमोऽस्य" (५) "इति अमोऽस्य लुक्"। "शेषेऽदन्तवत्" (३·१२४) इत्यदन्तवत्त्वात्।

अलीण। रवेण। "टामोर्णः" (६) इति टाया आमश्च णः

खज्जूरेहि पिआलेहि फणसेहिँ अवि दंसिअ-फलत्तो।

हरिसाओ दूराउ वि उज्जाणमिमं न को सिहइ ।।२३।।

शब्दार्थ—(खज्जूरेहि) खजूरों के द्वारा; (पिआलेहि) चिरौंजी के द्वारा; (फणसेहि) कटहर के द्वारा; (दंसिअ-फलत्तो) दिखला दिये हैं फल-खजूर-चिरौंजी-कटहर फल जिससे (अर्थात् इन फलों को देख करके; (हरिसाओ) हर्ष से; (दुराउ वि) दूर देश से भी; (इमम् उज्जाणं) इस उद्यान को; (को) कौन; (न) नहीं; (सिहइ) इच्छा करता है (अर्थात् इस उद्यान में फल खाने के लिये और आनन्द उठाने के लिए दूरस्थ होता हुआ भी कौन नहीं आना चाहेगा।)

खज्जूरेहि। पिआलेहि। फणसेहिँ "भिसो हि हिँ हिं" (७)

सिरिसाहिंतो तह किंसुआहि बउला य महमहिअ गन्धो।

देसत्तो गामाओ नयराउ वि कं न आणेइ ।।२४।।

शब्दार्थ—(सिरिसाहिन्तो) शिरीष जाति के फूल से; (तह) तथा; (किंसुआहि) किंशुक जाति के फूल से; (य) और; (बउला) बकुल जाति के

फूल से; (निकलती हुई) (मह महिअ) फैली हुई; (=फैल करके), (गन्धो) गन्ध; (देसत्तो) देशों से; (गामाओ) ग्रामों से; (नयराउ) नगरों से; (वि) भी; (कं) किसको, (आणेइ न) (आकर्षित करके) नहीं ले आता ?

(अर्थात् इन फूलों के गन्ध से आकर्षित होकर दूरस्थ-जनता अपने आप ही चली आया करती है)

**टिप्पण**—फलन्तो । हरिसाओ । दूराउ । सिरिसाहिन्तो । किंसुआहि बउला । "ङ सेस् त्तो दो दु हि हिन्तो लुक्" (८) इति ङ से षड् आदेशाः ॥

पत्थाहिन्तो रामेसुन्तो देवेसराहि वि अणूणो ।

धारा-हरस्स मज्झे तओ गओ सज्जिअम्मि निवो ॥२५॥

**शब्दार्थ**—(पत्थाहिन्तो) पांडवो से; (रामेसुन्तो) रामचन्द्र-परशुराम बलभद्र से, (देवेसराहि) इन्द्रों से; (वि) भी; (अणूणो) (जो राजा जरा भी) अन्यून याने कम नहीं था अर्थात् सर्वोत्तम था ऐसा; (निवो) राजा कुमारपाल (धाराहरस्स-) जल यंत्रमय घर के; (सज्जिअम्मि) सभी साधनों से परिपूर्ण; (मज्झे) मध्य में; (तओ) तब याने ग्रीष्म ऋतु के आगमन का पता चलने पर; (गओ) स्नान करने के लिया स्नान घर में गया ।

**टिप्पण**—देसत्तो । गामाओ । नयराउ । पत्थाहिन्तो । रामेसुन्तो देवेसराहि । "भ्यसस् त्तो दो दु हि हिन्तो सुन्तो" (९) इति भ्यसः षड् आदेशाः

धारा-हरस्स । "ङसः स्सः" (१०)

मज्झे । सज्जि अम्मि । "डे म्मि ङेः" (११) इति ङे डित् एकारः म्मिश्च ॥

रेल्लन्ता वण-भागा तओ पलोट्टा जवा जलाणोघा ।

वामाउ दाहिणाओ समुहत्तो पच्छिमाहिन्तो ॥२६॥

**शब्दार्थ**—(वणभागा) जंगल के भागों को; (रेल्लन्ता) सराबोर करते हुए; (जलाण-ओघा) जल का विशालसमूह; (जवा) तेजी से; (वामाउ) बाये हाथ की ओर से; (दाहिणाओ) दाहिने हाथ की ओर से; (समुहत्तो) सन्मुख से; और (पच्छिमाहिन्तो) पीछे की ओर से; (पलोट्टा) (आना प्रारम्भ हुआ); बहने लगा ।

**टिप्पण**—प्लावयते तक्षावित्वात् (४·३१५) रेल्लादेशः ॥

वेइअ-मयर-मुहाहि अ आ-मूल-सिरं च फलिह-थम्भाओ ।

वारोत्तरङ्ग्याओ नीहरिआ वारि - धाराओ ॥२७॥

**शब्दार्थ**—(वेइअ-मयर-मुहाहि) वेदिओं पर स्थित—(पाषाण-निर्मित) मगरों के मुखों से; (अ) और (फलिह-थम्भाओ) स्फटिक से निर्मित स्तंभों से; (आ-मूल-सिरं) नीचे के भाग से (याने मूल से लगाकर ऊपर तक के भाग से; (वारोत्तरङ्ग याओ) द्वारों के ऊपर की लकड़ियों से; याने द्वारों के उत्तरांग भागों से; (वारि-धाराओ) जल की धाराएँ (णीहरिअ) निकलने लगीं।

**टिप्पण**—रेल्लन्ता। वण-भागा। वया। जलाण। वामाउ। दाहिणाओ। समुहत्तो। पच्छिमाहिन्तो। मुहाहि। थम्भाओ। गयाओ। "जश्शस्ङसित्तो दो द्वामि दीर्घः" (१२) एषु अतो दीर्घः। ङसिनैव सिद्धे त्तो दो दुग्रहणं भ्यसि एत्व बाधनार्थम्॥

पंचालि आहि मुक्कं कन्नेसुंतो जलं महासुंतो।
हत्थेहिंतो चरणाहिंतो वच्छाहि उअरेहि॥२८॥

**शब्दार्थ**—(पंचालि आहि) काष्ठ निर्मित पुतलियों द्वारा (अपने) (कन्नेसुन्तो) कानों से; (महासुन्तो) मुखों से; (हत्थेहिन्तो) हाथों से; (चरणाहिन्तो) चरणों से; (उअरेहि) उदर=पेटों से और (वच्छाहि) वक्षस्थलों से (जलं) जल (मुक्कं) छोड़ा गया (अर्थात् पुतलियों के समस्त अंगोपांग से जल की धारा बहने लगी।

**टिप्पण**—कन्नेसुन्तो। मुहासुन्तो। हत्थेहिन्तो। चरणाहिन्तो वच्छाहि। उअरेहि। 'भ्यासि वा" (१३) भ्यसादेशे अतो दीर्घो वा।

वएणं सम-विसमे पूरन्तेहिं जलेहि कूवेहि।
खन्देसु तुसार-मिसा तरूहिं पुलउ व्व पायडिओ॥२९॥

**शब्दार्थ**—(कूवेहि) कुओं से; (यन्त्रों द्वारा निकालकर) (जलेहि) जल-समूह द्वारा; (वेएणं) वेगपूर्वक; (सम-विसमे) सम-विषम-स्थलों को; (पूरन्तेहिं) परिपूर्ण करते हुए; (तरूहिं) वृक्षों द्वारा; (तुसार-मिसा) बर्फ के कणों के बहाने; (खन्धेसु) ऊपर के भागों पर; स्कन्धों पर (पुलउव्व) रोमाञ्चित हुए के समान; (पायडिओ) प्रकटित किया गया (अर्थात् वृक्षों के ऊपर जल-कण दिखलाई पड़ते थे)

**टिप्पण**—वेएण। सम-विसमे। "टाणशस्येत्" (१४) इति एकारः॥

कन्नेसुन्तो इत्यादि। पूरन्तेहिं। जलेहि। कूवेहि। खन्देसु। "भिस्भ्यस्सुपि" (१५) एषु अत ए॥

दट्ठुं तं छणमच्छीहिं जणो उज्जाण-भूमिसु अमन्तो ।
तत्थ गिरीसु तरूओ गओ गिरीओ तरूसुं च ॥३०॥

**शब्दार्थ**—(अच्छीहिं) आँखों द्वारा; (तं छणम्) उस जल यन्त्र के) उत्सव को; (दट्ठुं) देखने के लिए; (जणो) लोक-समूह; (उज्जाण-भूमिसु) उद्यान की भूमि पर; (अमन्तो) समाविष्ट नहीं होता हुआ; (अतः) (तत्थ) वहाँ पर; (तरुओ) वृक्षों पर से; (गिरीसु) पर्वतों पर; (च) और; (गिरिओ) पर्वतों पर से; (तरूसुं) वृक्षों पर; (गओ) जाता था; (अथवा जा रहा था) (अर्थात् भीड़ की बहुलता से जन-साधारण उत्सव को भली भांति देखने के लिए सुयोग्य स्थान की तलाश में इधर-उधर वृक्ष से पर्वत पर; और पर्वत से वृक्ष पर आता-जाता रहता था)

**टिप्पण**—तरूहि । अच्छीहिं । गिरी सु । तरूओ । गिरीओ । तरूसुं । "इदुतो दीर्घः" (१६) क्वचिन्न । भूमिसु ॥

पक्खेसु चउसु दारेसु चऊसु चऊहि साल भञ्जीहि ।
चउहि करएहि तुल्लं पलोट्टिअं वारि - धारीए ॥३१॥

**शब्दार्थ**- (चउसु पक्खेसु) चारों बाजुओं में; (चउसु दारेसु) चारों ही द्वारों में; (चऊहि साल भंजीहि) चारों ही हाथों में स्थित घडों द्वारा पुतलियों से; (तुल्लं) समान रूप से (धारीए) धारा से (वारिजल पलोट्टिअं) जल प्रवाहित हो रहा था ।

थम्भ-सिहराहि चउओ चऊ ओ वेई-मुहाहि सिञ्चीअ ।
कील-गिरी कील-तरू जल-पूरो उरुं अमन्द-गई ॥३२॥

**शब्दार्थ**—(चउओ थम्भ-सिहराहि) चारों ही स्तम्भ शिखरों से; और (चऊ ओ वेई-मुहाहि) चारों ही वेदियों के मुखो से; (अमन्द-गई) तीव्र गति से; (उरुं) महान्; (जल-पुरो) जल-पूर ने; (जल प्रवाह ने) (कील-गिरी) क्रीड़ा करने की पहाड़ियो को और; (कील-तरू) क्रीड़ा करने के वृक्षों को; (सीन्चीअ) सींचा ।

**टिप्पण**—चउसु । चऊसु । चउहि । चऊहि । चउओ । चऊओ । 'चतुरो वा" (१७) इति दीर्घो वा ॥

कीलगिरी । कील-तरू । "लुप्ते शसि" (१८) इति दीर्घः

साऊ जलोह-पन्ती जइ एसा किं दहिं महुं किं वा ।
इअ-नम्म-पडू जल-पाण-रई लवइ म्ह विड-लोओ ॥३३॥

**शब्दार्थ**—(साउ) स्वाद वाली; (जइ) यदि; (एसा) यह (जलोह-पन्ती) जल-समूह की पंक्ति वा धारा (है तो) (किं) क्या (वह) (दहिं) दही है; (किं वा) अथवा क्या; (महुं) मधु है। (इअ) इस प्रकार; (नम्म-पडू) हँसी मजाक में पटु; क्रीड़ा=केली में चतुर; (जल-पाण-रई) जल-पान में रुचि रखने वाला; (विड-लोओ) विट=भडुओं का समूह; (लवइ म्ह) बातचीत करता था।

**टिप्पण**—साऊ। पन्ती पडू। रई। "अक्लीबे सौ" (१९) इति दीर्घः। अक्लीब इति किम्। दहिं। महुं। केचिद् दीर्घत्वं विकल्प्य मादेशमिच्छन्ति। उरुं अमन्द-गई॥

मयणग्गउ तह विरग्गओ वि सन्धुक्किआ चिरं जेहिं।
अइ-मलय-वायओ वायउ व्व हूआ जल-प्पवहा ॥३४॥

**शब्दार्थ**—(मयणग्गउ) मदन-कामदेव की अग्नि; (तह) तथा; (विरह-ग्गओ) विरह की अग्नि; (वि) भी, (जेहिं) जिन (जल-धाराओं) द्वारा; (चिरं) दीर्घकाल तक; (सधुक्किया) प्रज्वलित की गई है; (अतः वे); (जल-प्पवहा) जल के प्रवाह; (वायउ व्व) वायु के समान; (हुआ) हुई (वायु रूप कैसा था? उत्तर (अइ-मलय-वायओ) शक्ति में जो मलय-वायु को भी अतिक्रान्त कर गई हों; ऐसी; (इस प्रकार वे जल-धाराएँ इतनी शक्ति-शालिनी थीं)

जलिअग्गिणो व्व जल-वाउणो वि विरहीण साहवो नासि।
अह वा विहिम्मि वामे साहू वि न साहूणो हुन्ति ॥३५॥

**शब्दार्थ**—(जलि अग्गिणो व्व) प्रज्वलित अग्नि के समान; (जल-वाउणो) जल मिश्रित वायु; (वि) भी; (विरहीण) विरही-प्राणियों के लिये; (साहवो) उपकारक, (शान्ति-प्रद) (नासि) नहीं है; (अहवा) अथवा; (विहम्मि वामे) विधि के प्रतिकूल होने पर; (साहू वि) साधु भी; (उपकारक भी) (साहुणो) साधु; (न हुन्ति) नहीं होते हैं; (अर्थात् भाग्य के विपरीत होते ही अनुकूल भी प्रतिकूल हो जाते हैं।

**टिप्पण**—मयणग्गउ विरहग्गओ। वायओ वायउ। "पुंसि जसो डउ डओ वा" (२०) इति अउ अओ इत्यादेशौ पक्षे अग्गिणो। वाउणो।

कीला-गिरिणो साहउ कीला-तरुणो वि साहओ जाया।
नीर-पवाहेहिं जओ गिरी तरू वा जल-सलोणा ॥३६॥

**शब्दार्थ**—(नीक पवाहेहिं) छोटी-छोटी नदियों के प्रवाहों से; (कीला-गिरिणो) क्रीड़ा करने के पर्वत; (साहुउ) सुन्दर; (जाया) हो गये हैं; (कीला तरुणो वि) क्रीड़ा करने के वृक्ष भी; (साहुओ) सुन्दर; (जाया) हो गये हैं। (जओ) क्योंकि; (गिरि तरू वा) पर्वत अथवा वृक्ष; (जल-सलोणा) जल से सौन्दर्य युक्त (हो जाया करते हैं)

**टिप्पण**—साहवो। "वोतो डवो" (२१) इति जसो डित् अवो। पक्षे साहू। साहुणो। साहउ। साहओ।

उच्चिणिअ बहू तरुणो काउं गिरिणो व्व बहु-कुसुम-रासी।
गिरिणो तरुणो अ तले कुसुमा भरणाइँ रइआइँ ॥३७॥

**शब्दार्थ**—(बहु तरुणो) अनेक वृक्षों को; (गिरिणो व्व) पहाड़ों के समान; (काउँ) (उँचाई में) करने के लिये; (बहु-कुसुम-रासी) बहु-विध-वर्णीय-पुष्पों के ढेरों को (उच्चिणिअ) चुन करके; (गिरिणो) पर्वत के, (अ) और; (तरुणो) वृक्ष के; (तले) नीचे; (कुसुमा भरणाइँ) पुष्पों के आभूषण; (रइआइँ) (नायक-नायिकाओं द्वारा;) रचे गये—तैयार किये गये।

**टिप्पण**—कीला-गिरिणो। कीला-तरुणो। तरुणो। गिरिणो "ज्जश्श-सार्णो वा" (२२) इति णो। पक्षे गिरी। तरू। बहू। रासी।

गुरुणो कीला-गिरिणो निवडिअ निज्झर-जलाइँ जायाइँ।
चन्दण-घुसिणल्लाइं दहिणो महुणो सिरि-हराइं ॥३८॥

**शब्दार्थ**—(गुरुणो-कीला-गिरिणो) महान् क्रीड़ापर्वत से; (निवडिअ) निकल करके, (वहाँ से गिर करके,) (निज्झर-जलाइँ) झरने के रूप में बहता हुआ जल; (चंदण-घुसिणल्लाइं) चन्दन-कुंकुम-केशर से मिश्रित होता हुआ; (दहिणो) दही की; (और) (महुणो) मधु की, (सिरि-हराइँ) शोभा को हरण करने वाला, (जायाइं) (वह जल) हो गया (अर्थात् जल दही शहद से भी अधिक कान्तिवाला चन्दन-केशर के कणों के संमिश्रण से हो गया।

लीला-गिरीउ चङ्गिम-गुरूउ निज्झर-जलाइँ सहिआइँ।
अखलिअ-गइस्स किर रइ-पहुस्स जय-वेजयन्तीओ ॥३९॥

**शब्दार्थ**—(चंगिम-गुरुउ) जो सौंदर्य में—श्रेष्ठता में महान् है; ऐसे; (लीला-गिरीउ) क्रीड़ा करने के पर्वत से; (निकलने वाला) (निज्झर-जलाइँ) झरने के रूप से बहने वाला जल; (अखलिअ-गइस्स) अस्खलित गतिवाले;

अविलंबित आज्ञावाले; (रइ-पहुस्स) रति-पति-कामदेव की; (जय-वेजयन्ती ओ) जय-पताका के समान (किर) निश्चय ही; (सहिआइ) सुशोभित हुआ (जल में स्थित प्रबलत्व और निर्मलत्व के कारण से जयपताकावत् वह जल सुशोभित हुआ।

टिप्पण—गिरिणो । तरुणो । गुरुणो । गुरुणो । कीलागिरिणो । दहिणो । महुणो । "ङसिङसोः पुंक्लीबे वा" (२३) इति णो । पक्षे गिरीउ । गुरूउ । गइस्स । पहुस्स ।

रइ-अहिवइणा पहुणा तइआ पबलेण तरुण-मिहुणाण ।
दहिणा दहिं व महुणा महुं व मिलिअं मणेण मणं ॥४०॥

शब्दार्थ—(तइआ) उस समय में (जब कि पर्वत से क्रीड़ा करता हुआ और गिरता हुआ झरने का जल प्रवाहित हो रहा था); (पबलेण) दुर्दमनीय अतएव शक्तिशाली; (पहुणा) सर्वत्र अपना साम्राज्य होने से प्रभु स्वरूप ऐसे; (रइ अहिवइणा) रति-अधिपति-कामदेव से (तरुण मिहुणाण) तरुण दम्पत्तियों का; (दहिणा दहिं व) दही का दही के साथ; (महुणा महुं) मधु का मधु के साथ; (जिस प्रकार संमिश्रित होकर एक रूप हो जाता है; वैसे ही) (मणेण मणं) उन स्त्री-पुरुषों का मन से मन का (परस्पर में) एक रूप से (मिलिअ) मिलान हो गया।

टिप्पण—अहिवइणा । पहुणा । दहिणा । महुणा । "टो णा" (२४) इति णा । ङसिङसोरित्यस्य व्यावृत्तिरपि । इदुत इत्येव मणंण । ट इति किम् । दहिं महुं ॥

मणं । "क्लीबे स्वरान् म् सेः" (२५) इति सेः म् । केचिद् अनुनासिकमपीच्छन्ति तदा । दहिँ महुँ ॥

कुल्लं-जलाइं अइसीअलाइं विमलाणि पेच्छ पवहन्ति ।
इअ भणिरा महिलाओ जल-केलि-छणे पयट्टाउ ॥४१॥

शब्दार्थ—(विमलाणि-) स्वच्छ—मैल रहित; (अइसीअलाइँ) अति शीतल; (कुल्लं जलाइँ) छोटी-छोटी; नदियों का जल; (पवहन्ति) प्रवाहित हो रहा है; (सो;) वह (पेच्छ) देख, (इअ) ऐसी; (भणिरा) कहती हुई; (महिलाओ) महिलाएं; (जल-केलि-छणे) जल क्रीड़ा के उत्सव में; (पयट्टा) प्रवृत्त हुई (उ) पादपूरणार्थ।

टिप्पण—जलाइं । अइ सीअलाइं । विमलाणि । "जस्शस-ई इंणयः सप्राग् दीर्घाः" (२६) ॥

जलकेलि :४२-७७

हारावलि-मुत्ताउ वि जलाहयाओ जलम्मि निवडन्ता ।
अगणिअ जले विलुलिआ का वि मयच्छी हसन्ती आ ।।४२।।

**शब्दार्थ**—(जलाहयाओ) जल के आघातों से; (जलम्मि) जल में; (निवडन्ता) पड़ते हुए; (हारावलि-मुत्ताउ) गलहारों के मोतियों को; (वि) भी; (अगणिअ) नहीं गिन करके (याने उनकी उपेक्षा करके); (का वि) कोई एक; (मयच्छी) मृगाक्षी, मृग की आंखों के समान आंखों वाली; (हस-न्ती) हँसती हुई; (आ) आश्चर्य है कि (जले) जल में, (विलुलिआ) डूब गई (डूबकी लगाने लगी) ।

**टिप्पण**—महिलाओ पयट्टाउ। मुत्ताउ जलाहयाओ। "स्त्रियाम् उदोतौ वा" (२७) इति जश्शसो : (प्रत्येकम्) उदोतौ सप्राग्दीर्घौ । पक्षे भणिरा। निवडन्ता ।

मउवीओ तणुवीआ पेच्छ जले संचरन्ति लीलाअ ।
रम्माइ बहु-विहाए ठाणं अच्छर-सरिच्छाओ ।।४३।।

**शब्दार्थ**—(मउवीओ) कोमल कान्तिवाली; (तणुवीआ) पतले शरीर-वाली; (अच्छर-सरिच्छाओ) अप्सराओं के समान सुन्दर; (रम्माइ) रमणीय (और) (बहु-विहाए) अनेक विध; (लीलाअ) लीला से; (जले) जल में, (संच-रन्ति) विचरण करती है; ऐसी इन्हे; (पेच्छ) देखो (विभक्ति अन्तर अर्थ मे) रमणीय – अनेक विध-लीला के; (ठाणं) स्थान को, (पेच्छ) देखो,

पिच्छ ह जल-लहरीए एन्तीइ उदञ्चिरीअ पडिरीआ ।
खेलन्ति मज्झ-लुलिया सभराइअ-तरल-कबरीओ ।।४४।।

**शब्दार्थ**—(एन्तीइ) (जल में) आती हुई; (उदञ्चिरीअ) (तैरती हुई) (जल के) ऊपर आती हुई; (पडिरीआ) (जल में) नीचे जाती हुई; (जल-लहरीए;) जल-लहरी में; (मज्झ-लुलिआ) मध्य में डूबती-तैरती-लीला करती हुई; (सभराइअ-तरल-कवरीओ) (जल में लीला करने से) जिनकी चंचल वेणियाँ मछली के समान प्रतीत होती हैं ऐसी; स्त्रियाँ; (खेलन्ति) खेल रही हैं; (इअ) ऐसा; (पिच्छ) देखो । (ह) पाद पूरणार्थ ।

अहि-लोअ-वहूए सुर-वहूइ तह जक्ख - किन्नर-वहूअ ।
रूवाहि आउ दइआ तडत्थ-तरुणेहि इअ भणिआ ।।४५।।

शब्दार्थ—(अहि-लोअ-वहूए) अधोलोक की बहुओं से; (पाताल-लोक की वधुओं से); (सुर-वहूइ) देवताओं की बहुओं से; (तह) तथा (जक्ख-किनर-वहूअ) यक्ष-किन्नर की वधुओं से; (रूवाहि आउ) अधिक रूपवाली; (अतएव देव वधुओं से श्रेष्ठ); (दइआ) ये प्रेमिकाएँ (हैं) (इअ) ऐसा; (तडत्थ-तरुणेहि) तटस्थ तरुण पुरुषों के द्वारा; (भणिआ) वर्णित की गई हैं।

टिप्पण—हसन्तीआ। तणुवीआ। "ईतः सेश्चा वा" (२८) इति आः। पक्षे मयच्छी।

को वि वहूओ अइखेअराउ खे खेअरीण पच्चक्खं।
रममाणीउ अकालीउ लहिअ गण्डूसमुद्धसिओ ॥४६॥

शब्दार्थ—(अइखेअराउ) जिसने विद्याधर की बहुओं को रूप-सौंदर्य में हीन कोटि की अपने सौंदर्य से प्रमाणित कर दी हैं (ऐसे) (रममाणीउ) क्रीड़ा करती हुई—से; (अकालीउ) अनुकूल आचरण नहीं करनेवाली से; ऐसी (उपरोक्त तीनों विशेषणों वाली), (वहूओ) वधु से कोई नायक (खे) आकाश में (खेअरीण) खेचरी से; (पच्चक्खं) उसके समान ही प्रत्यक्ष रूप से; (नायक तट पर खड़ा था और नायिका जल में कुछ दूर पर थी नायिका ने वहीं से मुख द्वारा जल का कुल्ला फेंका और नायक ने झट से अपने मुँह द्वारा उसे झेल लिया); (गण्डूसम्) मुख-जल=कुल्ले का जल; (लहिअ) प्राप्त करके; (उद्धसिओ) पुलकित हुआ—प्रसन्न हुआ।

टिप्पण—लीलाअ। रम्माइ। बहु-विहारए। लहरीए एन्तीइ उदञ्चिरीअ पडिरीआ। वहूए। वहूइ। वहूअ। वहूआ। इति वा पाठः। "टाङ स्ङे-रद् आद् इद् एद् वा तु ङसेः" (२९) इति प्रत्येकम् अ न् आत् इ त् एत् इत्यादेशाः ङसेस्तु वा। पक्षे वहूओ। इत्यादि। टादीनाम् इति किम्। सरिच्छाओ इत्यादि।

लीलाअ। रम्माइ। बहुविहारए इत्यादि। "नात आत्" (३०) इति स्त्रियाम् आदन्ताट्टादीनाम् आ आदेशो न ॥

खेअरीण। "प्रत्येय ङीर्न वा" (३१) अणादि सूत्रेण प्रत्यय निमित्तो यो ङीरुक्तः (है० २.४.२०) स स्त्रियां नाम्नो वा। पक्षे खेअराउ ॥

रममाणाए कालाइ इमीए कीइ काइ अ इमाए।
रे अज अजाइ रमसे त्ति का वि भणिउं हुणीअ पिअं ॥४७॥

**शब्दार्थ**—(रममाणाए) क्रीड़ा करती हुई (के साथ) (कालाइ) तिरस्कार करनेवाली (के साथ); (काइ) कुत्सित के साथ; (इमीए कीइ) ऐसी किसी भी; (अजाइ) जो प्रिय चित्त-रंजन-कला में अनिपुण है—अतएव पशु समान ऐसी; (इमाए; इमाए) ऐसी-ऐसी नायिकाओं के साथ; (रे अज) हे बकरे के समान बुद्धि रखने वाले नायक ! (रमसे) तू खेलता है; (ति) ऐसा; (का वि) किसी एक नायिका ने (भणिउं) कह करके; (पिअं) अपने प्रेमी को; (हणीअ) जल से चोट पहुंचाई अर्थात् उसकी ओर जल फेंका।

**टिप्पण**—रममाणीउ। अकालीउ। इमीए। "अजातेः पुंसः" (३२) अजातिवाचिनः पुंलिङ्गात् स्त्रियां वर्तमानाद् ङी र्वा। पक्षे रममाणाए। कालाइ। इमाए।

जीओ तीओ मुद्धा जाओ ताओ वि तह विअड्ढाओ।
तरुणीण जाण ताण वि जल-दन्द-रणे पयट्टाओ ॥४८॥

**शब्दार्थ**—(जाण ताण तरुणीण) जिन उन तरुण स्त्रियों के मध्य में (जीओ तीओ मुद्धा) जो वे मुग्धस्वाभाविक मनोहर नायक; (तह) तथा; (जाओ ताओ) विअड्ढाओ) जो वे विदग्ध-कटाक्ष-निक्षेप आदि क्रियाओं द्वारा प्रियाओं को रोकने में चतुर—ऐसे नायक; (वि) भी; (जल-दन्द-रणे) जल द्वन्दरण में—जल-क्रीड़ा में; (पयट्टाओ) प्रवृत्त हुए।

अच्छीण कज्जल-सिरि जा सा गलिआ न काण उम्मीही।
कंपि हु तं नयण-सिरिं ता पत्ता जं जणो सिहइ ॥४९॥

**शब्दार्थ**—(जा) जो, (अच्छीण) आँखों की (कज्जल सिरी) काजल की शोभा थी; (सा) वह (शोभा) (काण) किन्हीं-किन्हीं के; (उम्मीही) जल की लहरों से (न) नही (गलिआ) गलकर नष्ट हुई। (हु) आश्चर्य है कि; (कंपि) अवर्णनीय (तं) उस; (नयणसिरिं) आँखों की शोभा को; (ता) वह नायिका (पत्ता) प्राप्त हुई (जं) जिस (शोभा को); (जणो) पुरुष अथवा नायक; (सिहइ) चाहता है। (जल में स्नान करने से आँखों का कज्जल नष्ट होता ही है, परन्तु इन आँखों की स्वाभाविक मनोहरता ऐसी थीं; कि बिना काजल के भी ये आँखें कज्जल की शोभा-युक्त दिखलाई पड़ती थीं।

**टिप्पण**—कीइ काइ। जीओ तीओ। जाओ ताओ। 'कियत्तदोऽस्यमामि" (३३) एभ्यः स्त्रियां ङीर्वा। अस्य मामीति किम्॥ जाण। ताण। जा। सा। काण। कं तं जं॥

घण-छाहि-कयलि-छाये हलद्दि-गोरी हलद्द-गोरीहि ।
विलया-जलम्मि रमिआ ससाउ दुहिआउ वन्नोन्नं ॥५०॥

**शब्दार्थ**—(घण-छाहि-कयलि-छाये) सघन छाया वाले कदली वृक्षों का प्रतिबिम्ब पड़ रहा है; जिसमें; ऐसे; (जलम्मि) जल में; (हलद्दि गोरी) हल्दी के समान गौर वर्ण वाली अपनी सखियों के साथ; ऐसी; (विलया) वनिताएँ (रमिआ) क्रीड़ा करती थीं। वर्ण समानता से ऐसा प्रतीत होता था कि मानो (अन्नोन्नं) परस्पर में (ससाउ) बहनें हों; (व) अथवा; (दुहि आउ) पुत्रियाँ हों।

**टिप्पण**—छाहि छाये। हलद्दि-गोरी हलद्द-गोरीहि। "छायाहरिद्रयोः" (३४) अनयोः आप् प्रसङ्गे स्त्रियां ङीर्वा।

ससाउ। दुहि आउ। "स्वस्त्रादेर्डा" (३५) इति स्त्रियां डित् आः ॥

तर फलिहं कट्ठ अरे न लवसि किं अज्ज मा लवसु अज्जो ।
पइ नेसि पई मेसु व भणीअ इअ का व्वि जल-मज्झे ॥५१॥

**शब्दार्थ**—(अरे) हे स्वामि.!) (कट्ठ) (तू) काष्ठ; (के समान है तो); (फलिहं) इस खाई को; (तर) तैर जा; (अर्थात् काष्ठवत् निश्चेष्ट और निष्क्रीड़ावान् रहता है तो यहाँ से चला जा) (अज्ज) हे आर्य ! (किं न लवसि) क्यों नहीं बोलते हो ? (अज्जो) हे आर्य ! (मा लवसु) (भले ही) मत बोलो; (पइ) हे पतिदेव ! (न एसि) (पास में) नहीं आते हो; (व) अथवा (पई) हे पतिदेव ! (मा एसु) (पास में) (भले ही) मत आओ। (इअ) इस प्रकार; (जल-मज्झे) जल-मध्य में (का वि) कोई एक नायिका (भणीअ) बोली। (अथवा अपने पति से ऐसा कह रही थीं)

**टिप्पण**—फलिहं। "ह्रस्वोऽमि" (३५) इति ह्रस्वः ॥ कट्ठ। "नाम-न्त्यात् सौ मः" (३७) इति 'क्लीबे स्वरान् म् सेः" (३·२५) इति यो म उक्तः स न ॥

निग्घिणया सढ-पिअरं ओसर निग्घिणय मुञ्च धिट्ठ पिअ ।
का वि जलन्तर-कड्ढिअ-कडिल्लयं इअ भणीअ पिअं ॥५२॥

**शब्दार्थ**—(हे) (निग्घिणया) हे दया रहित ! (हे) (सढ-पिअरं) हे दुष्टों के पिता समान (अर्थात् अत्यधिक दुष्ट) (ओसर) यहाँ से हट जा; (हे)

(निग्घिणय) हे निर्दय (हे) (चिट्ठ-मिअ) (हे) धृष्ट माने जिनका अपराध प्रत्यक्ष में स्पष्ट हो गया है—ऐसे नीच पुरुषों के पिता ! अर्थात् धृष्ट शिरोमणि !; (मुञ्च) (मेरे वस्त्रों को) छोड़ दे; (मत पकड़); (इअ) इस प्रकार; (का वि) कोई नायिका ! (जलन्तर-) जल के मध्य में ही; (कड्ढिअ) खींच लिया है; (कडिल्लयं) कटि वस्त्र को जिसने; ऐसे (पिअं) अपने पति को; (भणीअ) कह रही थी।

टिप्पण—अज्ज अज्जो। पइ पई। निग्घिणया निग्घिणय। "ङो दीर्घो वा" (३८) इति ङो दीर्घो वा॥

पिअ। "ऋतोऽद् वा" (३९) इति अकारः अन्तादेशः पक्षे पिअरं।

कत्तार कया किमहं सुणसु वयंसे निरिक्खसु वयंसा।
अम्मो अन्नाइ पिओ रमए कीए वि इअ रुन्नं॥५३॥

शब्दार्थ—(हे) (कत्तार !) हे कर्त्तार ! ईश्वर ! (किम्) क्यों (अहम्) मैं; (कया) (तुम्हारे द्वारा) बनाई गई हूँ ? (हे) (वयंसे) हे सखि ! (सुणसु) सुनो; (हे) (वयंसा) हे सखि ! (निरिक्खसु) (इधर) देखो; (अम्मो) हे माता ! (पिओ) मेरा पति, (अन्नाइ) किसी अन्य स्त्री के साथ; (रमए) रमण करता है; (इअ) इस प्रकार; (कोए वि) किसी नायिका द्वारा; (रुन्नं) (उपरोक्त बात कह कर) रो दिया गया (अर्थात् रोने लगी)

टिप्पण—पिअरं। "नाम्न्यरं वा" (४०) इति अर। पक्षे पिअ। नाम्नीति किम्। कत्तार॥

वयंसे। "आप ए" (४१) इति आप एत्वम्। पक्षे वयंसा। बाहुलकात् क्वचित् ओत्वमपि। अम्मो॥

सहि वर-वहु चयसु इमं गामणिमिव खल पुणो वहूइ इह।
वारिणि इमाइ रमिरं इअ का वि सहीइ सिक्खविआ॥५४॥

शब्दार्थ—(हे सहि) हे सखि ! हे (वर-वहु) हे श्रेष्ठ वधू ! (इह) ग्रीष्म-ऋतु में (वारिणि) जल के मध्य-भाग में (इमाइ वहूइ) इस; (अन्य) स्त्री के साथ; (रमिरं) रमण करने वाले; (इमं) इस अपने पति को; (खल-पुणो खलिहान को साफ करनेवाले; (गामणिम्) भूसे को; (इव) समान; (जैसे किसान भूसे को छोड़ देता है; वैसे ही); (चयसु छोड़ दे; (इअ) इस प्रकार; (का वि) कोई नायिका; (सहीइ) अपनी सखी द्वारा; (सिक्खविआ) समझाई गई (शिक्षा दी गई)

टिप्पणी—सहि। वर-वहु। "ईदूतोर्ह्रस्वः" (४२)॥ धामणि। वलपुणो। "क्वोपः" (४३) इति ह्रस्वः॥

जामाउणो रमन्ते उअ वारिणि अपुरवं खु लडहत्तं।
को अन्नो लडहो सम्भलीहिँ काहिँ पि इअ भणिअं॥५५॥

शब्दार्थ—(जामाउणो) जँवाई गण (पुत्रियों के पतिगण) (वारिणि) जल में; (रमन्ते) क्रीड़ा कर रहे हैं; (उअ) देखो। (खु) निश्चय ही; (लडहत्तं) (इनका) सौन्दर्य, (अपुरवं) अनोखा ही है; (को अन्नो) दूसरा कौन; (ऐसा; लड हो सुन्दर है? (इअ) इस प्रकार; (काहिँ पि) किन्हीं (सम्भलीहिँ) कुट्टिनी स्त्रियों द्वारा (भणिअं) कहा गया।

रे धुत्त-पिआ सि तुमं जग-पिअरा गोरि-संकरा सविमो।
मा सवसु अप्प-पिअरं तं भत्तारो किमम्हाण॥५६॥

(जब पत्नि अपने पति को परस्त्री के साथ जल-क्रीड़ा करते हुए देख लेती है; तो पति उसको प्रसन्न करनें के लिए उसके पास आता है; तब पत्नि कहती है कि)

शब्दार्थ—(रे) अरे, (तुमं) तुम; (धुत्त-पिआ) धूर्त-पति (सि) हो; (अविश्वसनीय हो;) (जग-पिअरा) जगत के माता-पिता (गोरि-संकरा) पार्वती-शंकर (के समान हम) (सविमो) तुम्हें शाप देते हैं; (ऐसा पत्नि के कहने पर पति कहता है कि) (अप्प-पिअरं) अपने पति को; (मा सवसु) शाप मत दो; (इस पर पत्नि कहती है कि); (किं) क्या; (तं) तू; (अम्हाण) हमारा; (भत्तारो) पति है? (तू तो उससे प्रेम करता है)

भत्तारा जाण वसे धन्ना इत्थीण ताण माआओ।
माआए किं जणिआ किं महिआ माउराउ मए॥५७॥

शब्दार्थ—(जाण) जिन स्त्रियों के; (वसे) वश में (आज्ञा में) (भत्तारा) (उनके) पति हैं (ताण इत्थीण) उन स्त्रियों की (माआओ) माताएँ; (धन्ना) धन्य है; (मैं ऐसी ही माता द्वारा; (जणिआ) पैदा की गई हैं? (मेरे अविश्वसनीय पति के कारण से मुझे ऐसा विश्वास नहीं होता हैं; अतः) (मए) मेरे द्वारा; (माउराउ) माता की; (महिआ) पूजा; (करने से) (किं) क्या (लाभ है?) (क्योंकि मुझे तो ऐसा धूर्त पति मिला है)

देवा पिअरा सरणं संहर कत्तार भुअण - कत्ता मं ।
अन्नाइ छण्ठणे पि अयमम्मि कीए वि इअ रुण्णं ॥५८॥

**शब्दार्थ**—(देवा) ब्रह्मा, विष्णु, महेश; (पिअरा) पितृगण; (पूर्वज) (सरणं) मुझे शरणरूप हों; (कत्तार) सृष्टि का बनाने वाला; (भुअण-कत्ता) तीनों जगत् के बनाने वाले (मं) मेरा; (संहर) संहार कर दें; (क्योंकि) (अन्नाइ) किसी अन्य स्त्री के प्रति (पिअयम्मि) (मेरे) प्रियतम के (छण्ठणे) जल क्रीड़ा करने पर; (मैं अत्यन्त दुःखी हूं अतएव मृत्यु की प्रार्थिनी हूं); (इअ) इस प्रकार; आत्म-भावना प्रकट करते हुए) (किए वि) किसी नायिका द्वारा (रुण्ण) रुदन किया गया ।

**टिप्पण**—माआओ । माआए । माअराउ । "आ अरा मातुः" (४६) इति बाहुलकात् जनन्यर्थस्य आ देवतार्थस्य तु अरा इत्यादेशौ ॥

पिअरा । "नाम्न्यरः" (४७) इत्यरः ॥

कत्ता । "आ सौ न वा" (४८) इति आः । पक्षे कत्तार ॥

दे विन्नवेमि राया रायाणो देसु सव्वओ दिट्ठिं ।
उअ रायाणो केवीह के वि राया इह रमन्ते ॥५९॥

**शब्दार्थ**—(दे) (हे); (राया) हे राजन् ! (विन्नवेमि) मैं निवेदन करता हूं कि; (रायाणो) आप श्रीमान् (सव्वओ) चारो ओर; दिट्ठिं) दृष्टि को; (देसु) देवें; (फैलावें) (उअ) देखो; (के वि) कितने ही; (रायाणो) राजा-गण; (इह) यहां पर; (रमन्ते) क्रीड़ा करते हैं (के वि राया) कितने ही राजा-गण; (इह) यहां पर; (रमन्ते) क्रीड़ा कर रहे हैं ।

वाणारसीइ रण्णो कुरूण रायाउ अहिअमम्बु-छणो ।
रण्णो तिउरीए महुराए रायस्स य पयट्टो ॥६०॥

**शब्दार्थ**—(वाणारसीइ रण्णो) बनारस के राजा से; और (कुरूण रायाउ) कुरुदेश के राजा से; (अहिअम्) अधिक; (तिहुरीए) त्रिपुरी याने चेदि नगरी के; (रण्णो) राजा का; (य) और; (महुराए रायस्स) मथुरा के राजा का, (अम्बु-छणो) जलोत्सव; (पयट्टो) प्रवृत्त हुआ (चालु हुआ) ।

हूणाण राइणा इह उअ रायाणो इमे पहु रमन्ते ।
अङ्गाणं रण्णा राइणो तह सगेण राएण ॥६१॥

**शब्दार्थ**—(हे पहु) हे स्वामी ! (रायाणो) राजाओं को; (उअ) देखो; (हूणाण राइणा) हूण जाति के राजाओं के साथ; (इमे) ये; (नजदीक में स्थित)

(राजा सम) (इह) यहाँ पर; (रमन्ते) खेल रहे हैं; (अण्णो) अन्य देश के; (रण्णा) राजा के साथ, (तह) तथा, (अण्ण राएण) एक देश के राजा के साथ; (राइणो) अन्य राजा सब; (रमन्ते) खेल रहे हैं।

परओ जदूण रण्णो परओ चेवीण राइणो तह य ।
राइम्मि अरा अम्मि अ एगागारं जले कीला ॥६२॥

शब्दार्थ—(जदूण रण्णो) यादवों के राजा की; (परओ) दूसरी जगह पर; (राइम्मि) अपनी पत्नियों के साथ में; (अरा अम्मि) (और) सामान्य स्त्रियों के साथ में; (एगागारं) एक ही प्रकार से; बिना भेद-भाव के-सर्व सामान्य रूप से; (जले) जल में; (कीला) क्रीड़ा (हुई)

इह वारि-मज्जण-छणे राईणमराइणं च सम भावो ।
रायं अराइणं तह कीलन्तं पिच्छ राईहिं ॥६३॥

शब्दार्थ—(इह) यहाँ पर; (जल-घाट पर) (वारि-मज्जण-छणे) जल में स्नान करने रूप उत्सव में; (राईणम् अराइणं च) राजाओं के और अ-राजाओं के याने सर्व सामान्य नागरिकों के; (समभावो) (परस्पर में बिना किसी भेदभाव के जल-क्रीड़ा की दृष्टि से) तुल्यता है; समभावपना है; (तह) तथा, (रायं अराइणं) राजा को और प्रजा को; (राईहिं) अन्यान्य राजाओं के साथ; (कीलन्तं) क्रीड़ा करते हुओं को; (पिच्छ) देखो; (राजा-प्रजा परस्पर में समान रूप से जल-क्रीड़ा कर रहे हैं)

राईहिन्तो राईसु जन्ति राईण मण-हरा विलया ।
इण्हि रायाणेहिं उ अ जल-कीला-पयट्टेहिं ॥६४॥

शब्दार्थ—(उ अ) देखो; (इण्हि) इस समय में (जल-कीला पयट्टेहिं) जल क्रीड़ा मे प्रवृत्त हुए; (रायाणेहिं) राजाओं के साथ; (ये) (राईण मण-हरा) राजाओं के चित्त को हरण करने वाली; (विलया) वनिताएँ (अथवा वेश्याएँ); (राईहिन्तो) (इन) राजाओं से (पृथक् होकर); (राईसु) (अन्य) राजाओं के पास में (जन्ति) जाती हैं; अथवा जा रही हैं।

रण्णा अराइणा वि हु उच्छासिज्जन्ति नीर-लहरीओ ।
मगहाण राइणो कोसलाण रण्णो अ सविहम्मि ॥६५॥

शब्दार्थ—(मगहाण राइणो) मगध राजाओं का; (कोसलाण रण्णो) कोसल राजाओं के; (सविहम्मि) समीप में; (अ) और; (कोसलाण रण्णो)

कोसल के राजाओं का; (मगहाण राइणो) मगध के राजाओं के; (सविहम्मि) समीप में; (यो परस्पर में); (दोनों प्रकार से अर्थ करना—); (रण्णा) राजा द्वारा; (अराइणा वि) प्रजा द्वारा भी; (हु) निश्चय ही; (नीर-लहरीओ) पानी की लहरें; (उच्छालिज्जन्ति) उछाली जाती है; (अथवा उछाली जा रही हैं)

को वि जुआ सजुआणो अप्पणिआ सह पिअं जले नेउं ।
रूसविअप्पाणेणं अतोससी अप्पणइ आ वि ॥६६॥

**शब्दार्थ**—(को वि जुआ) कोई एक नवयुवक; (सजुआणो) तरुण मित्रों से परिवृत होता हुआ, (अप्पणिआ सह) अपने साथ; (पिअं) अपनी प्रेमिका-नायिका को; (जले) जल में; (नेउं) ले जा करके; (अप्पाणेणं) अपने ही प्रति अपने से; (रूसविअ) रुष्ट होकर; (अप्पइआ वि) अपने ही प्रति अपने द्वारा, (अतोससी) असंतुष्ट हुआ खिन्न हुआ ।

सव्वे अन्ने वि निवा खिवन्ति धारा-हरम्मि सव्वंस्सि ।
सव्वत्थ त्थी-लोए सव्वम्मि जलं तहन्नम्मि ॥६७॥

(इस जल-धारा संयुक्त स्थान पर सभी परस्पर में जल उछालने की क्रीड़ा कर रहे हैं—)

**शब्दार्थ**—(सव्वम्मि धारा-हरम्मि) सम्पूर्ण जल धारा घर में; (सव्वंस्सि त्थी-लोए) सभी स्त्रियो पर; (तह) तथा; (अन्नम्मि सव्वत्थ, अन्य सभी-मित्र आदि पर, सर्वत्र ही; (सव्वे अन्ने वि) अन्य सभी; (निवा) राजा गण; (जल) जल को; (खिवन्ति) फेंकते हैं ।

अन्नत्थ कुन्तला अन्नसिं कुसुमाइँ अन्नहिं हारा ।
पिच्छ मयच्छि-जणे सव्वहिं पि रहसेण जल- रमिरे ॥६८॥

(जल-क्रीड़ा के समय स्त्रियों के आभूषण आदि अस्त-व्यस्त हो गये हैं; हे राजन् ! उन्हें देखो ।)

**शब्दार्थ**—(अन्नत्थ) अन्यत्र ही (याने कन्धे आदि पर;) (बिखरे हुए); (कुन्तला) केशों को देखो, (अन्नस्सि कुसुमाइँ) (पहिले व्यवस्थित रीति से धारण किये हुए) फूलों को (अब) किसी अन्य ही स्थान पर-वा अंगोपांग पर (अव्यवस्थित रीति से); (पिच्छ) देखो; (अन्नहि हारा) हारों को; (गले के स्थान को छोड़कर के) अन्यत्र ही किसी अन्य ही अंगोपांग पर; (पिच्छ) देखो; (सव्वहिं पि) सभी स्थानों र; (रहसेण) उत्सुकता के साथ;(जल-रमिरे) जल में रमण

करती हुई (इन); (मयच्छि-जणे) मृगाक्षि-महिलाओं को; (पिच्छ) देखो; (बिन्दु स्खलित केशोंवाली; अस्त-व्यस्त फूलोंवाली; स्थान-भ्रष्ट हारोंवाली; उत्सुकता के साथ जल-क्रीड़ा करने वाली इन स्त्रियों को हे राजन् ! देखो)

काहिं जाहिं ताहि इत्थीए रमइ नेस राय-वड्डू ।
कीए जीए तीए वि विअड्ढाए निहिय-चित्तो ॥६९॥

**शब्दार्थ**—(कीए जीए तीए वि) किन्हीं ऐसी वैसी; (विअड्ढाए) विदग्ध-चतुरस्त्रियों में; (निहिय-चित्तो) स्थापित किया है चित्त को जिसने; ऐसा (एस) यह (राय-वड्डू) राज-पुत्र; (काहिं जाहिं ताहिं) किन्हीं ऐसी ऐसी वैसी; (इत्थीए) स्त्रियों में; (अचतुर में) (न) नहीं (रमइ) चित्त लगाता है ।

ए अंस्सि ठाणे जल-छणे इमस्सि हवन्ति नक्खङ्का ।
सव्वेसिं अन्नेसिं जुआण जुअईण य पयासा ॥७०॥

**शब्दार्थ**—(ए अंस्सि ठाणे) इस (यन्त्रमय स्नान घर में); (इमस्सि जल-छणे) इस जल-क्रीड़ा उत्सव में; (सव्वेसिं) सभी; (जुआण जुअईण) नव-युवक-नव युवतियों के (परस्पर में), (नक्खंका) नख के चिह्न, (हवन्ति) हो जाते हैं; तथा (अन्नेसिं) अन्य (सभी) (जुआण जुअईण) नव-युवक-नवयुवतियों के; (पयासा) (जल में स्नान करने से उबटन के धुल जाने पर; वे नख चिह्न प्रकट रूप से दिखलाई पड़ने वाले; (हवन्ति) हो जाते हैं ।

सव्वाणं अन्नाण वि जुआण जुअईण एत्थ हलबोलो ।
न हु कास तास रम्मो केसिं तेसिं न देइ धिहिं ॥७१॥

**शब्दार्थ**—(सव्वाणं अन्नाण वि) उन सभी; (जुआण-जुअईण) युवक-युवतियों का; (एत्थ) इस जल-क्रीड़ा के समय में (उत्पन्न होने वाला); (हल-बोलो) (एक प्रकार का) कोलाहल; (कास-तास हु) उनके किनके; लिये; (न) नहीं ; (रम्मो) रमणीय है; (अर्थात् सभी के लिये रमणीय है); (केसिं तेसिं) उनके किनके लिये; (धिहिं) धैर्य; (न देइ) नहीं देता है; (अर्थात् सभी के लिये धैर्य प्रदान करने वाला है; (अर्थात् इन युवक-युवतियों का कोलाहल रमणीय और आल्हादक होता है)

कास वि तास सरिच्छा किंनर-नारीइ किंनरस्स तहा ।
गायन्ति इत्थ रंमिरा वारिंणि तरुणीउ तरुणा य ॥७२॥

**शब्दार्थ**—(कास वि तास) जिन किन्हीं; (किन्नर नारीइ) किन्नर जाति के देवताओं की नारियों के; (तह) तथा; (किन्नरस्स) किन्नर जाति के देवताओं के; (सरिच्छा) समान; (तरुणीउ) नव-युवतियां; (य) और; (तरुणा) नवयुवक; (वारिणि-) जल में; (रमिरा) क्रीड़ा करते हुए; (इत्थ) इस प्रकार; (गायन्ति) गाते हैं।

कस्स वि तस्स जुआणस्स काइ ताए अ एत्थ जुअईए।
न हु दीसइ तणु-लट्ठी जा न सरोमञ्च-कञ्चुइआ ॥७३॥

**शब्दार्थ**—(कस्स वि तस्स) जिस किसी भी; (जुआणस्स) नव युवक की; (अ) और; [काइ ताए) जिस किसी; (जुवईए) नव-युवती की; (तणु-लट्ठी) शरीर रूपी यष्टी; (हु) निश्चय ही; (न) नहीं, (दीसइ) दिखाई देती है; (जा) जो; (सरोमञ्च कञ्चुइआ) रोमाञ्चमय कञ्चुकवाला; (न) नहीं; हो (अर्थात् जल-विहार से ठण्डक और हर्ष के कारण से शरीर पुलकायमान हो रहा है)।

पुं-सद्दो जास मणं जस्स य जल-केलि-काल-दुल्ललिओ।
किस्सा तिस्सा जिस्सा सो जुवईए अणुसरेण ॥७४॥

**शब्दार्थ**—(जास) जिसका; (मणं) मन, (पुं सद्दो) केवल "पुम्" संज्ञा-वाला मात्र ही है; (अर्थात् "पुम्" की व्युत्पत्ति के अनुसार धर्म, अर्थ, आदि पुरुषार्थों की साधना नहीं करता है) (य) और; (जस्स) जिसका, (मण) मन; (जल-केलि-काल-दुल्ललिओ) जल-क्रीड़ा के समय में दुर्ललित हो गया है; (काम वासना से अन्धा बन गया है; (सो) वह कामी, (किस्सा तिस्सा जिस्सा) जिस किसी भी उस; (जुवईए) नव-युवती के; (अणुसरेण) पीछे पीछे चलने से; (उपरोक्त बात मालूम पड़ रही है) काम-पीड़ित यह पुरुष स्त्री मात्र का अनुयायी हुआ जा रहा है।

कीसे तीसे जीसे पणालिआए पलुट्टिअं नीरं।
कीए जीए तीए वि बाहिरं तं न जुअईइ ॥७५॥

**शब्दार्थ**—(कीसे तीसे जीसे) जिस किसी उस; (पणालिआए) पतलि प्रणालिकासे; (पलुट्टिअं) गिरा हुआ; (नीरं) जो जल है; (तं) वह; (कीए जीए तीए) जिस किसी उस; (जुअईए) नवयुवती के; (शरीर से); (बाहिरं)

बाहिर पृथक्; (न) नहीं (गिरा); (अर्थात् यन्त्रों की इतनी विशेषता थी कि उनसे निर्गत जल स्त्रियों के शरीर पर ही गिरता था।

काहे वि नाहि-लोए काला वि न वा अमच्च-लोगम्मि ।
कइआ वि न भू-लोए जल-जन्तं एरिसं आसि ॥७६॥

**शब्दार्थ**—(एरिसं) ऐसा; (जल-जन्तं) जल-यन्त्र; (जो राजा कुमारपाल के विहार में लगा हुआ था; (काहे वि) किसी काल में; (अहि-लोए) नागलोक में=पाताल में; (न) नहीं; (आसि) था; (वा) अथवा; (काला वि) किसी भी काल में (अमच्च-लोगम्मि) देवलोक में; (न वि आसि) भी नहीं था; (कइआ वि) किसी भी काल में; (भू-लोए) भू लोक में—(इस पृथ्वी पर भी); (न) नहीं; (आसि) था। (ऐसा वह असाधारण था)।

जाला जलेण पुन्नं जंत-हरं जल-छणो हुओ जाहे ।
दोवारिएण ताहे विन्नत्तमिमं नरिन्दस्स ॥७७॥

**शब्दार्थ**—(जाला) जिस समय में, (जलेण) जल से; (पुन्नं) परिपूर्ण; (जन्तहरं) यन्त्र-गृह था; (जाहे) जिस समय में; (जल-छणो) जल-विहार-उत्सव; (हुओ) हुआ था; (ताहे) उस समय में; (दोवारिएण) द्वारपाल द्वारा; (नरिन्दस्स) राजा के लिए याने राजा की सेवा में; (इमं) यह बात; (विन्नत्तम्) निवेदन की गई ॥

**प्रावृट्कालप्रवृत्तिः**—

जइआ गिम्हो पयट्टओ तइअच्चिअ किर आसि पाउसो ।
जाए ताला जल-च्छणे पत्तो अच्छि-वहं खणे तहिं ॥७८॥

**शब्दार्थ**—(जइआ) जिस समय में; (गिम्हो) ग्रीष्म ऋतु, (च्चिअ) निश्चय करके; (आसि) था; (तइअ) उसी समय में; (पाउसो) वर्षा ऋतु भी; (किर) निश्चय करके; (पयट्टओ) प्रवृत्त हो गई थी। (जल-छणे) जल विहार-क्रीड़ा के; (ताला) उस समय में; (जाए) सम्पन्न होने पर; (ताहिं) उसी (खणे) क्षण में—समय में; (पाउसो) वर्षा ऋतु; (अच्छि-वहं) दृष्टि-गोचर; (पत्तो) प्राप्त हो गई (अर्थात् ग्रीष्म-ऋतु का समाप्ति का समय प्रायः आ चुका था और वर्षा ऋतु आरम्भ होने को थी। आँखों के लिये वर्षा-आरम्भ प्रतीत होने लगा था।

टिप्पण—राया। "राज्ञः" (४९) इति न लोपे अन्त्यस्य सौ आत्वं वा। पक्षे रायाणो।

रायाणो। रण्णो। रण्णो। "जश्शस्ङसिङसां णा (!)" (५०) इति णो। पक्षे। राया। रायाउ। रायस्स॥

राइणा। "टोणा" (५१) इति णा। पक्षे रण्णा। राएण।

राइणा। राइणो। राइणो। राइम्मि। "इर्जस्य णोणाङौ" इति जस्य इः। पक्षे रायाणो। राएण। रण्णो। अरा अम्मि। अराइणं। अराइणं। "इणम् अमामा" (५३) इति जस्य अमाम्भ्यां सह इणम्। पक्षे राईणं। रायं॥

राईहि। राईहिन्तो। राईसु। राईण। "ईद्भिस्भ्यसाम्सुपि" (५४) इति जस्य ई। पक्षे रायाणेहिं इत्यादि।

रण्णा। रण्णो। "आजस्य°" (५५) इति टाङसिङस्सुणा णो इत्यादेशापन्नेषु। अण्। पक्षे अराइणा। राइणो सणाणोषु इति व्यावृत्तेः रायाउ रायस्स राएण। इतिप्राग् (६०, ६१) उक्तोदाहरणानि इह ज्ञेयानि।

सजुआणो। "पुंस्यन°" (५६) इति अन्नन्तस्य आणः। पक्षे यथा दर्शनं "राज्ञः" (३·४९) इत्यादिभिः राजवत् कार्यम्। पक्षे जुआ।

अप्पणिआ। अप्पणइआ। "आत्मन°" (५७) इति टाया णिआ णइ आ। पक्षे। अप्पाणेण॥

सव्वे अन्ने। "अतः सर्वादेः°" (५८) इति सर्वादेः अदन्ताज्जसः डित् ए। जस इति किम्। सव्वस्सि॥

सव्वत्थ। सव्वम्मि। अन्नम्मि। अन्नत्थ। अन्नस्सि ङेःस्सिम्मित्थाः" (५९)।

अन्नहि। सव्वहि। "न वानिद°" (६०) इति हिं वा। बाहुलकात् कियत्तद्भ्यः स्त्रियामपि। काहि। जाहिं। ताहिं। पक्षे सव्वसिं। सव्वत्थ। सव्वम्मि। इत्यादि। स्त्रियां तु पक्षे कीए। जीए। तीए। इदमेतद्वर्जनं किम्। इमस्सि। एअस्सि।

सव्वेसिं। अन्नेसिं। "आमो डेसिं" (६१) इति डेसिं पक्षे सव्वाणं। अन्नाण। बाहुलकात् स्त्रियामपि। केसिं तेसिं॥

कास। तास। "किंतद्भ्यां डासः" (६२) पक्षे केसिं। तेसिं॥

कास । तास । जास । किमत्तद्भ्यो ङसः (६३) इति डासः पक्षे कस्स । तस्स । जस्स । बाहुलकात् किंतद्भ्याम् आकारान्ताभ्यामपि डासो वा । कास । तास । पक्षे काए । ताए ॥

किस्सा । जिस्सा । तिस्सा । कीसे । जीसे । तीसे । "ईद्भ्यःस्सा से" (६४) इति स्सा से । पक्षे कीए । जीए । तीए ॥

काहे । काला । कइआ । जाला । जाहे । ताहे । जइआ । तइआ । ताला । "ङेर्डाहे°" (६५) इति आहे आला इति डितौ इआ च । पक्षे तहिं इत्यादि ।

इत्याचार्य श्री हेमचन्द्र विरचित श्री कुमारपाल चरित प्राकृतद्वयाश्रयमहाकाव्यवृत्तौ चतुर्थः सर्गः समाप्तः ॥

□ □

# पंचमः सर्गः

**प्रावृट् वर्णनम्**— १ ४५—

(ग्रीष्म के बाद अब वर्षा ऋतु का वर्णन करते हैं—)

कम्हा जम्हा तम्हा वि वण-निउञ्जाउ तत्थ महमहिओ ।

काओ जाओ ताओ वि पक्खओ नीव-गन्धो तो ।।१।।

**शब्दार्थ**—(कम्हा जम्हा तम्हा वि) किससे-जिससे उससे भी अर्थात् सम्पूर्ण से ऐसे; (वण-निउञ्जाउ) वन निकुंज से, (तत्थ) उस वर्षा काल में; (काओ जाओ ताओ वि) किससे, जिससे, उससे; भी अर्थात् चारो ओर से; (पक्खओ) बाजू से—पास से याने समीप-दूर पीछे-आगे दाये-बायें सभी ओर से; (तो) उस समय में, (महमहिओ) महान् पूजनीय-श्रेष्ठ; (नीव-गन्धो) कदम्ब की सुगन्ध; (फैल गई) (फैल रही है)

**टिप्पण**—कम्हा । जम्हा । तम्हा । "ङसेर्म्हा" (६६) पक्षे काओ जाओ । ताओ ।। तो । "तदो डो" (६७) इति ङसेर्डो । पक्षे तम्हा ।

गायन्ति किणो मोरा कीस पिगी गाइ जम्बु-फल-मत्ता ।

कम्हा वयं जिआमो तत्थ पउत्थेहिँ इअ लविअं ।।२।।

**शब्दार्थ**—(किणो) क्यो ? किसलिये ? (मोरा) मोर-गण (गायन्ति) गा रहे हैं; (जम्बु-फल-मत्ता) जामुन के फलों से मस्त हुई (पिग्गी) कोयल, (कीस) किसलिये ? क्यों ? (गाइ) गाती है ? (वयं) हम, (कम्हा) कैसे ? (जिआमो) जीवित रहें, (इअ) इस प्रकार; (तत्थ) उस वर्षा ऋतु में; (पउत्थेहि) (प्रिया-वियोगी) पथिकों द्वारा, (लविअं) बोला गया । (वर्षा ऋतु और कोयल की वाणी को सुनकर के पथिकों को अपनी प्रियतमा की याद आई)

**टिप्पण**—किणो । कीस । "किमो डिणोडीसौ" (६८) इति ङसेर्डिणो-डीसौ । पक्षे कम्हा ।।

इमिणा इमेण एएण एदिणा किण वि जेण तेण किर ।

सव्व-दिसाण मुहेणं महमहिओ मालई-गन्धो ।।३।।

**शब्दार्थ**—(जेण किण वि तेण) जिस किसी भी, उससे अर्थात् सभी ओर से; (सव्व-दिसाण-मुहेणं) सभी दिशाओं के मुख से—याने चारों ओर से; (इमिणा) इस (पूर्व दिशा) से; (इमेण) इस; (पश्चिम-दिशा) से; (एएण) इस; (उत्तर दिशा) से; (एदिणा) इस; (दक्षिण दिशा) से; (किर) निश्चय ही; (महमहिओ) श्रेष्ठ—(मालई-गन्धो) मालती पुष्पों की सुगन्ध (फैल रही है)

वायं वाएण तिणा केणावि जिणा खु णेहि पहिएहि ।
परिमुक्को नीसासो भरिऊणं दइअ-रइ-केलिं ॥४॥

**शब्दार्थ**—(तिणा केणा वि) उस किसी (से); (वाएण) हवा से, (वायं) चला गया अर्थात् हवा प्रवाहित हुई; (जिणा) जिस (प्रवाहित हवा) से; (खु) निश्चय ही; (णं) (पादपूरणार्थ) (हि) खेद है कि; (अथवा) (णेहि) उन; (द्वारा) (पहिएहि) (प्रिया-वियुक्त—) पथिकों द्वारा; (दइअ-रइ-केलिं) अपनी प्रिया की रति-क्रीड़ा को; (भरिऊणं) स्मरण करके; (नीसासो) निःश्वास (परिमुक्को) छोड़ा गया ।

**टिप्पण**—इमिणा । इमेण । एएण । एदिणा । किण । जेण । तेण । तिणा । केण । जिणा ॥ "इदमेतत्कियत्तद्भ्यष्टो डिणा" (६९) इति टाया डित् इणा वा ॥

मालइ-लयाइ णाए णेण य पुव्वाणिलेण पहिआण ।
कत्तो वि को वि कत्थ वि अहूव-पुव्वो हुओ मोहो ॥५॥

**शब्दार्थ**—(णाए मालइ-लयाइ) उस मालती लता (के कारण) से; (य) और; (णेण पुव्व-अणिलेण) उस पूर्वीय हवा (के कारण) से; (पहि आण) पथिकों के; (कत्तो वि) किन्हीं (कारणो) से; (कत्थ वि) कहीं पर भी, अर्थात् उद्यान आदि स्थानों पर; (को वि) कोई (अनिर्वचनीय शब्दों द्वारा अकथनीय); (अहूव-पुव्वो) अभूतपूर्व; (मोहो) मोह=चित्त विभ्रमता; (हुओ) हुई । (मोह उत्पन्न हुआ) ।

**टिप्पण**—णेहि । णाए । णेण । "तदो णः स्यादौ क्वचित् (७०) इति स्यादौ णो लक्ष्यानुसारेण ।

कत्तो । को । कत्थ । "किमः कस्त्र-तसोश्च" (७१) इति स्यादौ त्रत-सोश्च कः ॥

अह विन्नत्तं आरामिएण पेच्छसु इमं वणोद्देसं।
वल्लीहि इमाहि इमो बहल-दलाहिं मणो हरइ ॥६॥

**शब्दार्थ**—(अह) अथ (वर्षा से वन के वृक्षों के पत्र-पल्लवित होने पर); (आरामिएण=) उद्यान-पालक द्वारा, (विन्नत्तं) (राजा कुमारपाल) निवेदन किया गया; (इम वणोद्देसं) इस वन के पार्श्व स्थान को—प्रदेश को; (पेच्छसु) (हे राजन्) देखो। (इमो) यह; (वन) (इमाहि) इन; (बहल-दलाहि) सघन पत्तो के समूहवाली, (वल्लीहि) लताओं द्वारा; (मणो) मन को, (हरइ) (अपनी ओर) आकर्षित करता है।

**टिप्पण**—इम। इमाहि। इमो। "इदम इमः" (७२)

इमिआ पाउस-लच्छी कहइ अयं सिरिफलो वणे अस्सि।
समए इमस्सिमलि-किङ्किणी-रवं काम-छत्तं व ॥७॥

**शब्दार्थ**—(इमस्सिम् समए) इस समय में; (अस्सि वणे) इस वन में; (अय सिरिफलो) यह श्रीफल=नारियल है; (अलि-किङ्किणी-रव) (सुगन्ध के कारण से) भ्रमर-रूप लगी हुई छोटी-छोटी काली घंटियो के शब्द से जो शब्दायमान हो रहा है; ऐसा; (काम-छत्तं) कामदेव के छत्र को; (व) मानो—(उसके समान); (इमिआ) यह; (पाउस-लच्छी) वर्षाऋतु रूप—लक्ष्मी; (कहइ) कहती है (श्रीफल के पत्तो छत्र के समान हैं, जिनमें सुगन्धवशात् भँवरे लगे हुए हैं, वे ही छोटी-छोटी घुघरु है, भँवरो का कलरव ही घुँघुरुओ की आवाज है; ऐसा छत्र मानो कामदेव का है; यह बात यह वर्षा-जनित शोभा बतला रही है)

**टिप्पण**—इमिआ। अय। "पुंस्त्रियो र्न वायमिमिआ सौ" (७३) इमादेशो पि। इमस्सि। इमस्स। बाहुलकाद् अन्यत्रापि। एसु। आहिं। एहिं॥

उअ अस्स जम्बु-तरुणो इमस्स दाडिमि-दुमस्स य फलाइं।
एसु रमिज्जइ आहिं सुगीहि एहि सुगेहिं च ॥८॥

**शब्दार्थ**—(अस्स-जम्बू-तरुणो) इस जामुन के वृक्ष के, (फलाइ) फलो को; (य) और; (इमस्स दाडिमि-दुमस्स) इस दाड़िम के वृक्ष के; (फलाइं) फलो को; (उअ) देखो। (एसु) इन फलों पर; (आहिं सुगीहि) इन नारी तोताओं द्वारा; (च) और (एहिं सुगेहिं) इन नर तोताओं द्वारा; (रमिज्जइ) क्रीड़ा की जा रही है।

**टिप्पण**—अस्सि। अस्स। "स्सिस्सयोरत्" (७४) इमा देशो पि। इमस्सि। इमस्स॥ बाहुलकात् अन्यत्रापि। एसु। आहिं। एहि।

इह उज्जाणे समए इमम्मि णं पिच्छ विहसियं नीवं ।
कुडयं च इमं णे अज्जुणे अ ताविच्छए अ इमे ॥९॥

**शब्दार्थ**—(इमम्मि समए) इस समय में; (इह उज्जाणे) इस उद्यान में; (विहसियं नीवं) विकसित कदम्ब के वृक्ष को; (इमं कुडयं) इस कुटज नामक वृक्ष को; (च) और; (णे अज्जुणे) इन अर्जुन नामक वृक्ष को; (अ) और; (इमे ताविच्छए) इन तमाल नामक वृक्षों को; (जो कि सभी पुष्पित और पल्लवित हैं; ऐसे इनको) (पिच्छ) देखो।

**टिप्पण**—इह। "ङेर्मेन हः" (७५) इदमः कृतेमात् ङेः स्थाने मेन सह हः। पक्षे इमस्सि। इह। इमम्मि। "न त्थः" (७६) इदमः ङेः त्थो न॥

लङ्गलि-वणेण णेणं फुल्लं जूही-वणेण य इमेण ।
कोहलि-वणेहि णेहि इमेहिँ बिम्बी-वणेहि च ॥१०॥

**शब्दार्थ**—(णेणं लंगलि-वणेण) इस लांगली-लता के वन से; (फुल्ल) प्रफुल्लित (उद्यान को देखो); (य) और; (इमेण जूही-वणेण) इस जूही-माधवी लता-के वन से (प्रफुल्लित); (णेहि कोहलि-वणेहिँ) इन कोहलाओ के वनों से (प्रफुल्लित); (इमेहिँ बिम्बी वणेहि) इन बिम्बी-रक्त फलों के वनों से; (प्रफुल्लित) (उद्यान को देखो)

**टिप्पण**—णं। णे॥ णेणं (णेहि) "णोम् शस्टा भि सि" (७७) इति णः। पक्ष इमं। इमे। इमेण। इमेहिँ॥

भू-भागमिणं तह नह - भागमिमं परिमलेण रुन्धन्तं ।
इदमिणमिणमो अ वणं कोआसइ केअईण उअ ॥११॥

**शब्दार्थ**—(इण भू भागम्) इस भूमि भाग को; (तह) तथा, (इमम् नह भागम्) इस आकाश देश को, (परिमलेण रुन्धन्त) सुगन्ध से परिव्याप्त; (इदम् इणम्, इणमो) इसको-इसको-इसको याने सभी पृथ्वी-आकाश के भाग को; (उअ) देखो; (अ) और; (केअईण) केतकी लताओं का, (वनं) वन, (कोआसइ) विकसित होता है (अतः यह भी देखो)

**टिप्पण**—इण। "अमेणं" (७८) पक्षे इमं॥

इदं। इणं। इणमो। "क्लीबे स्यमेदमिणमो च। (७९) इति सिअम्भ्यां सह इदं इणमो इणं च॥

उअ किं पि हु सुन्देरं पाउस-समयस्स से पयट्टस्स ।
सि कुडयज्जुण-सज्जाण परिमलो इत्थ परिमिलिओ ॥१२॥

**शब्दार्थ**—(से) इस (का), (पयट्टस्स) प्रवृत्त (विद्यमान का); (पाउस-समयस्स) वर्षा-कालीन समय का; (हु) निश्चय ही, (किंपि) किसी भी अनि·र्वचनीय (सुन्देरं) सौन्दर्य को, (उ अ) देखो; (सिं) इन; (कुडयज्जुण-सज्जाण) कुटज-अर्जुन सर्जा नामक सुगन्धित वृक्ष की परिमलो सुगन्ध; (इत्थ) यहाँ पर (इस उद्यान में); (परिमिलिओ) सम्मिलित (परस्पर में मिश्रित) हो गई है।

**टिप्पण**—किं। "किमः किं" (८०)॥

से चन्दणस्स तह मयनाभीए सिं च अगरु-कलिआण।
कप्पूर-पारियाण य अहिअयरो मालई-गन्धो ॥१३॥

**शब्दार्थ**—(से चन्दनस्स) इस चन्दन से, (तह) तथा, (सिं मयनाभीए,) इस कस्तूरी से, (अगरु कलि आण) अगर की कलिकाओं—अविकसित पुष्पों से, (कप्पूर-परियाण-) कपूर और देव वृक्ष से; (मालइ गन्धो) (इस) मालती का गन्ध, (अहि अयरो) अधिकतर है। मालती-गंध सर्वश्रेष्ठ है।

**टिप्पण**—से चन्दनस्य इत्यादिषु" क्वचिद् द्वितीयादेः" (३·१३४) इति पञ्चम्या। षष्ठी॥

चिञ्चणिअ-तरूणेमाणेआण य कुसुम-दंसणे हरिसो।
कह वि न माइ इमस्सेअस्स य आराम-लोअस्स ॥१४॥

**शब्दार्थ**—(इमाण-ऐआण) इन; (चिञ्चणिअ-तरूण) इमली के वृक्षों के; (कुसुम-दसणे) (खिले हुए) फूलों के देखने पर, (इमस्स ऐअस्स) इस, (आराम-लोअस्स) उद्यान रक्षक पुरुष के, (हृदय में), (हरिसो) हर्ष (कह वि) किसी भी तरह से, (न) नही, (माइ) समाता है; (अर्थात् अत्यधिक प्रसन्न हो रहा है) (इस गाथा में एआण-इमाण और इमस्स-ऐअस्स=षष्ठी के रूप हैं और दोनों का तात्पर्य, नजदीक और अति नजदीक; के अर्थ में हैं।)

ताण ललिआण ठाणं तस्साणङ्गस्स लङ्गली-कुसुमं।
एआओ एत्ताहे एत्तो अ न एत्थ को ॥१५॥

**शब्दार्थ**—(तस्स अणङ्गस्स) उस कामदेव के, (ठाणं) स्थान रूप (ताण ललिआण) उन सौंदर्य के, (ठाणं) स्थान रूप; (लंगली-कुसुमं) शारदीय लता के फूल को, (एआओ-एत्ताहे) इन इन (स्थानों से); (अ) और; (एत्तो-एत्थ) इस-इस (स्थान से), (को न लेइ) कौन नहीं लेता है—अर्थात् सभी लेते हैं।

**टिप्पण**—से । सिं । "वेदं तदेतदो ङसाम्भ्यां से-सिमौ" (८१) इत्या-
दिना इदम् तद् एतदां स्थाने ङस् अम् भ्यां सह यथासंख्यं सेसिमौ । पक्षे
इमाण । एआण । इमस्स । एअस्स । ताण । तस्स ॥

एत्ताहे । एत्तो । "वैतदो ङसेरत्तो त्ताहे" (८२) इति एतदोङसेः स्थाने
त्तो त्ताहे । पक्षे एआओ ।

एत्ताहे । एत्तो । एत्थ । "त्थे च तस्य लुक्" (८३) एतदः त्थे परे त्तो
त्ताहे एतयोश्च परयोस्तस्य लुक् ।

एअम्मि वणोद्देसे ईअम्मि तहा अयम्मि ऊसलइ ।
इणमिणमो एस फुडं सालो जूही सिलिन्धं च ॥१६॥

**शब्दार्थ**—(एअम्मि-ईअम्मि अयम्मि-) यहाँ पर-यहाँ-पर यहाँ पर
(अथवा इस. इस, इस); (वणोद्देसे) वनप्रदेश में, (इणमो सालो) यह अर्जुन-
वृक्ष, (इणम् सिलिन्ध) यह "भूमिस्फोट" नामक वृक्ष है; (एस जूही) यह
मागधी लता जूही; (फुड) स्पष्ट रूप से, (ऊसलइ) खिल रही है । (अर्थात् वृक्ष
और लताएँ सभी फूलों-पत्तों और कोंपलों से विकसित हो रहे हैं)

**टिप्पण**—ई अम्मि । अयम्मि । "एरदीतौ म्मौ वा" (८४) इति एतदः
एकारस्य ङ्यादेशे म्मौ अत् ईतौ। पक्षे एअम्मि ।

कुडयं दलइ तमेअं एसा सा जूहिआ महमहेइ ।
एसो सो कन्दलिओ वेणु-कुडङ्गो वि पडिसाहं ॥१७॥

**शब्दार्थ**—(तम् एअं) यह वह (जिसको पहले देखा था, वही यह)
(कुडंय) कुटज, (दलइ) विकसित हो रहा है । (एसा सा) यह वह, (जूहिआ)
जूही, (महमहेइ) गंध से महक रही है; (एसो सो) यह वही, (वेणु-कुडंगो वि)
बाँस का कुञ्ज भी; (पडि-साहं) प्रतिशाखा; के ऊपर (कन्दलिओ) नये-नये
अंकुरोंवाला; हो गया है ।

**टिप्पण**—इणं । इणमो । एस । "वैसेणमिणमो सिना" (८५) इति
एतदः सिना सह एस इण इणमो । पक्षे एअं । एसा । एसो ॥

एसा । सा । एसो । सो । "तदश्च तः सो अक्लीबे" (८६) अक्लीबे ।
अक्लीब इति किम् । तं एअं ॥

अह लीला-पोक्खरिणी अह नीरं वहुडवास-मुक्कं च ।
अह पवण-वेवमाणो नवो अ कलमङ्कुरुक्केरो ॥१८॥

**शब्दार्थ**—(अह) वह, (लीला-पोक्खरिणी) क्रीडा करने की बावडी, (है); (अह) वह, (वड्डवास-मुक्क) बादलों से गिरा हुआ; (नीरं) जल (है); (अह) वह, (पवण-वेवमाणो) वायु से हिलता हुआ, (नवो) नया कलम सर्वोत्तम-चावल-शालि के अंकुर-(उक्केरो,) अंकुरो का समूह (है) ।

तापिच्छो बहल-दलो अमू-अमू कमलिणी अ गय-कमला ।
मत्तममुं भेग-कुलं अमूसु लीला-तलाईसु ॥१९॥

**शब्दार्थ**--(अमू) यह; (बहल-दलो) सघन पत्तों वाला, (तापिच्छो) तमाल वृक्ष है। (अमू) यह, (गय-कमला) जिसके कमल-फूल गिर गये हैं; ऐसा, (कमलिणी) कमल का मूल रह गया है। (अमूसु) इन (में), (लीला-तलाईसु) क्रीडा करने के छोटे-छोटे तालाबों में, (अमुं) यह, (मत्तम्) मदोन्मत्त, (भेग-कुल) मेढकों का समूह हैं।

**टिप्पण**—अह ३। "वादसौदस्य होनोदाम्" (८७) इति अदसो दस्य सौ हो वा। तस्मिश्च कृते अत. सेर्डो" (३,२) "आत्" (है० २ ४) इत्याप्। क्लीबे स्वरान् म् से" (३·२५) इति मश्च न भवति। पक्षे उत्तरेण मुः आदेशः ॥

अमू। अमू। अमुं। अमूसु। "मुः स्यादौ" (८८)

निचुलाण अयम्मि वणे इअम्मि तह सल्लई-निउञ्जम्मि ।
साल-वणम्मि अमुम्मि अ परिमल-बहलो वहइ पवणो ॥२०॥

**शब्दार्थ**—(अयम्मि) इस, (निचुलाण) वंजुल वृक्षो के, (वणे) जगल मे; (तह) तथा, (इअम्मि) इस, (सल्लई निउञ्जम्मि) सल्लकी के निकुंज में; (अ) ओर, (अमुम्मि) इस, (साल वणम्मि) साल के वन में, (परिमल-बहलो) सुगन्ध से परिपूर्ण, (पवणो) पवन, (वहइ) बह रहा है—चल रहा है।

**टिप्पण**—अयम्मि। इअम्मि। "म्मावये औ वा"(८९) अदस अन्त्यव्यञ्जनलुकि दकारान्तस्य स्थाने ङ्यादेशे म्मौ अय इअ। पक्षे अमुम्मि।

तं तुं तुवं तुह तुमं आणेह नवाइँ नीव-कुसुमाइँ ।
भे तुब्भे तुम्हो य्हे तुय्हे तुज्झासणं देह ॥२१॥

**शब्दार्थ**—(तू ये फूल लाव, तू ये फूल लाव, आदि रूप से भिन्न-भिन्न सखियों द्वारा कृत वार्तालाप का वर्णन - हे सखि ! (तं) तू, (तं) तू; (तुव) तू, (तुह) तू; (तुम) तू, (नवाइं) नये-नये; (नीव-कुसुमाइं) कदब वृक्षों के फूलों को, (आणेह) लाओ, (ला), (भे) तुम, (तु) तुम, (तुम्ह) तुम; (तुय्हे) तुम, (तुज्झ) तुम, (आसणं) बैठने के लिये) आसन को, (देह) देओ।

तुम्हे तुज्झो ण्हायह अहिणव-कल्हार-पत्तिआणयणे ।
तं तु तुमं तुवं तुह तुमे तुए संपयं भणिमो ॥२२॥

**शब्दार्थ**—हे सखि ! (तुम्हे) तुम; (तुज्झो) तुम; (ण्हायह) स्नान करो; (तं) तुमको; (तुं) तुमको; (तुमं) तुमको; (तुह) तुमको; (तुमे) तुमको; (तुए) तुमको, (संपय) इस समय में अभी; (अहिणव) नये-नये कल्हार की; (पत्ति-आणयणे) पत्तियों को लाने के लिए, (भणिमो) हम कहती हैं, (यों सखियां पृथक्-पृथक् रूप से परस्पर में कहती हैं) ।

वो तुब्भे तुज्झोय्हे तुम्हे तुज्झो अ भे अ तुय्हे अ ।
भणिमो न किमिह ण्हाएह पल्लले दद्दुर-भएण ॥२३॥

**शब्दार्थ**—हे सखि ! (वो तुब्भे=तुज्झ=उय्हे=तुम्हे=तुज्झो=भे= तुय्हे) (इन आठों का एक ही अर्थ है) तुमको, (भणिमो) हम कहती हैं कि; (किम्) क्या, (इह) इस, (पल्लले) थोड़े जलवाले– छोटे तालाब में, (दद्दुर-भएण) मेंढकों के भय से, न; (ण्हाएह) स्नान, (न) नहीं करती हो ? (अर्थात् मेंढको का भय त्याग करके स्नान करो)

भे ते दि दे तइ तए तुमाइ तुमए तुमे तुमं तुमइ ।
किं नाणिज्जइ दुव्वा पउमावइ-देवि-पूयत्थं ॥२४॥

**शब्दार्थ**—हे सखि ! (तुझ से—इस अर्थ में ग्यारह शब्द हैं जो इस प्रकार है—(भे, ते, दि, दे, तइ, तए, तुमाइ, तुमए, तुमे, तुमं तुमइ) तुझ से अथवा तेरे द्वारा, (किं) क्या, (पउमावइ-देवि-पूयत्थं) पद्मावती देवी-के पूजन के लिये, (दुव्वो) दूब; (न) नहीं, (आणिज्जइ) लाई जाती है। (अर्थात् सब कामों को छोडकर प्रथम दूब लाओ)

भे तुब्भेहिं अ तुज्झोहिं अ तह तुम्हेहिं तुलसिआ गिज्झा ।
उज्झोहिँ अ उम्हेहिं अ तुय्हेहिं तह य उय्हेहिं ॥२५॥

(बहुवचन अर्थ में तुम द्वारा, तुम्हारे द्वारा इस अर्थ में आठ शब्द हैं जो कि इस प्रकार हैं—

**शब्दार्थ**—हे सखि (भे=तुब्भेहिँ=तुज्झेहिँ=तुम्हेहिँ=उज्झेहिँ= उम्हेहिँ=तुय्हेहिँ=उय्हेहिँ) तुम्हारे द्वारा, (अ) और (तह) तथा, (य) और; (तुलसिआ) तुलसी; (गिज्झा) ग्रहण की जानी चाहिये। तोड़नी चाहिए) ।

तुब्भत्तो तुम्हत्तो तुज्झत्तो केंअइं तुहत्तो वि ।
आणाएमि तुमत्तो तहा तुवत्तो तइत्तो अ ॥२६॥

**शब्दार्थ**—(तेरे से—तेरे पास से इस पंचमी विभक्ति में "तू" सर्व नाम के सात रूप नीचे लिखे अनुसार होते हैं) हे सखि (तुब्भत्तो, तुम्हत्तो, तुज्झत्तो; तुहत्तो; तुमत्तो, तुवत्तो, तइत्तो) तेरेसे, (वि) भी; (तहा) तथा; (अ) और; (केअइं) केतकी-पुष्प को—केवड़ा को; (आणाएमि) लाती हूँ।

तुय्ह तहिन्तो तुब्भ य तुम्ह य तुज्झ य सवेण्ट-पिक्काइं।
देवीइ ढोवणत्थं तोडामो दाडिमि-फलाइं ॥२७॥

**शब्दार्थ**—("तुम्हारे से" अर्थ मे निम्नोक्त रूप और भी हैं, ये पाँच हैं) हे सखि ! (तुय्य, तहिन्तो, तुब्भ, तुम्ह, तुज्झ) तुम्हारे पासे से, (य) और (देवीइ) देवी पद्मावती के, (ढोवणत्थं) भेंट करने के लिये, अर्पण करने के लिये, (सवेण्ट-पिक्काइं) वृन्त; (बींट) सहित पके हुए; (दाडिम-फलाइं) दाडिम के फलों को; (तोडामो) हम तोडते हैं।

तुब्भत्तो तुय्हत्तो उय्हत्तो तह य तह य उम्हत्तो।
तुम्हत्तो तुज्झत्तो मुत्था-धूवं करावेमि ॥२८॥

**शब्दार्थ**—हे सखि ! (तुब्भत्तो तुय्हत्तो, उम्हत्तो तुम्हत्तो, तुज्झत्तो) (सबका एक ही अर्थ) तुम से, (मुत्था-धूवं) नागर-मोथा का धूप, (करावेमि) मैं करवाती हूँ।

तइ ते तुहं तुह तुमे तु तुम्ह तुव तुम तूमो तुमाइ इ ए।
दे दि तहा विम्हरिअं किभिमं पल्लल-जले ण्हाणं ॥२९॥

**शब्दार्थ**—हे सखि ! (तेरा, तेरी, अर्थ में १५ शब्द हैं—(तइ, ते, तुह, तुह, तुमे, तु, तुम्ह, तुव, तुम, तुमो, तुमाइ, इ, ए, दे, दि) तेरा; (ण्हाण) स्नान किया जाना, (इमं पल्लल-जले) इस छोटे से तालाब के जल में; (किम्) क्या, (विम्हरिअं) भूला दिया गया है।

उब्भ य तुम्हं तुब्भ य उम्ह य उय्य तह उज्झ तह तुज्झ।
पुप्फञ्जलि-दाण-कए नीवावचए किमालस्सं ॥३०॥

**शब्दार्थ**—हे सखि ! (उब्भः तुम्ह; तुब्भ, उम्ह, उय्ह, उज्झ, तुज्झ,) तेरा (पुप्फञ्जलि-दाण-कए) पुष्प-अजलि का विधान करने के लिये—निर्माण करने के लिए, (नीवावचए) धारा-कदम्ब के फूलों को चूँटने में; (किम्) क्यों, (आलस्सं) आलस्य किया जाता है।

भे तुब्भ तु वो तुब्भं तुब्भाण तुवाण तुम्ह तुम्हं च।
तुम्हाण य पल्लओ विम्हरिअं किं जलाणयणं ॥३१॥

('तुम्हारा' बहु-वचन अर्थ में १० शब्द है—)

**शब्दार्थ**—हे सखि ! (भे, तुब्भ, तु, वो, तुब्भं, तुब्भाण; तुवाण, तुम्ह, तुम्हं, तुम्हाण,) तुम्हारा, (पल्ललओ) छोटे तालाब से; (जलाणयणं) जल का लाना; (किं) क्या; (विम्हरिअं) भूला गया है, (जल लाने में क्या विस्मृति हो गई है)।

तुज्झं तुज्झ तुमाणं तुमाण उम्हाण अवि अ उम्हाणं ।
मत्त जलवायसुड्डावणेण जल-कलुसणं किमिमं ॥३२॥

**शब्दार्थ**—हे सखि ! (तुज्झं, तुज्झ, तुमाणं, तुमाण, उम्हाण, उम्हाणं) तुम्हारा, (तुम्हारे द्वारा), (मत्त-जलवायस उड्डावणेण) मदोन्मत्त-जल-कौओं के उड़ाने से, (किं इमं) क्या यह, (जल-कलुसणं) (पक्षी के नहाने से) जल कलुषित नहीं हो गया है ? (पक्षी को उड़ाने के लिये पत्थर फेंकने से इस प्रकार जल मलीन हो गया है, अतः क्या ऐसा करना तुम्हें उचित है ?

तुब्भाणं तुज्झाणं तुहाण तुम्हाणमह तुवाणं च ।
तुज्झाण तुहाणमिमं मत्त-वलायासु किं रमणं ॥३३॥

**शब्दार्थ**—हे सखि ! (तुब्भाणं, तुज्झाणं, तुहाण, तुम्हाणम्, तुवाणं, तुज्झाण, तुहाणम्) (ये सात रूप है) तुम्हारा (बहुवचन) हे सखि ! (मत्त-बलायासु) मत्त बगुलों के साथ में, (इमम्) यह, (रमणं) क्रीड़ा करने लग जाना; (किं) क्या (इस समय में) उचित है ?

तुमए तए तइ तुमे तुमाइ तुज्झम्मि तुम्मि तुब्भम्मि ।
तुम्हम्मि तुहम्मि तुवम्मि तुमम्मि भणाम जूहि-कए ॥३४॥

**शब्दार्थ**—(कहीं-कहीं पर प्राकृत में द्वितीया विभक्ति के स्थान में सप्तमी का भी प्रयोग देखा जाता है--यह इस गाथा में बतलाया है)

(तुमए, तए, तइ, तुमे, तुमाइ, तुज्झम्मि, तुम्मि, तुब्भम्मि, तुम्हम्मि, तुहम्मि, तुवम्मि, तुमम्मि) हे सखि ! तेरे में अर्थात् तुझे (जूहि-कए) जूही के पुष्पों को, (इकट्ठा करने के लिये) (भणाम) हम कहती हैं।

तुसु तुज्झेसु तुहेसु अ तुवेसु तुम्हेसु तुवसु तुब्भेसु ।
तुमसु तुमेसु अ तुहसु अ भिसिणि-दलाहरणमादि सिमो ॥३५॥

**शब्दार्थ**—(सप्तमी बहु-वचन के "तुम" के रूप इसमें हैं—तुसु, तुज्झेसु, तुहेसु, तुवेसु, तुम्हेसु, तुवसु, तुब्भेसु, तुमसु, तुमेसु, तुहसु, (१० रूप) तुम्हारे में (हे सखि !) (द्वितीया के स्थान पर सप्तमी का प्रयोग—अतः)

तुमको (भिसिणि-दल आहरणम्) कमलिनी के पत्तो को लाने को (की); (आदिसिमो) हम आज्ञा देती है।

तुब्भासु तुब्भसु तहा तुम्हसु तुम्हासु तह य तुज्झासु।
तुज्झसु अ आइसामो नव-जम्बु-फलोवहारम्मि ॥३६॥

**शब्दार्थ**—(तुब्भासु, तब्भसु, तुम्हसु, तुम्हासु, तुज्झासु, तुज्झसु,) तुम्हारे मे अर्थात् तमको, हे सखि! (नव-जम्बु-फल उवहारम्मि) (देवी के आगे) नये-नये = ताजे जामुन के फलो का उपहार (देना है। अतः उन्हे लाने के) निमित्त, (आइसामो) हम आज्ञा प्रदान करती हैं।

अम्मि म्मि अम्हि अहयं हमहं मालूर-पल्लवे लेमि।
अम्हम्हे अम्हो मो भे वयमवि लोद्ध-कुसुमाइं ॥३७॥

**शब्दार्थ**—(अम्मि, म्मि, अम्हि, अहय हम्, अह) (ये ६ रूप मै के) मैं; (मालूर-पल्लवे) बिल्व के कोमल पत्तो को, (लेमि) हे सखि! लेती हूँ; (अम्ह, म्हे, अम्हो, मो, भे; वयम्,) (ये ६ रूप "हम" के है) हम, (अवि) भी; हे सखि! (लोद्ध-कुसुमाइँ, लोध्र के फूलो को; (ग्रहण करती हैं—चुनती हैं।)

णे ण मि अम्मि अम्ह य मम्ह अहं मं ममं मिमं भणह।
अम्हे अम्हो णे अम्हामलय-फलेहि जइ कज्जं ॥३८॥

**शब्दार्थ**—(णे, ण, मि, अम्मि, अम्ह, मम्ह, अहं, म ममं, मिम) (ये १० रूप 'मुझको'—के है); हे सखि! मुझे, (य) और; (अम्हे, अम्हो, णे, अम्ह,) (ये ४ रूप हमको" के है); हमें; (जइ) यदि, (भणह) तुम कहती हो; (आमलय-फलेहि) आवलो के फलो से; (कज्जं) करना चाहिये। (अर्थात् क्या तुम्हारा काम हम करे?)

मे मि ममं ममए मइ ममाइ णे तह मए मयाइ तहा।
अम्हाहि अम्ह अम्हे णे अम्हेहि अ जवा गेज्झा ॥३९॥

**शब्दार्थ**—हे सखि! (मे, मि, मम, ममए, मइ ममाइ, णे, मए, मयाइ) (ये ९ रूप हैं 'मेरे से - मेरे द्वारा" के है) मुझसे—मेरे द्वारा, (तहा) तथा; (अम्हाहि, अम्ह, अम्हे, णं, अम्हेहि,) (ये ५ रूप "हमारे द्वारा" "हमसे" तृतीया अर्थ मे हैं) हमारे द्वारा—हमसे, (जवा) जौ; (गेज्झा) ग्रहण किया जाना चाहिये।

मज्झत्तो वि महत्तो तहा मइत्तो तहा ममत्तो वि ।
अम्हत्तो तह गिण्हेह कुडय-तरुणो पसूणाइं ॥४०॥

**शब्दार्थ**—(मज्झत्तो, महत्तो, मइत्तो, ममत्तो, अम्हत्तो) (ये ५ रूप) मुझ से—मेरे पास से; हे सखि ! (कुडय-तरुणो) कुटज वृक्ष के; (पसूणाइ) पुष्पों को; (गिण्हेह) तुम ग्रहण करो; (तहा) तथा; (तह) तथा; (वि) भी ।

मे मइ मम मह मज्झं महं तहा मज्झ अम्ह अम्हं च ।
णे णो अम्हे अम्हो चम्पय-कलिआउ गिज्झाओ ॥४१॥

**शब्दार्थ**—(मे, मइ, मम, मह, मज्झं, महं, मज्झ, अम्ह, अम्हं) (नौ रूप) मेरा, मेरे (पास से); (च) और; (तहा) तथा, (मज्झ, अम्ह, अम्हं, णे, णो अम्हे अम्हो.) (ये ७ रूप) हमारा; हमारे (पास से) (चम्पय-कलिआउ) चम्पक पुष्प की कलिकाओं को; अथवा (ये कलिकाएँ)अविकसित और विकास-मान.-पुष्पो को, (अथवा ये पुष्प) (गिज्झाओ) (हे सखि !) ग्रहण करने योग्य है अत: तुम ग्रहण करो ।

अम्हाणं मज्झाण ममाण ममाणं महाण य महाणं ।
अम्हाण य मज्झाणं हत्थे धव-पसव-दामाइं ॥४२॥

**शब्दार्थ**—(हे सखि !) (अम्हाण, मज्झाण, ममाण, ममाणं, महाण, महाण, अम्हाण, मज्झाणं) (ये आठ रूप "हमारा-हमारे" बहु वचन अर्थ मे हैं) हमारे, (हत्थे) हाथ में; (धव-पसव- दामाइ) धव-वृक्ष के पुष्प की मालाएँ है ।

मि मइ ममाइ मए वि अ अम्हम्मि ममम्मि मे तह महम्मि ।
मज्झम्मि अ थल-नलिणी-कुसुमाहरणे निउत्तव्वं ॥४३॥

**शब्दार्थ**—(मि, मइ, ममाइ, मए, अम्हम्मि, ममम्मि; मे, महम्मि, मज्झम्मि) (ये नौ रूप मुझ में—मुझ पर, सप्तमी विभक्ति एक वचन अर्थ में हैं) मुझ पर; हे सखि ! (थल-नलिणी-कुसुम-आहरणे) स्थल कमलिनी के फूलों को लाने की, (निउत्तव) नियुक्ति की जानी चाहिये । (अर्थात् इन फूलो को लाने के लिये मुझे आज्ञा प्रदान की जानी चाहिए ।)

अम्हेसु ममेसु तहा महेसु मज्झेसु तह य अम्हासु ।
आदिसह सल्लई-तरु-नव-कुसुमाहरण-कम्मम्मि ॥४४॥

**शब्दार्थ**—(अम्हेसु, ममेसु, महेसु, मज्झेसु, अम्हासु) (इन पाँच रूपों का अर्थ है—हमारे पर-हमारे मे); हमारे पर (सल्लई-तरु) सल्लकी-वृक्ष के; (नव-कुसुम) नये-नये फूलों को; (आहरण-कम्मम्मि) ग्रहण करने के काम में; (आदिसह) हे सखि ! तुम आज्ञा प्रदान करें। (हमें फूल लाने की आज्ञा प्रदान करे)

इअ पउमावइ-देवीइ पूअणे मालिणीउ जम्पन्ति।
तीहिं दोहिं दुगुणिअ-वेहिं च सहीहि अन्नोन्नं ॥४५॥

**शब्दार्थ**—(इअ) इस प्रकार, (पउमावइ-देवीइ) पद्मावती देवी के; (पूअणे) पूजन के कार्य में, (तीहिं) तीन-तीन की जोडी द्वारा; (दोहिं) दो-दो की जोड़ी द्वारा; (दुगुणिअ-वेहि) द्विगुणित—याने चार-चार की जोड़ी द्वारा; इस प्रकार समूह रूप से, (सहीहि) सखियों द्वारा, (मालिणीउ) (हाथों में) मालाएँ वाली होती हुई, (अन्नोन्नं) परस्पर में; (जम्पन्ति) बोलती हैं।

**शरद्वर्णनम् ४६-६५**

सरय-समयम्मि एत्थ य मिहुण-सरूवेण पिच्छ विलसन्ति।
देव-दुवे सारसया दुण्णि सुगा वेण्णि हंसा य ॥४६॥

**शब्दार्थ**—(एत्थ) यहाँ पर अर्थात् वर्षा-ऋतु के समाप्त हो जाने पर; (सरय-समयम्मि) शरद-ऋतु के उपस्थित होने पर, (दुवे) दो, (सारसया) सारस (नर-और मादा); (दुण्णि) दो; (सुगा) तोते, (वेण्णि) दो; (हंसा) हंस; (य) और; (मिहुण-सरूवेण) मिथुन-जोड़े के रूप से (हे देव !) हे महाराज ! (पिच्छ) देखो; (विलसन्ति) क्रीड़ा कर रहे हैं।

**टिप्पण**—तथा अत्रैव च "युष्मदस्त तु तुव तुह तुमं सिना" (९०) इत्यादि 'सुपि" (११७) इत्यन्त सूत्राणां तं-तु-तुव इत्यादि—अम्ह मम-मह-मज्झ-इत्यन्तानि उदाहरणाणि युष्मदस्मदोः सर्व विभक्ति सम्बन्धे स्पष्टान्येव। नवरं सुपि एत्व विकल्पम् इच्छन्त्येके। तन्मते तुवसु। ।तुमसु इत्यादि। तुब्भस्य आत्वमपि इच्छत्यन्यः। तेन तुब्भासु। तुम्हासु। तुज्झासु। अम्हस्य आत्वमपीच्छत्यन्यः। तेन अम्हासु इति विशेषः।

तीहिं। "त्रेस्ती तृतीयादौ" (११३)
दोहिं। वेहिं "द्वे र्दो वे" (११९)

दो दो कुररा वे वे अ खञ्जणा नह-यले उअ भमन्ते।
पण्णाइं तिवण्णस्स य उअ तिण्णि वि जुण्ण-नीलाइं ॥४७॥

**शब्दार्थ**—(दो दो कुररा) दो दो की जोड़ी से कुरर नामक पक्षी; (अ) और; (वे वे) दो दो की जोड़ी से; (खञ्जना) खंजन नामक पक्षी; (नह-यले) आकाश-तल पर, (भमन्ते) घूम रहे हैं (अतः इन्हें हे राजन् ! तुम) (उअ) देखो; (य) और; (तिवण्णस्स) पलास वृक्ष के; (तिण्णि वि) तीनों ही; (पण्णाइँ) पत्ते; (जुण्ण-नीलाइं) पुराने-जीर्ण होने पर भी नीले-हरे-हो गये हैं। इस (विशेषता को देखो)

**टिप्पण**—दुवे। दोण्णि। वेण्णि। दो। दो। वे। वे। "दुवे दोण्णि वेण्णि च जस् शसा" (१२०)॥ दुण्णि। विण्णि इति पाठे तु "ह्रस्वः संयोगे" (१.८४) इति ह्रस्व ॥

तिण्णि। "त्रेस्तिण्णिः" (१२१)

उअ चउरो चत्तारो चत्तारि इमे नहम्मि उड्डन्ते।
दंसेइ सारसे इअ मुद्धा दुण्हं वयंसीणं ॥४८॥

**शब्दार्थ**—(दुण्हं वयंसीण) दो दो की जोड़ी वाले; (मुद्धा) मुग्ध-मनोहर, (सारसे) सारसों को, (इअ) इस प्रकार, (दसेइ) बतलाता है (कोई भृत्य राजा को कहता है); (उअ) देखो; (इमे चउरो-चत्तारो-चत्तारि) ये चार (सारस-पक्षी), (नहम्मि) आकाश में; (उड्डन्ते) उड़ रहे हैं—।

**टिप्पण**—चउरो। चत्तारो। चत्तारि। "चतुरश्चत्तारो चउरो चत्तारि" (१२२)

दुण्ह नयणाण सुहदा उअ माला पङ्कयाण तासु च।
कमल-सही हंस-वहू अली-वहू पिच्छ रममाणा ॥४९॥

**शब्दार्थ**—(दुण्ह नयणाण) दोनों आँखो के लिये; (सुहदा) सुख देने वाले; (मनोहर दिखलाई पड़ने वाली), (पंकयाण) कमलो की; (माला) मालाओं को; (उअ) देखो। (तासु) उन (मालाओं), पर (कमल-सही) कमल की सखी (हंस-वहू) हंसिनी और, (अली-वहू) भँवरे की वधू-भँवरी (को) (रममाणा) क्रीड़ा करती हुई को, (पिच्छ) देखो।

**टिप्पण**—दोण्ह। दोण्ह। "संख्याया आमो ण्ह ण्हं" (१२३)

अक्खलिअ-परिमल-रिद्धि पहिआ दट्ठूण छत्त-वण्ण-तरुं।
वञ्चन्ति मोह-निद्दं मरण-सहिं भरिअ अप्प-वहुँ ॥५०॥

**शब्दार्थ**—(अखलिअ-परिमल-रिद्धि) जिसमें किसी भी प्रकार की न्यूनता नहीं है ऐसी परिपूर्ण सुगन्ध की समृद्धि से युक्त, (ऐसे) (छत्त वण्ण तरु) सप्तपर्ण नामक वृक्ष को, (दट्ठूण) देख करके, (पहिआ) पथिक, (अप्प-वहूँ) अपनी पत्नि को, (भरिअ) स्मरण करके, (मरण-सहिं) मृत्यु की जो सखि है (अर्थात् मृत्यु-के समान जिसमे बेहोशी रहती है, अतः मृत्यु-सखि) (मोह-निद्द) मोह-निद्रा को मूर्च्छा-अवस्था को, (वच्चन्ति) प्राप्त होते है (मूर्च्छित होते है)।

हाहाण समा हेट्ठे तरूण सालीण गोविआ गन्ती।
खे जन्तीण मिलिआण सुर-वहूणं गइं खलइ ॥५१॥

**शब्दार्थ** (तरुणहेट्ठं) वृक्षो के नीचे, (हाहाण समा) देव-संगीत के समान, (गन्ती) गायन करती हुई, (सालीण गोविआ) सौन्दर्य की प्रतिमूर्ति ऐसी गोपिका ग्वालिन; (खे) आकाश में; (जन्तीणं) जाती हुई, (मिलिआण) (क्रीड़ा करने के लिये मिली हुई ऐसी (सुर-वहूणं) देवताओ की देवियो की; (गइ) गति को, (खलइ) स्खलित कर देती है। (अर्थात वृक्षो के नीचे सौन्दर्य-शील गोपिका के सुरोपम सगीत को सुन करके गगनचारी देवियाँ भी श्रव-णार्थ चलती चलती रुक जाती हैं। ठहर जाती है।

अलि-मालाहि सणाहेहिँ बाण-कुसुमेहि परिमल-गुरुहिं।
दिट्ठेहि वि मुच्छिज्जइ दुहिणीहिं पन्थिअ-वहूहिं ॥५२॥

**शब्दार्थ** - (अलि मालाहि) भँवरो की पक्तियो से, (सणाहेहि) जो युक्त है, (परिमल-गुरुहि) जो सुगन्ध की महानता से युक्त है, (दिट्ठेहि) ऐसे दृष्टि मे आये हुए, (बाण कुसुमेहि) बाण रूप पुष्पो मे, (दुहिणीहि) दु.खी हुई, (पन्थिअ-वहूहि) पथिको की वधुओ द्वारा, (मुच्छिज्जइ) मूर्च्छत हुआ जाता है।

सारस-मालाहिन्तो सुग-मालाओ अ चडय-मालाउ।
अखलिअ-गईउ धेणूउ रक्खिमो सालि-वणमेअं ॥५३॥

**शब्दार्थ**—(सारस-मालाहिन्तो) सारसों के समूह से, (सुग-मालाओ) तोतों के समूह से, (अ) और, (चडय मालाउ) गौरैयो के समूह से; (अखलिअ-गईउ) अस्खलित गति वाली (अर्थात् बार-बार आने वाली, (धेणूउ) गायो से, (एअ) इस, (सालि-वण) चावल के वन को, (धान्य के खेत को) (रक्खिमो) हम बचाते हैं; (हम इनकी रक्षा करते है)

कुंकुम-कलिआ सुन्तो सुरहिस्स मिउस्स एन्त-पवणस्स ।
पसरो गिरिम्मि इह तह तरुम्मि सव्वं पि सुरहेइ ॥५४॥

**शब्दार्थ**—(कु कुम-कलिआ-सुन्तो) केशर की कलिकाओं से, (सुरहिस्स) जो सुगन्ध युक्त है; (मिउस्स) जो कोमल है; ऐसे (एन्त) बहते हुए; (पवणस्स) पवन का; (पसरो) फैलाव-प्रसार, (इह) इस शरद् ऋतु मे; (गिरिम्मि) पर्वत पर, (तह) तथा; (तरुम्मि) वृक्ष पर; (सव्वं पि) सभी को; (सुरहेइ) सुगन्धित बना रहा है ।

फुल्ला मुणी इह तरू न मुणीउ तरूउ दूरगा भमरा।
वाइ मुणीण तरूणं नव-परिमल-मासलो वाऊ ॥५५॥

**शब्दार्थ**—(इह) इस शरद् ऋतु में; (मुणी तरू) अगस्ति वृक्ष; (फुल्ला) फूल वाले हो गये है; (मुणीउ तरूउ) अगस्ति वृक्ष मे; (भमरा) भ्रमर; (न दूरगा) दूर नही जाते है। (मुणीण तरूण) अगस्ति वृक्षो के, (नव-परिमल-मासलो) नूतन सुगन्ध से समृद्ध, (वाऊ) हवा; (वाइ) बहती है-चलती है ।

उद्दीविय-दढ-मयरद्धयग्गिणो वाउणो फुरन्ति रया ।
मुणि-मालत्तो पङ्कय-मालाहिन्तो पराय-कणा ॥५६॥

**शब्दार्थ**—(उद्दीविय-दढ मयरद्धयग्गिणो) वृद्धि को प्राप्त हुई बलवती काम-अग्नि वाले; ऐसे (वाउणो) वायु से; (मुणि-मालत्तो) अगस्ति पुष्पो के समूह से; (और) पकय-माला-हन्तो) कमल पुष्पो के समूह से; पराय-कणा) पराग-कण पुष्प मे रेणु; (रया) वेग के साथ; (अति-शीघ्रता पूर्वक) (फुरन्ति) इधर-उधर उड़ रहे है ।

**टिप्पण**—अग्गिणो । वाउणो । "न दीर्घो णो" (१२५) मालत्तो । मालाहिन्तो । "ङसेर्लुक्" (१२६) भ्यसश्च हिः" (१२७) न ॥

चारुम्मि एत्थ पल्लल-वारिम्मि विसट्ट-पोम्म-मालाओ ।
दोहिं चिअ नयणेहिं होइ न तित्ती नियन्ताणं ॥५७॥

**शब्दार्थ**—(एत्थ) इस शरद ऋतु में; (चारुम्मि) सुन्दर-रमणीय; (पल्लल-वारिम्मि) थोड़े जल वाले छोटे तालाब मे; (विसट्ट) विकसित हुए; (पोम्म-मालाओ) कमल के फूलों के समूह से; (चिअ) निश्चय ही; (नियन्ताणं) देखने वालो की; (तित्ती) तृप्ति; (दोहिं नयणेहिं) दो आँखों से;

(न होइ) नहीं होती है। (अर्थात् कमल के फूलों को बार-बार देखने पर भी तृप्ति नहीं होती है)

**टिप्पण**—चारुम्मि। वारिम्मि। "ङे ङें" (१२८) न। मालत्तो। मालाहिन्तो। मालाओ। "एत्" (१२९) न॥ दोहिं। नयणेहिं। द्विवचनस्य बहुवचनम् (१३०)

मच्च-गणस्स सुराण य अलं खु कामो हवेइ इह सरए।
कामाय पवट्टन्ते बाणं कामस्स य घडन्ते ॥५८॥

**शब्दार्थ**—(कामाय) कामदेव के लिए; (बाणं) (फूल रूप) बाण को, (पवट्टन्ते) उत्पन्न करने वाले; (य) और; (कामस्स) कामदेव के लिये; (बाण) (पुष्प-रूप) बाण को, (घडन्ते) रचना करने वाले; ऐसे; (इह सरए) इस शरद ऋतु मे, (मच्च-गणस्स) मनुष्य-समूह के लिये; (य) और; (सुराण) देवताओ के लिये; (कामो) कामदेव, (खु) निश्चय ही, (अलं) समर्थ, (हवेइ) हो जाता है।

**टिप्पण**—मच्च-गणस्स। सुराण। "चतुर्थ्याः षष्ठी" (१३१)। कामाय। कामस्स। "तादर्थ्यङे र्वा" (१३२)

मयणम्मि विरहिणीणं वहाइ रुट्ठम्मि को व न वहाय।
जं ताण वहस्स हुअं फुल्लं सेहालिअ-वणं पि ॥५९॥

**शब्दार्थ**—(विरहिणीण) वियोगिनी-के; (वहाइ) वध करने के लिये; (सन्ताप उत्पन्न करने के लिए;) (मयणम्मि रुट्ठम्मि) कामदेव के रुष्ट होने पर, (कामाग्नि जागृत होने पर;) (को व) (इस विश्व में ऐसा कौन है) जो कि; (वहाय) उनका वध करने के लिए (सन्ताप उत्पन्न करने के लिए;) (न) नही (तैयार हो जाता हो अर्थात् सभी तैयार हो जाता है); (जं) क्योंकि (देखो); (ताण) उन (स्त्रियो) के; (वहस्स) वध करने के लिए (सन्ताप पहुंचाने के लिए), (फुल्ल) खिले हुए फूलो वाला; (सेहालिअ वणं पि) शेफालिका नामक लताओ का (यह) वन भी; (हुअं) (तैयार) हो गया है।

**टिप्पण**—वहाइ। वहाय। वहस्स। "वधाड्डाइश्च वा" (१३३) इति तादर्थ्यङे डित् आइः षष्ठी च वा।।

वन्दे भण्डीरस्स वि चिरस्स फुल्लम्मि जम्मि अलि-ओली।
नील-मणीण न इअरा वण-सिरि-पिट्ठीइ कवरि व्व ॥६०॥

**शब्दार्थ**—(भंडीररस्स वि) भंडीर नामक वृक्ष विशेष को; (चिरस्स) (उसमें अनेक गुण होने से) चिरकाल तक; (वन्दे) मैं बन्दना करता हूँ। (उसकी प्रशंसा करता हूँ); (जम्मि फुल्लम्मि) जिसके पुष्प-संयुक्त होने पर; (नील-मणीण) नील मणियों की; (इयरा) भिन्नता; (न) नहीं; (अर्थात् उसके पुष्प नील-मणियों के समान ही प्रतीत होते हैं) (और जिसके पुष्पों पर बैठी हुई; (अलि-ओली) भ्रमरों की पंक्ति; (वन-सिरि-पिट्ठीइ) वन-शोभा रूप लक्ष्मी के पीठ पर; (कबरि व्व) वेणि के समान; (प्रतीत हो रही है अथवा होती है)

**टिप्पण**—भण्डीरस्स। चिरस्स। मणीण। पिट्ठीइ। "क्वचिद् द्वितीयादेः" (१३४) इति द्वितीयादीनां विभक्तीनां स्थाने षष्ठी"।

एइ न पहिओ पासे इमस्स असणेसु भूसिअ-वणस्स।
गन्ध-विसेहि व तेहिं बीहन्तो नस्सए दूरे ॥६१॥

**शब्दार्थ**—(असणेसु) बीजक नामक वृक्ष से; (द्वितीया, तृतीया के स्थान में सप्तमी विभक्ति का प्रयोग); (इमस्स) इस; (भूसिअ-वणस्स) सुशोभित-वन के; (पासे) पास में, (पहिओ) पथिक, (न) नहीं; (एइ) आता है। (गन्ध-विसेहि) गन्ध-रूप विषवाले; (तेहिं) उन (वृक्षों) से; (बीहन्तो) डरता हुआ; (दूरे) दूर से ही; (नस्सए) नष्ट हो जाता है। (भयभीत होता हुआ संज्ञा-शून्य हो जाता है)

**टिप्पण**—पासे। असणेसु। "द्वितीयातृतीययोः सप्तमी" (१३५)

विसेहि। तेहिं। दूरे। "पञ्चम्यास्तृतीया च (१३६) इति तृतीया सप्तम्यौ"॥

इह कणय-पङ्कएहिं रत्तिं विज्जुज्जलेहि चउ-वीसं।
अच्चिज्जन्ति जिणा तेण तेण कालेण सयराहं ॥६२॥

**शब्दार्थ**—(इह) इस शरद ऋतु में; (विज्ज-उज्जलेहि) बिजली के समान उज्ज्वल; (कणय-पंकएहिं) स्वर्णवर्णीय पंकजो से; (रत्तिं) रात्रि-काल मे ही; (तेण तेण कालेण) रात्रि के आदि काल में और रात्रि के अन्त-काल में (अर्थात् केवल रात्रि काल में ही); (चउ-वीस जिणा) चौबीसों तीर्थंकरों को; (सयराहं) एक साथ ही; (अच्चिज्जन्ति) पूजे जाते हैं।

**टिप्पण**—रत्तिं। "सप्तम्या द्वितीया" (१३७)॥

प्रथमार्थेपि द्वितीया दृश्यते। चउ-वीसं॥ आर्षे तृतीया पि दृश्यते। तेण तेण कालेण।

उज्जाण मण्डवेसुं गरुआ अइ लोहिआइ बिम्ब-फलं ।
गुरुआइ लोहिआ अइ एव्वारु-फलं च कच्छेसु ॥६३॥

**शब्दार्थ**—(उज्जाण-मंडवेसु) उद्यान-मडपों में; (बिम्ब-फल) बिम्ब नामक फल विशेष; (गरुआ अइ) (अपने आप ही) महान् नहीं होने पर भी महान् हो जाता है; (लोहिआइ) अ-रक्त वर्णीय होता हुआ भी रक्तवर्णीय हो जाता है, (च) और, (कच्छेसु) जल बहुल देशो मे; (एव्वारु फल) ककड़ी का फल, (गुरुआइ) अपने आप ही बडा हो जाता है; (लोहिआ अइ) लाल नही होता हुआ भी; लाल रग का हो जाता है।

**टिप्पण**—गरुआअइ । लोहि आइ । गरु आइ । लोहिआअइ । "क्यङोर्य-लुक्" (१३८)

वेवइ हसइ अ कुमुअं पवेवए विहसए अ कासं च ।
देव जलम्मि थलम्मि अ इह पेक्खसि पेक्खसे इत्थ ॥६४॥

**शब्दार्थ**—(देव) हे राजन् ! (जलम्मि) जल में, (इह) यहाँ पर, (कुमुअ) कुमुद, (वेवइ) (वायु मे) हिलता है, (अ) और, (हसइ) (चन्द्रमा की चान्दनी मे) खिलता है (उसको); (पेक्खसि) आप देखते है, (च) और, (इत्थ थलम्मि) इस भूमि पर; (कास) कास फूल, (पवेवए) (वायु मे) हिल रहा है, (विहसए) खिल रहा है, (उसको) (पेक्खसे) आप देख रहे हैं (अथवा) देखते है।

**टिप्पण** -वेवइ हसइ । पवेवए विहसए । "त्यादिनाम्०" इति (१३९) इचे चौ ॥

न हससि न वोवहससे जइ ता भासेमि किं पि वन्नेमि ।
अमुणा सरेण हंसाण माणस तं पि विम्हरिअं ॥६५॥

**शब्दार्थ**—(हे राजन् !) (जइ) यदि, (न हससि) तुम नही हँसते हो; (वा) अथवा; (न उवहससे) उपहास विनोद नही करते हो, (ता) तो, (भासेमि) मैं बोलता हूँ; (किं पि) कुछ भी, (वन्नेमि) मै वर्णन करता हूं। (अमुणा सरेण) इस तालाब से; (तं) वह; (हसाण माणस पि) हसो का मान-सरोवर भी, (विम्हरिअ) भुला दिया गया है, (अर्थात् यह सरोवर इतना मोहक और आकर्षक है कि इसके आगे-मान-सरोवर भी तुच्छ प्रतीत हो रहा है)।

**टिप्पण**—पेक्खसि पेक्खसे। हससि उवहससे। "द्वितीयस्य सि से" (१४०)

**हेमन्त-शिशिरवर्णनम् ६६-८६—**

बहु वण्णिउं न सक्कं जाइं दीसन्ति सरय-चिन्धाइं ।
चरि आइं विप्फुरन्ते इदो अ हेमन्त-सिसिराण ।।६६।।

**शब्दार्थ**—(जाइं सरय-चिन्धाइं) जो शरद् ऋतु के चिह्न, (दीसन्ति) दिखलाई पड़ते है, (उनका), (बहु-वण्णिउं) बहुत प्रकार से वर्णन करने का सामर्थ्य मेरे में नहीं है, (अ) और, (इदो) इधर; (उद्यान के अन्य भागों में); (हेमन्त-सिसिराण) हेमन्त और शिशिर ऋतु के, (चरिआइ) चरित अर्थात् लक्षण, (विप्फुरन्ते) प्रकट होने लगे है ।

**टिप्पण**—भासेमि । वन्नेमि । "तृतीयस्य मिः" (१४१) बाहुलकात् मिव. स्थानीयस्य मे: इकारलोपश्च । सक्कं ।

विच्छुहिरे कलयण्ठा सूसइरे ताण तारिसो कण्ठो ।
दीसन्ते कुन्द-लयाउ विप्फुरन्तीह रोलम्बा ।।६७।।

**शब्दार्थ** -(कलयण्ठा) (मधुरवाणी बोलने से) मीठे कण्ठवाली कोयल, (विच्छुहिरे) (बोलने के प्रति) मन्दसो प्रतीत होने लगी है, (ताण) उन कोयलो का, (तारिसो) वैसा, (मधुर और मोहक) (कठो) कण्ठ, (सूस-इरे) सूखने लगा है । (कुन्द लया उ) कुन्द लताएँ भी, (दीसन्ते) दिखलाई पड़ रही है; (इह) इन कुन्द-लताओं पर, (रोलम्बा) भ्रमर, (विप्फुरन्ति) डोल रहे है, परिभ्रमण कर रहे हैं ।

**टिप्पण**—दीसन्ति । विप्फुरन्ते । विच्छुहिरे । दीसन्ते । विप्फुरन्ति । "बहुष्वाद्यस्य न्ति न्ते इरे" (१४२) क्वचिद् इरे एकत्वेपि । सूसइरे ।।

इह पेक्खह पेक्खित्था इहेह पासह इहावि पासित्था ।
लवली-लयाउ फलिणी-लयाउ फद्धा इवा फुल्ला ।।६८।।

**शब्दार्थ**—(इह पेक्खह) यहाँ देखो; (इह पेक्खित्था) यहाँ देखो, (इह) यहाँ; (पर भी) (पासित्था) देखो; (लवली-लया) लवली लता, (उ) पादपूरणार्थ, (फलिणी लया) प्रियंगु लता, (उ) पादपूरणार्थ, (फद्धा इव) (परस्पर में); (विकसित होने की दृष्टि से) अपनी अपनी विशेषता बतलाने के लिए मानो प्रतिस्पर्धा कर रही हों इस तरह से; (आफुल्ला) (दोनों ही लताएँ परिपूर्ण रूप से पुष्पों से उत्फुल्ल हो गई है; पुष्प समन्वित हो गई हैं ।

**टिप्पण**—पेक्खह । पेक्खित्था । पासह । पासेत्था । मध्यमस्येत्थाह चौ" (१४३)

नोवदिसामो नो संदिसामु न य आदिसाम किं तु इमा ।
गायन्ति इह सयं चिअ मिलिआ कसणेच्छु-गोवीओ ॥६९॥

**शब्दार्थ**—(न उवदिसामो) न हम उपदेश देते हैं; (नो संदिसामु) न हम सन्देश देते हैं; (य) और; (न आदिसाम) न हम आदेश देते हैं; (किन्तु) परन्तु, (इमा) ये; (कसण इच्छु-गोवीओ) काले-सांठे-इक्षु की रक्षा करने वाली; ये स्त्रियाँ ही; (चिअ) निश्चय ही, (सयं) स्वयमेव अपने आप ही; (मिलिआ) सम्मिलित होकर; (इह) यहाँ पर; (गायन्ति) गायन करती हैं ।

तुवरामो चणएसुं नव-सरिसव-कन्दलीसु तुवराम ।
तुवरामु मूलएसुं इअ कच्छ-त्थीण सरम्भो ॥७०॥

**शब्दार्थ**—(चणएसुं) चना नामक धान्य (के लिये); (तुवरामो) हम उद्यम करे; (नव सरिसव-कन्दलीसु) नये सरसों की कुंपल (के लिए); (तुवराम) हम उद्यम करे, (मूलएसुं) मूली-शाक-विशेष (के लिये); (तुवरामु) हम उद्यम करें। (इअ) इस प्रकार, (कच्छ-त्थीण) खेत की रखवाली करने वाली स्त्रियो का, (सरम्भो) वार्तालाप था।

**टिप्पण**—उवदिसामो। संदिसामु। आदिसाम। तुवरामो। तुवराम। तुवरामु। "तृतीयस्य मोमुमाः" (१४४)

हसए अ तुवरए तह लेइ अ पुंनामयाइँ एस जणो ।
कीस न हससि न तुवरसि न लेसि विलया इअ लवन्ति ॥७१॥

**शब्दार्थ**—हे सखि ! (एस जणो) रखवाली करने वाली स्त्रियो का समूह, (हँसए) हँसता है, (अ) (पुंनामयाइं-) पुन्नाग-सुरपर्णिका पुष्पों को; (लेइ) लेता है; (कीस) किस कारण से ? (न हससि) तू नहीं हँसती है; (न तुवरसि) तू उद्यम नही करती है ? (न लेसि) (पुष्पो को तू नहीं लेती है।) (इअ) इस प्रकार; (विलया) वनिताएँ, (लवन्ति) बातचीत करती है।

**टिप्पण**—हसए। तुवरए। ए स्थाने तु से पाठे। हससे। तुवरसे। "अत एवैच्से" (१४५) अत इति किम्। लेइ। लेसि। एवकारः अत् एच् से एवेति विपरीताव धारणनिषेधार्थ.। तेन अकारान्तादपि इच् सिश्च सिद्धौ। हससि। तुवरसि। इच उदाहरणं तु हसइ इति ज्ञेयम् ॥

तं सि तहा एस म्हि अ अम्हत्थि जुव म्ह सम-गुण म्हो अ ।
गायामो इअ नव-लट्ट-गोविआणं इदो वत्ता ॥७२॥

**शब्दार्थ**—(तं सि) तू है; (तहा) तथा; (एस म्हि) यह मैं हूं; (अ) और; (अम्हत्थि) हम हैं; (जुव म्ह) (स्नेह से एक स्थान पर हम दोनों मिले हैं); (अ) और; (सम-गुण म्हो) हम समान गुणवाले हैं (अर्थात् अपन में माधुर्य, रूप तरुणता आदि समान हैं); (इअ) इस प्रकार; (इस हेमन्त-शिशिर काल में); (गायामो) हम गायन करती है—अथवा गायन करें। (इदो) ऐसी; (नव-लट्ट-गोविआणं) नूतन-धान्य-फल-आदि की रक्षा करने वाली महिलाओं की; (वत्ता) वार्ता बातचीत थी।

**टिप्पण**—तं सि। "सिनाऽस्नेः सिः" (१४६)

अत्थि अहं तुममेसा दरिसेइ न का वि कुसुम-विन्नाणं।
इअ भणिअ का वि कारइ मुचुकुन्दाओ कुसुम-हरणं ॥७३॥

**शब्दार्थ**—(अहं) मैं, (अत्थि) हूँ; (एसा तुमम्) यह तुम हो; (तो फिर) (का वि) कोई भी; (कुसुम-विन्नाण) पुष्प-विज्ञान (अर्थात् पुष्प-ग्रन्थन कला); (न दरिसेइ) नहीं बतलाती हो। (इअ) इस प्रकार; (भणिअ) कह करके; (का वि) कोई सखी; (मुचकुन्दाओ) मुचकुन्द वृक्ष से, (कुसुम-हरणं) पुष्प चयन; (कारइ) करवाती है।

**टिप्पण**—म्हि। म्ह। म्हो। "मिमोर्मैर्म्हिम्होम्हा वा" (१४७) पक्षे अम्हत्थि। अत्थि। "अत्थिस्त्यादिना" (१४८) इति च अस्तेस्त्यादिभिः सह अत्थि।

अलि-गुञ्जिअं करावइ मालिणि-हल्लप्फलं करावेइ।
जाणावइ रइ-लीलं मयणं भावेइ पारत्ती ॥७४॥

**शब्दार्थ**—(पारत्ती) पारत्ती-पुष्प; (अलि-गुञ्जिअं) भवरों का गुञ्जा-रव; (करावइ) करता है। (मालिणि-हल्लप्फलं) मालिनी को उतावल (करा-वेइ) कराता है, (रइलील) रति-लीला को; (जाणावइ) बतलाता है; (मयणं) कामदेव को; (भावेइ) (कामियों के हृदय में) प्रवृत्त कराता है। ऐसा यह पारत्ती का पुष्प है।

**टिप्पण**—दरिसेइ। कारइ। करावइ। करावेइ। "णेरदेदावावे" (१४९) इति णेः अत् एत् आव आवे। बाहुलकात् क्वचित् एत् न। जाणावइ। क्वचित् आवे न। भावेइ।

तोसविअ-तरुण-गोवं तोसिअ-हरिणं इदो अ-जव-गोवी।
खे भामइ गीअ-झुणिं पउत्थ-सत्थं भमाडेइ ॥७५॥

**शब्दार्थ**—(तोसविअ-तरुण-गोवं) जिसने नवयुवक-खेतरक्षक को सन्तुष्ट किया है; ऐसी; (तोसिअ-हरिण) जिसने (अपनी मधुरता द्वारा) हरिण को सन्तुष्ट किया है; ऐसी, (गीअ-झुणिं) गीत ध्वनि को; (जव-गोवी) जौ की रक्षा करने वाली-महिला, (इदो) इस प्रदेश में; (खे) आकाश में; (भामइ) (गीत-ध्वनि को—उच्च-स्वर से गाने के कारण सारे प्रदेश मे और आकाश में) घुमाती है। (पउत्थ-सत्थं) प्रवासियों के समूह को; (भमाडेइ) (यह गीत अपनी सरसता और मधुरता से) घुमाता है, (काम-भावना उत्पन्न करके मूर्च्छित करता है)

**टिप्पण**—तोसविअ। तोसिअ। "गुर्वादेरविर्वा" ॥ (१५०) भमाडेइ। भ्रमेराडो वा (१५१) पक्षे भामइ ॥

कारिअ-अलि-कुल-रोला मरुवय-माला कराविअच्छि-छणा।
उअ कारीअइ जीए जयं करावीअइ अणङ्गो ॥७६॥

**शब्दार्थ**—जिससे; (जय) विजय; (कारीअइ) कराई जाती है, (जिसके प्रताप से जय प्राप्त होती है—ऐसी;) (जीए अणंगो) जिससे काम-भावना, (करावीअइ) कराई जाती है; (अर्थात् जिससे काम-भावना जागृत होती है ऐसी;) (करावि-अच्छि-छणा) जिसने आँखों में आनन्द उत्पन्न किया है ऐसी, (कारिअ अलि-कुल रोला) (जिसने गन्ध के कारण से) भँवरों के समूह में कोलाहल (भ्रमण पूर्वक गुंजारव) उत्पन्न कर दिया है; ऐसी; (मरु-वय-माला) मरुवा के पुष्पों की मालाओं को; (उअ) देखो।

कुन्देहि कराविज्जइ तह कारिज्जइ नवेहि लवलेहि।
जं ताण परिमल-वहो गन्धवहो मारइ पउत्थे ॥७७॥

**शब्दार्थ**—(ताण) उन (कुन्द और लवलपुष्पों) की; (परिमल-वहो) पराग को धारण करने वाला; (गन्ध-वहो) (उन पुष्पों की) गन्ध को धारण करने वाला, वायु विशेष, (पउत्थे) प्रवासियो को; (मारइ) घायल कर देता है, (जं) (ऐसा जो घायल रूप कार्य किया जाता है); वह; (कुन्देहि) कुन्द के पुष्पों से; (कराविज्जइ) कराया जाता है; (तह) तथा; (नवेहि लवलेहि) नूतन लवली पुष्पों से; (कारिज्जइ) कराया जाता है।

**टिप्पण**—कारिअ। कराविअ। कारीअइ। करावीअइ। (कराविज्जइ) कारिज्जइ। "लुगावी क्त भावकर्मसु" (१५२)

कारेइ कं न हरिसं कारावेइ अ न कं रउच्छाहं ।

हासाविअ-जुव-गोवा जुव-गोवी कारिआणङ्गा ॥७८॥

**शब्दार्थ**—(हासाविअ-जुव-गोवा) जिसने नव युवक खेतरक्षक को हंसाया है; ऐसी, (कारिअ अणंगा) जिसने (दर्शक के हृदय में) काम-भावना उत्पन्न कर दी है; ऐसी; जुव-गोवी) नवयुवती-खेत-रक्षिका, (कं) किसको; (हरिस) हर्ष न; (कारेइ) नही कराती है, (ऐसी युवती को देख करके कौन प्रसन्न न हो) (अ) और, (क) किसको; (रउच्छाहं) रति-उत्साह; (न) नहीं; (कारावेइ) करवाती है । (अर्थात् ऐसी युवती को देख करके प्रत्येक पुरुष काम-विह्वल हो जाया करता है)

**टिप्पण**--कारिज्जइ । मारइ । कारेइ । कारिआ । "अदेल्लु क्यादेरत आ" (१५३) अदेल्लुकीति किम् । करावीअइ । आदेरिति किम् । कारिअ । इह अन्त्यस्य मा भूत् । आवे आव्यादेशयोरपि आदेरत आत्वम् इच्छन्ति । कारावेइ । हासाविअ ।

जाणामि न हि न जाणमि नारङ्ग-फलाइँ वन्निउं देव ! ।

वण-सिरि-वहूए घट्टंसुआइं सोहन्ति एआइं ॥७९॥

**शब्दार्थ**—(देव) हे देव कुमारपाल ! (नारग फलाइँ) नारंगी के फलों को; (वान्निउ) वर्णन करने के लिये, (न हि जाणमि) नहीं जानता हूँ, (ऐसा) (न) नही; किन्तु (जाणामि) मैं जानता हूँ । (वण-सिरि-वहूए) वन की शोभारूप वधू के, (एआइं) ये (पास मे रहे हुए); (घट्ट सु आइँ) (नारंग फल रूप) बूटेदार कौसुम्भ वस्त्र, (फल ही एक प्रकार के वस्त्र है) (सोहन्ति) सुशोभित हो रहे हैं ।

पउमसिरि तं भणामो भणिमो तं लच्छि भणिमु तं गउरि ।

भणमु तमिले भणाम य तं गङ्गे तं भणामु कमलच्छि ॥८०॥

तं सिरि भणमो भणिम तमुमे जए तं च भणम कुन्द-वणं ।

उच्चिणह गहिअ-नामं लवन्ति विलया इअन्नोन्नं ॥८१॥

**शब्दार्थ** - (हे पउमसिरि !) हे पद्मश्री (तं) तुमको; (भणामो) हम कहती हैं; (हे लच्छि !) हे लक्ष्मी ! (तं) तुमको; (भणिमो) हम कहती हैं; (हे गउरि !) हे गोरि ! (तं) तुमको; (भणिमु) हम कहती हैं; (हे इले !) हे इला ! (तं) तुमको; (भणमु) हम कहती हैं; (य) और, (हे गंगे !) हे गंगा ! (तं) तुमको; (भणाम) हम कहती हैं; (हे कमलच्छि) हे कमलाक्षि ! (तं) तुमको; (भणामु) हम कहती हैं ।

**टिप्पण**—भणामो। भणिमो। भणिमु। भणाम। भणामु। भणिम। "इच्च मो मु मे वा" (१५५) इति अत इत्वं चाद् आत्वं वा। पक्षे भणमु। भणमो। भणम। गहिअ। "क्त्वे" (१५६)

(८१)—(हे सिरि) हे श्री ! (तं) तुमको; (भणमो) हम कहती हैं; (हे उमे !) हे उमा ! (तं) तुमको, (भणिम) हम कहती हैं, (हे जए) हे जया ! (तं) तुमको; (भणम) हम कहती हैं, कि (कुन्द-वणं) कुन्द जाति के वृक्ष से फूलों को, (उच्चिणह) चयन करो, (इअ) इस प्रकार; (अन्नोन्नं) परस्पर में; (गहिअ नाम) नाम कहकर, (विलया) वनिताएँ (लवन्ति) बोलती है।

फलिणि-कुसुम विहसिउं विहसेउं लोद्धयं पयट्टेइ।
हसिऊणं विहसेऊण निअ इमं अणहसे अव्वं ॥८२॥

**शब्दार्थ**—(फलिणि-कुसुम) प्रियंगु लता विशेष के फूल को; (विहसिउ) विकसित करने के लिये; (और) (लोद्धयं) लोध्रजाति के वृक्ष के फूल को; (विहसेउं) विकसित करने के लिये; (पयट्टेइ) यह प्रवृत्ति करता है (ऐसे प्रवृत्तिशील), (इम) इसको; (जो कि) (अणहसेअव्वं) हंसी का पात्र नही है किन्तु जो श्लाघ्य है; (ऐसे) (इमं) इसको; (हसिऊणं) हंसकर; (विहसेऊण) (शब्दपूर्वक) हसकर (हे सखि !); (निअ) देखो।

गन्धेण अहसिअव्वं विहसेहिइ इममिमं च विहसिहिइ।
विहसेइ इमं विहसइ इमं च वारुणि-वणे पुप्फं ॥८३॥

**शब्दार्थ**—(गन्धेण अहसिअव्वं) गन्ध के कारण से जो प्रशसा योग्य है, ऐसा; (इमं) यह; (वारुणि-वणे) इन्द्रायनलता के उपवन में; (पुप्फं) पुष्प; (विहसेहिइ) विकसित होगा; (इमं च विहसिहिइ) और यह भी विकसित होगा; (इमं) (यह तीसरा भी); (विहसेइ) विकसित होता है अथवा हो रहा है, (इम च) (और यह चौथा भी), (विहसइ) विकसित हो रहा है।

इह हसउ पहिअ-लोओ हसेउ उज्जाण-वालिआ-लोओ।
विहसन्त-हिओ विहसेन्त-लोअणो फलिअ-बोरीहि ॥८४॥

**शब्दार्थ**—(फलिअ-बोरीहि) प्रफुल्लित हुए बेरों के कारण से; (विहसेन्त-लोअणो) प्रफुल्लित हो रहे हैं नेत्र-जिनके ऐसा; (विहसन्त-हिओ) प्रफुल्लित हो रहा है हृदय-जिनका ऐसा; (पहिअ-लोओ) पथिक-लोग=यात्रीसमूह, (इह) यहाँ-उपवन में, (हसउ) प्रसन्न होवे=हसे; (उज्जाण-वालिआलोओ) उद्यान-पालिका-लोग भी (हसेउ) प्रसन्न होवे=हंसे; (उद्यान-पालिका

महिलाओं के यौवन को देख कर के पथिक-गण हंसें और पथिकों के मनो-भावों को समझ करके उद्यान-पालिकाएँ हंसें)

**टिप्पण**—विहसिउं । विहसेउं । हसिऊणं । विहसेऊणं । अणहसेअव्वं । अहसिअव्वं । विहसेहिइ । विहसिहिइ । "एच्च क्त्वातुम्तव्य भविष्यत्सु" (१५७) इति एत् । चकाराद् इत्वं च ।

"प्रेषानुज्ञावसरे कृत्यपञ्चम्यौ" (हे० ५४) इत्यनेन अवसरे पञ्चमी ॥

जयइ अणङ्गो कह पहु सुणाउ विहसेज्ज जइ न पुंनागो ।
नय विहसेज्जा लवली होई अइ न वि अ कुन्देहि ॥८५॥

**शब्दार्थ**—(हे पहु) हे प्रभु कुमारपाल ! (सुणाउ) सुनें; (जइ) यदि; (पुंनागो) पुनाग नामक पुष्प; (न विहसेज्ज;) विकसित नहीं होता है तो; (य) और; (लवली) लवली नामक लता का पुष्प; (न) विहसेज्जा बिकसित नहीं होता है तो; (अ) और; (कुन्देहि) कुन्द पुष्प द्वारा, (न होई अइ) नहीं; (विकसित) हुआ जाता है तो, (अनंगो) रति-कामदेव, (कह) कैसे; (जयइ) जयशील-अथवा विजयी होगा ।

**टिप्पण**—विहसेइ । विहसइ । हसउ । हसेउ । विहसन्त । विहसेन्त । "वर्तमान पञ्चमी शतृषु वा" (१५८) इति एर्वा ॥ क्वचिन्न । जयइ । क्वचिद् आत्वमपि । सुणाउ । विहसेज्ज । विहसेज्जा । "ज्जाज्जे" (१५९) इति ए ॥

**उद्यानवर्णनोपसंहारो राज्ञः सौधगमन संध्याकर्म च—**

होइज्जइ फलिणी-कुसुमेहि लहिज्जेज्ज केहि नच्छि-सुहं ।
केहि न लहिज्ज हरिसो जह दीसइ वुच्चइ तहेअ ॥८६॥

**शब्दार्थ**—(फलिणी-कुसुमेहि) प्रियंगु के पुष्पों द्वारा; (होइज्जइ) उत्पन्न हुआ जाता है; (ऐसी स्थिति में) (केहि) किनके द्वारा; (अच्छि-सुहं) आखों का सुख (देखने पर उत्पन्न होने वाला सुख); (न लहिज्जेज्ज) नहीं प्राप्त किया जाता है; (केहि) किनके द्वारा; (हरिसो) हर्ष; (न लहिज्ज) नही प्राप्त किया जाता है; (अर्थात् सभी प्रसन्न और सन्तुष्ट होते ही हैं) (इसीलिये कहा जाता है कि) (जह दीसइ) जैसा देखा जाता है; (तहेव) वैसा ही; (वुच्चइ) कहा जाता है । (अर्थात् अनुभूति का ही वर्णन किया जाता है)

**टिप्पण**—होई अइ । होइज्जइ । लहिज्जेज्ज । "इअइज्जौ क्यस्य" (१६०) बाहुलकात् क्वचित् क्योपि विभाषया । लहिज्ज ।

दीसइ । वुच्चइ । "दृशिवचेर्डीसडुच्चम्" (१६१) इति क्यस्य डीस-डुच्चौ ॥

इअ राया उज्जाणं तं कासी नयण-गोअरं सव्वं ।
काही सउहे गमणं संझा-कम्मं च काहीअ ॥८७॥

**शब्दार्थ**—(इअ) इस प्रकार, (राया) राजा कुमारपाल ने; (तं) उस; (सव्वं उज्जाणं) सम्पूर्ण उद्यान को, (नयणगोयरं) (नेत्र) दृष्टि-गोचर, (कासी) किया (देखा); तत्पश्चात् (सउहे) राज-महल में; (गमणं काही) गमन किया, (च) और; (संझा-कम्मं) संध्या-कर्म-सायं-कालीन करणीय कार्य; (काहीअ) किये ।

**टिप्पण**—कासी । काही । काहीअ । "सी ही हीअ भूतार्थस्य" (१६२) इति भूतार्थविहिता द्यतन्यादेः सी ही ही अ ।

अह पढिअं सूएहिं हुवीअ संझा अहेसि अत्थमणं ।
अम्ह खणो आसि तमो हुज्जइ ससि-उग्गमो हुज्ज ॥८८॥

**शब्दार्थ**—(अह) अथ=तत्पश्चात्, (सूएहिं) सूत-मंगल पाठी-द्वारा, (पठिअं) कहा गया; (राजा से निवेदन किया गया कि), (सझा हुवीअ) संघ्या हो गई है, (अत्थमणं अहेसि) सूर्यास्त (भी) हो चुका है; (अम्ह) हमारा; (खणो) पढ़ने का समय (भी), (आसि) हो गया है, (तमो हुज्जइ) अंधकार भी; हो गया है, (ससि-उग्गमो) चन्द्रोदय भी; (हुज्ज) हो गया है ।

**टिप्पण**—हुवीअ । "व्यञ्जनाद् ईअः" (१६३)

अहेसि । आसि । "तेनास्तेरास्यहेसी" (१६४)

हुज्जइ । हुज्ज । "ज्जात् सप्तम्या ईर्वा" (१६५) इति सप्तम्यादेशात् ज्जात् पर इर्वा ॥

होस्सामि दुही होहिमि दीणो होहामि असरणो इण्हि ।
इअ चिन्तन्तो विरहं सहइ रहङ्गो रहङ्गीए ॥८९॥

**शब्दार्थ**—(दुही होस्सामि) मैं दुःखी हो जाऊँगा, (दीणो होहिमि) मैं दीन हो जाऊँगा, (असरणो होहामि) मैं अशरण-अनाथ हो जाऊँगा, (इण्हि) इस समय मे याने इस रात्रि-काल के आने पर; (इअ) इस प्रकार, (चिन्तन्तो) चिन्ता करता हुआ, (रहंगो) चक्रवाक (रहंगीए) चक्रवाकी के; (विरहं) विरह को; (सहइ) सहन करता है ।

**टिप्पण**—होहिमि । "भविष्यति हिरादिः" (१६६) इति भविष्यदर्थ-विहिते प्रत्यये परे तस्यैव आदिर्हिः प्रयोक्तव्याः ॥

वायव्व-ण्हाण-ण्हाया होस्सामो होहिमो अणज्झयणा ।
होहामो कय-गेड्डी-खेड्डा होस्साम विगय-भया ॥९०॥

**शब्दार्थ**—(मुनि-पुत्र बटुकों की बातचीत का वर्णन;-जब कि वे चर-कर आती हुई गायों को लेने के लिए उनके सम्मुख जाते हैं); (वायव्व-ण्हाण-ण्हाया) आती हुई गायों के खुरों से ढीली पड़ी हुई और वायु के कारण ऊपर उठी हुई धूल का उड़-उड़कर शरीर पर लगना ही है एक प्रकार का जो स्नान; ऐसे स्नान से स्नान किये हुए; (होस्सामो) हम हो जावेंगे, (अण-ज्झयणा) (सध्या-समय अनध्यायकाल होने से) अनध्याय=पठन पाठन से रहित; (होहिमो) हम हो जावेंगे, (कय-गेड्डी-खेड्डा) (उपरि भाग जिसका कुछ टेढा होता है वह लकड़ी गेड्डी कहलाती है) ऐसी लकड़ी से खेला है खेल जिन्होंने, ऐसे, (होहामो) हम हो जावेंगे, (विगय-भया) (इस समय अध्यापक का नियन्त्रण नहीं होने से,) भयरहित (होस्साम) हम हो जावेंगे।

होहाम मुक्क-मेरा होहिम गोवाल-गुज्जरी-गाया ।
होस्सामु मित्त-मिलिआ होहामु तहेअ कय-नट्टा ॥९१॥

**शब्दार्थ**—(मुक्क मेरा) (जंगल में निर्जनता होने से) हम सभी मुक्त-मर्यादा वाले हो जावेंगे, (गोवाल-गुज्जरी गाया) गोपाल गूर्जरी (अहीरों द्वारा गाये जाने वाले गीत) को गाने वाले (होहिम) हम हो जावेंगे, (मित्त-मिलिआ) मिले हुए मित्र वाले, (होस्सामु) हम होवेंगे, (तहेअ) और इसी प्रकार से, (कय-नट्टा) रचा है नृत्य जिन्होंने; ऐसे, (होहामु) हम हो जावेंगे। (अर्थात् हम लोग नृत्य-गीत खेल-कूद आदि स्वतन्त्रतापूर्वक मित्रों के साथ निःशक होकर करेंगे)

होहिमु रमिरा भमिरा होहिस्सा निव्वुआ य होहित्था ।
इअ मुणि-वडुआ जम्पन्ति गावि-समुहं वणे जन्ता ॥९२॥

**शब्दार्थ**—(रमिरा) क्रीड़ा करने वाले; (होहिमु) हम होवेंगे; (भमिरा) इधर उधर भ्रमण करने वाले; (होहिस्सा) हम होवेंगे, (य) और, (निव्वुआ) (सभी परतन्त्रता मय प्रवृत्तियों से) निवृत्त याने सुखी, (होहित्था) हम होवेंगे; (इअ) इस प्रकार; (मुणि-वडुआ) मुनि-पुत्र-बटुक; (गावि समूहं) गायों के सम्मुख, (वणे) जगल में (जन्ता) जाते हुए, (जम्पन्ति) बोलते हैं।

**टिप्पण**—होस्सामि । होहामि । होस्सामो । होहामो । होस्साम । होहाम । होस्सामु होहामु । "मिमोमु मे स्सा हा न वा" (१६७) पक्षे होहिमि । होहिमो । होहिम । होहिमु ॥

होस्सं कय-नेवच्छा काहिमि कुरले णडालिअं काहं ॥
दाहिमि वासं केसेसु दाहमलि अम्मि तिलयं च ॥९३॥

(नायिका—अपने प्रिय के समागम के पूर्व शृंगार आदि क्रियाओं का चिन्तन और वैसी प्रवृत्ति करती है) इनका वर्णन इन पाँच गाथाओं द्वारा वर्णन किया जाता है—

**शब्दार्थ**—(कय-नेवच्छा) सुन्दर वेष धारण किया है जिसने ऐसी; (होस्स) मैं होऊँगी, (कुरले) केशों का शृंगारित, (काहिमि) करूँगी, (णडा-लिअ) तिलक आदि से ललाट को सुशोभित, (काहं) करूँगी, (केसेसु) केशों में, (वासं) सुगन्ध को, (दाहिमि) दूँगी अर्थात् बालों को सुगन्धित करूँगी; (अलि अम्मि) कपाल पर; (तिलयं) तिलक (दाहम्), दूँगी, याने तिलक करूँगी।

पिअ-संमुहं च गच्छं सोच्छं गीअं च हरिसओ रोच्छं ॥
तारुन्न-फलं वेच्छं दच्छं मोच्छं च संतावं ॥९४॥

**शब्दार्थ**—(स्वागतार्थ) (पिअ-संमुह) प्रियतम के सम्मुख (गच्छ) जाऊँगी, (गीअं) (पति द्वारा गाये हुए) गीत को, (सोच्छं) सुनूँगी, (हरि-सओ) (पति के मिलन से उत्पन्न) हर्ष से, (रोच्छ) मै रोऊँगी, (तारुन्नफल) (आलिगन-परिरभन रूप) यौवन का फल, (वेच्छ) अनुभव करूँगी, और (संतावं) मन के खेद को, (मोच्छं) छोड़ दूँगी याने खेद-मुक्त हो जाऊँगी।

छेच्छ भेच्छ नक्खेहि पिअं वोच्छं च तेण भोच्छं च।
सोच्छिस्सं पिअयम-चाडु आइं मोहं च गच्छिस्सं ॥९५॥

**शब्दार्थ**—(पिअं) प्रियतम को; (नक्खेहि) नखों से, (छेच्छं भेच्छ) (प्रेमवशात्) छेदूंगी—भेदूंगी, (च) और, (वोच्छं) (पति को) गुप्त बात भी कहूँगी, (च) और (तेण) उसके (पति के) साथ, (भोच्छ) भोग भोगूंगी; (पिअयम चाडु आइं) प्रियतम के चाटुकारी प्रिय वचनों को, (सोच्छिस्सं) मैं सुनूँगी, (च) और (मोह); किर्तव्य मूढता रूप) मोह को, (गच्छिस्सं) जाऊँगी याने रति-क्रिया के समय में मैं अपनी सब सुध-बुध खो दूँगी;।

हसउ अ रमउ अ तुह सहि-अणो हमामु अ रमामु अ अहं पि।
हससु अ रमसु अ तं पि हु इअ भणिही मह पिओ इण्हि ॥९६॥

**शब्दार्थ**—(मह पिओ) मेरा प्रियतम, (इण्हि) इस समय में, (आवेगा और) (इअ) इस प्रकार; (भणिही) कहेगा, (हु) निश्चय ही, (तुह) तुम्हारा;

(सहि-अणो) सखीजण=सहेलियाँ; (हसउ) हँसे; (अ) और; (रमउ) खेले; (पति कहेगा); (अहं पि) मैं भी; (हसामु) हँसू; (अ) और; (रमामु) क्रीड़ा करु [अ] और [रमसु] क्रीडा करो, (अर्थात् हम दोनों क्रीड़ा करें। (अतः हे सखियों ! यदि तुम स्वयं ही मेरे पति के आने के पूर्व ही चली जाओ तो अच्छा रहेगा, यह समझाने के लिये नायिका उपरोक्त शैली से अपने सहेलियों के साथ बातचीत करती है।

सहिमेवं च भणिस्स तम्बोलं देहि देसु पुप्फं च।
इअ चिन्तन्ती वासय-सज्जा सज्जेइ पिअ-सेज्ज ॥९७॥

**शब्दार्थ**—(तम्बोलं) (सुपारी कत्था आदि युक्त) पान; (देहि) मुझे दो, (च) और; (पुप्फ) पुष्प, (देसु) मुझे दो, (एवं) इस प्रकार; (सहिम्) सखी को; (भणिस्सं) (पति के आने पर) कहूंगी, (इअ) इस प्रकार, (चिन्तन्ती) सोचती हुई, (वासय-सज्जा) वासक-सज्जा (रति की लालसा से अंगराग आदि से अपने आपको तैयार करनेवाली स्त्री वासक-सज्जा कहलाती है) (पिअ-सेज्जं) अपने प्रियतम की शैय्या को; (सज्जेइ) सजाती है; ।

**टिप्पण**—होस्स। "मेः स्सं" (१६९) इति स्स वा॥ काहं। दाहं। "कृदो हं" (१७०) पक्षे काहामि। दाहिमि॥

गच्छं। सोच्छं। रोच्छं। वेच्छं। दच्छं। मोच्छं। छेच्छं। भेच्छं। वोच्छं। मोच्छं। "श्रु गमि-रुदि-विदि-दृशि-मुचि-वचि-छिदि भिदि-भुजा सोच्छं गच्छं रोच्छं वेच्छं दच्छं मोच्छं वोच्छं छेच्छं भेच्छं भोच्छं" इत्यादिना श्वादीना सोच्छ मादय ॥

सोच्छिस्सं। गच्छिस्स। सोच्छादय. इजादिषु हि लुक् च वा। (१७२) इत्यादिना श्वादीनं स्थाने इजादिषु भविष्यदादेशेषु यथासङ्ख्यं सोच्छादयः त एव आदेशा अन्त्यस्वराद्यवयव वर्जा हि लुक् च वा॥

हसउ। रमउ। हसामु। रमामु। हससु। रमसु। दु सु मु विध्यादिष्वेकस्मिस्त्रयाणां" (१७३) विध्याद्यर्थोत्पन्नानाम् एकत्वेर्थे वर्तमानानां त्रयाणामपि त्रिकाणां यथा संख्यं दु सु मु आदेशाः॥

देहि। देसु। "सोर्हिर्वा" (१७४) इति पूर्वसूत्रविहितस्य सोर्हि वा॥

तं रमसु तं रमेज्जसु तुमं रमेज्जे रमिज्जहि तुमं पि।
रम तं पि वयं रमिमो रमन्तु ए आ रमह तुब्भे ॥९८॥

(आठ गाथाओं द्वारा व्यभिचारिणी स्त्रियों की बातचीत का वर्णन किया जाता है—)

**शब्दार्थ**—(हे सखि) (तं रमसु) तुम रमण करो; (तं रमेज्जसु) तुम रमण करो; (तुम रमेज्जे) तुम रमण करो; (तुमं पि) तुम भी; (रमिज्जहि) रमणकरो; (त पि रम) तुम भी रमो; (वयं रमिमो) हम रमण करें; (ए आ रमन्तु) ये रमण करें, (तुब्भे रमह) तुम रमण करो।

एआ हसन्तु तुम्हे हसह हसामो वयं पि नीसङ्कं ।
दइएण रमिज्ज इमा इमा रमेज्जा इमा रमइ ॥९९॥

**शब्दार्थ**—(एआ हसन्तु) ये हँसे, (तुम्हे हसह,) तुम हँसो; (वयंपि) हम भी, (नीसंकं) निर्भयता पूर्वक, (हसामो) हँसे; (दइएण) अपने प्रियतम के साथ, (इमा) यह; (रमिज्ज) रमण करें; (इमा) यह दूसरी भी; (रमेज्जा) रमण करे; (इमा) (यह तीसरी भी;) (रमइ) रमण करती है।

एसा रमिहिइ एसा रमिज्ज एसा वि संपइ रमेज्जा ।
एसा रमिज्ज एसा रमउ रमेज्जा य एसा वि ॥१००॥

**शब्दार्थ**—(हे सखि !) (संपइ) अभी इसी समय में ही, ऐसा यह, (रमिहिइ) रमण करेगी, (एसा) यह (दूसरी भी); (रमिज्ज) रमण करेगी; (एसा वि) यह (तीसरी) भी; (रमेज्जा) रमण करेगी; (एसा रमिज्ज) यह रमण करे; (एसा रमउ) यह (दूसरी भी) रमण करे, (य) और; (एसा वि) यह (तीसरी भी), (रमेज्जा) रमण करे। (इसमे भविष्यत्काल एवं आज्ञार्थ के प्रयोग किये गये हैं)।

होज्जम्हाणं समओ होज्जा सच्छन्द-गो जणो एस ।
ण हु होज्ज जइ पओसो ता एस जणो कहं होज्ज ॥१०१॥

**शब्दार्थ**—(हे सखि !) (म्हाणं) हमारा, (समओ) समय, (होज्ज) हो गया है; (एस जणो;) यह पुरुष (भी, मेरे समान ही) (सच्छन्द-गो) स्वेच्छा-चारी; (होज्जा) होता है, (हो गया है; होवे, होगा; हुआ है—होने-वाला आदि सभी कालो के रूप 'ज्ज' प्रत्यय में आ जाते हैं), (हुं) निश्चय ही, (जइ) यदि, (पओसो) रात्रि प्रारम्भ होने का समय, (दिन और रात्रि का सन्धि काल) (ण होज्ज) नही होता तो; (एस जणो) यह (दिखलाई पड़ने वाला) पुरुष, (कहं) कैसे, (होज्जा) (मेरे समान ही आतुर) होता ? (यदि प्रदोष काल का अभाव होगा तो कामाग्नि से भस्म हो जायगा)।

होज्जइ अङ्ग-त्थम्भो सेओ होज्जाइ होज्ज रोमञ्चो ।
होज्जा कम्पो होइ अ वेवण्णं एण्हिमभिसरणे ॥१०२॥

**शब्दार्थ**—(हे सखि !) (प्रियतम के पास जाने में); (एण्हिम्) इस समय में; (अभिसरणे) (पति-मिलन के लिये जाते हुए समय में; (अंग-त्थम्भो) (हर्ष आदि कारण से) शरीर का अंगोपांग स्तम्भ के समान जड़वत्; (होज्जइ) होता है; (सेओ) पसीना; (होज्जाइ) होता है; (रोमञ्चो) रोमाञ्च (होज्ज) होता है; (कंपो) (अज्ञात भय से) कंप कंपी; (होज्जा) होती है; (अ) और; (वेवण्ण) विवर्णता (मुख का हाव-भाव विचित्र;) (होइ) होती है।

होज्जहिइ इट्ठ-गोट्ठी होज्जा पिअ-मेलओ दिही होज्ज।
होहिइ परमाणन्दो होज्जाहिइ चित्त-वीसामो ॥१०३॥

**शब्दार्थ**—(हे सखि) (इट्ठ-गोट्ठी) इष्ट-गोष्ठी (होज्जहिइ) होगी, (पिअ-मेलओ) प्रियतम का मिलन, (होज्जा) होगा, (दिही) सन्तोष; (होज्ज) होगा, (परमाणन्दो) महान् आनन्द, (होहिइ) होगा, (चित्त-वीसासो) चित्त में विश्राम, (होज्जाहिइ) होगा।

होज्ज किलकिंचिअं विव्वोओ होज्जाउ विब्भमो होउ।
मोट्टाइअं च होज्जउ होज्जा ललिअं च अम्हाणं ॥१०४॥

**शब्दार्थ**—(हे सखि !) (किलकिंचिअं) (मुसकराना, हंसना, रोना, भय-उत्पन्न होना, रोष होना, दुःखी होना, प्रणय सम्बन्धी मान करना, श्रम अनुभव करना, रति-लालसा होना, इन वर्णित आवेगों की संम्मिश्रित अवस्था हो) किलिकिंचित विकार; (होज्ज) होवे, (विव्वाओ) प्रियतम की भी प्रणय-कारणों से अवज्ञा; (होज्जाउ) होवे, (विब्भमो) (काम भावना की तीव्रता के कारण से) वचनों की विश्रृंखलता होना, अव्यवस्थित रीति से बोलना; आभूषणों को कही का कही पर गलत रूप से पहिन लेना (इस प्रकार की) विभ्रमता, (होउ) होवे, (च) और, (मोट्टाइअं) प्रिय सम्बन्धी आलाप संलाप के समय उत्पन्न होने वाली चेष्टा विशेष अथवा रतिक्रीड़ा, (होज्जउ) होवे; (च) और; (ललिअं) लीलामय बिलास, (होज्जा) होवे; (अम्हाणं) (इस प्रकार) हमारी—

होज्ज न संझा होज्जा न निसा तिमिरं पि जइ न होमाणं।
ता होन्ता कहृ अम्हे इअ संपइ पंसुलालावो ॥१०५॥

**शब्दार्थ**—(हे सखि) (संझा) संध्या; (न होज्ज) (यदि) नहीं होगी; (निसा न होज्जा) यदि रात्रि नहीं होगी; (जइ) यदि; (तिमिरं पि) अंधकार

भी; (न होमाणं) नहीं होगा; (ता) तो; (अम्हे) हम; (कह) कैसे; किस प्रकार; (होन्ता) होंगे ? अर्थात् तब हमारी क्या दशा होगी ? (इअ) इस प्रकार; (पसुला-आलावो) कुलटा स्त्रियों का परस्पर में बातचीत; (संपइ) इस समय में (हो रही है)।

**टिप्पण**—रमेज्जसु। रमेज्जे। रमिज्जहि। रम। "अत इज्जस्विज्ज-होज्जे-लुको वा" (१७५) पक्षे रमसु। रमिमो। रमन्तु। रमह। हसन्तु। हसह। हसामो। "बहुषु न्तु ह मो" (१७६)

रजिज्ज ३। रमेज्जा ३। वर्तमाना-भविष्यन्त्योश्च ज्ज ज्जा वा" (१७७) पक्षे रमइ। रमिहिइ। रमउ॥ अन्ये त्वन्यासामपीच्छन्ति। होज्ज। होज्जा॥

होज्जइ। होज्जाइ। होज्ज। होज्जा। होज्जाहिइ। होज्जा। होज्ज। होज्जाहिइ। होज्ज। होज्जाउ। होज्जउ। होज्जा। "मध्ये च स्वरान्ताद् वा" (१७८) इति स्वरान्ता द्धातोः प्रकृतिप्रत्यययोर्मध्ये च काराद् वर्तमाना भविष्यन्ती विध्यादि प्रत्ययानां च ज्ज ज्जा वा। पक्षे होइ। होहिइ। होउ।

होज्ज। होज्जा। "क्रियातिपत्तेः" (१७९)॥

होमाण। होन्ता। "न्त-माणौ" (१८०) इति क्रियातिपत्तेः न्त माणौ।

**चन्द्रोदयः**—

विहसन्त-पहा-हसन्तओ अह उइओ चन्दो कुणन्तओ।
उवहसमाणिं सरोरुहं विहसन्तिं हसइं व कुमुइणिं ॥१०६॥

**शब्दार्थ**—(अह) तदनन्तर; (सरोरुहं) कमल को, (उवहसमाणि) चान्दनी मे खिलने वाली कुमुदिनी अपनी से हीन-कान्ति वाला प्रमाणित करते हुए (उसकी) हसी करती हुई (उसका उपहास करती हुई, (विहसन्ति) विकास को प्राप्त होती हुई—स्पष्ट रूप से खिलती हुई; (हसइ व) विकासशील विशद पत्तों वाली होने के कारण से हसती हुई के समान, (ऐसी), (कुमुइणि) कुमुदिनी को (कुणन्तओ) (विकासशील) करता हुआ, (विहसन्त) खिलती हुई—विकसित होकर फैलती हुई, (पहा) प्रभा से—चान्दनी मे, (हसन्तओ) हँसता हुआ, (जैसा) (चन्दो) चन्द्रमा,—(उइओ) उदय हो गया है (उदयाचल पर्वत की चोटी पर परिपूर्ण बिम्बवाला होता हुआ पूर्ण रूप मे प्रकाशित हो गया है। चन्द्रमा निकल आया है।

**टिप्पण**—विहसन्त। हसन्त ओ। कुणन्त ओ "शत्रानशः" (१८१) इति प्रत्येकं न्त माणौ॥

उवहसमाणिं। विहसन्तिं। हसइं। "ई च स्त्रियाम्" (१८२) इति ई। चकारात् न्तमाणौ।

इत्याचार्य श्री हेमचन्द्र विरचित श्री कुमारपालचरित प्राकृतद्वयाश्रयमहाकाव्य वृत्तौ

॥ पंचमः सर्गः समाप्तः ॥

# षष्ठ ः सर्गः

**चन्द्रोदय वर्णनम् १—२१**

वज्जर थक्को सि कहिं पज्जर कत्तो अ एण्हिमाओ सि ।
जम्पसु विम्हरिआ हं सीससु अणुसासणिज्जो सि ॥१॥

**शब्दार्थ**—भ्रमरों के गुंजन से प्रेरित श्वेतकमलों ने चन्द्र को इस प्रकार पूछा—हे प्रिय ! (वज्जर) कहो, तुम (कहिं) कहाँ पर; (थक्को) रहे हुए; ठहरे हुए, (सि) थे, (पज्जर) कहो; (अ) और, तुम (कत्तो) कहाँ से, (एण्हिम्) इस समय में; (आओ) आ रहे (सि) हो, (जम्पसु) बोलो, (हं) मैं; (विम्हरिया) (तुमसे) भूला दी गई हूँ (सीससु) कहो तुम, (अणुसासणिज्जो) दंडनीय (सि) हो ।

साहसु कीए रत्तो बोल्लसु अन्ना वि किं पिया तुज्झ ।
सङ्घसु किमहं मुक्का चवसु मए किं कयं विलिअं ॥२॥

**शब्दार्थ**—(साहसु) कहो, (कीए) किसी अन्य पर; (रत्तो) अनुरक्त-आसक्त हो, (बोल्लसु) बोलो, (किं) क्या; (तुज्झ) तुम्हें; (अन्ना वि) कोई दूसरी भी, (पिआ) प्रिय है, (सघसु) कहो, (अहं) मैं; (किं) क्या, (तुमसे) (मुक्का) मुक्त कर दी गई हू=छोड़ दी गई हूँ, (चवसु) बोलो; (मए) मेरे द्वारा, (कि) क्या, (विलिअं) अपराध, (कय) किया गया है—हुआ है ।

पिसुणसु किं जुत्तमिणं उप्पालसु किं चिराउ दिट्ठो सि ।
इअ भमर-गुञ्जिएहिं ससिणं पुच्छीअ कइरविणी ॥३॥

**शब्दार्थ**—(पिसुणसु) कहो; (किं) क्या, (इणं)यह (इस प्रकार तुम्हारा विलम्ब करना) (जुत्तम्) युक्त है; (उप्पालसु) बोलो (किं) क्यों; (चिराउ) लम्बे समय तक—(इतने समय के बाद) (दिट्ठोसि) दिखलाई पड़े हो; (इअ) इस प्रकार; (भमर-गुंजिएहिं) मानों भ्रमर गुंजारव के रूप में अर्थात् भ्रमर-गुंजारव द्वारा; (कइरविणो) कैरविणी नामक कुमुदिनी नामक रात्रि-फूलों ने, (ससिणं) चन्द्रमा को (पुच्छीअ) पूछा ।

**टिप्पण**—"इदितो वा"(१) इत्यधिकारसूत्रेण अग्रेतनसूत्रेषु ये इदितो धातवस्तेषां वक्ष्यमाणा आदेशा वा भवन्ति इति एतदुदाहरणानि तत्तत्सूत्र संबन्धीन्येव ॥

वज्जरपज्जरेत्यादय आदेशाः "कथेर्वज्जर०" (२) इत्यादिसूत्रेण भवन्ति ॥

णिव्वरही चक्क-वहू दूरत्थ-पिए जुगुच्छिअत्ताणा ।
झुणिअ-रवेहिं अदुगुच्छिअं पि भिसिणिं दुगुञ्छन्ती ॥४॥

**शब्दार्थ**—(जुगुच्छिअत्ताणा) अपने आपकी निन्दा करती हुई—अपने आप को धिक्कारती हुई; (चक्क-वहू) चक्रवाक की वधू=चकवी; (अदुगुच्छिअ) निन्दा के योग्य नहीं ऐसी; अर्थात् प्रशंसा के योग्य; ऐसी (भिसिणिं) कमलिनी को; (झुणिअ-रवेहिं) निन्दा द्योतक ध्वनि द्वारा; (दुगुञ्छन्ती) निन्दा करती हुई—धिक्कारती हुई, (दूरत्थ-पिए) दूरस्थ-थोड़ी ही दूरी पर बैठे हुए अपने पति को, (णिव्वरही) अपने दुःख को कहने लगी, अथवा कह रही थी ।

**टिप्पण**—णिव्वरही । "दुःखे णिव्वरः" (३) दुःख विषयस्य कथेर्णिव्वरो वा ॥

झुणिअ । अदुगुच्छिअ । दुगुञ्छन्ती । जुगुप्सेर्झुण दुगुच्छ-दुगुञ्छाः (४) पक्षे जुगुच्छिअ ॥

न बुहुक्खिओ वि चक्को निय-छाहिं निअवि णीरवीअं बिसं ।
निअ - पक्ख - वीजणेहिं वोज्जन्तो घरणि-सङ्काए ॥५॥

**शब्दार्थ**—(बहुक्खिओ) भूख से पीड़ित होता हुआ, (वि) भी, (चक्को) चकवा-पक्षी (ने), (निय-छाहिं) अपनी छाया को, (निअवि) देख करके, (उसी को अपनी), (घरणि-संकाए) पत्नि समझ करके, (अथवा अपनी पत्नी की शका से), (निअ-पक्खवीजणेहि) अपने पख रूप पखों से—वीजणो से—(वोज्जन्तो) वींजता हुआ—(पंखों द्वारा हवा करता हुआ); (बिस) कमल को, (न णीरवीअ) खाने की इच्छा भी नही की ।

**टिप्पण**—बुहुक्खिओ । णीरवीअ ॥ वीजणेहिं । वोज्जन्तो । "बुभुक्षि-वीज्योर्णीरववोज्जौ (५)

गायन्ता सज्झायं झायन्ता धम्म-झाणमकलङ्कं ।
जाणन्ता मुणिअव्वं मुणिणो आवस्सए लग्गा ॥६॥

**शब्दार्थ**—(सज्झायं) स्वाध्याय को; (पूर्व पठित पाठों की पुनरावृत्ति

को;) (गायन्ता) गाते हुए; (अकलंकं) कलंकरहित-पवित्र; (धम्म-झाणम्) धर्मध्यान को (झायन्ता) ध्याते हुए; (मुणिअव्वं) जानने योग्य-जीवादि तत्त्वों को; (जाणन्ता) जानते हुए; (मुणिणो) मुनिगण (आवस्सए) आवश्यक क्रियाओं में; (प्रतिक्रमणादि धर्मानुष्ठान में) (लग्गा) लग गये।

**टिप्पण**—गायन्ता। झायन्ता। "ध्या-गो झा-गौ" (६) जाणन्ता। मुणिअव्वं। "ज्ञो जाण-मुणौ" (७)

दिण-ताव-उद्धुमाओ सद्दहिउं दाह-पसमिणिं जुण्हं।
को अमय-पिज्जणिज्जं अच्छीहि न घोट्टिउं लग्गो ॥७॥

**शब्दार्थ**—(दिण-ताव-उद्धुमाओ) दिनभर के ताप से—गरमी से संतापित; (दाह-पसमिणि) दाह-संताप को शान्त करने वाली, (अमय-पिज्जणिज्जं) अमृत के समान पीने योग्य, (जुण्हं) चान्दनी को—जोत्स्ना को, (सद्दहिउं) (फैली हुई) समझ करके—निश्चय करके (को) ऐसा कौन है; जो कि (अच्छीहि) आंखों द्वारा (घोट्टिउं) पीने के लिये, (न लग्गो) नहीं सलग्न हुआ हो।

**टिप्पण**—उद्धुमाओ। "उद ध्मो धुमा" (८)॥
सद्दहिउं॥ "श्रद्धो धो दहः" (९)॥

पट्टी अ चन्दिम-रसं चन्दिम-रस-डल्लिरं च ओर-कुलं।
पिअइ म्ह अलि-कुलमणोरुम्मिअ-सेहालिअ-परायं ॥८॥

**शब्दार्थ**—(चन्दिम-रस-डल्लिरं) चान्दनी के रस का पान करनेवाला; (चओर-कुल) (ऐसा) चकवा-पक्षियों का समूह ने; (चन्दिम-रसं) चान्दनी के रस को, (पट्टीअ) पान किया, पिया, (अलि-कुलम्) भ्रमरों के समूह ने; (अणोरुम्मिअ) गीले=भीगे हुए, (सेहालिअ पराय) शेफालिका-निर्गुण्डी-पुष्प के पराग को, (पिअइ-म्ह) पीते थे—(या) पिया।

**टिप्पण**—पिज्जणिज्ज। घोट्टिउ। पट्टीअ। डल्लिरं। पिअइ। "पिबेः पिज्ज-डल्ल-पट्ट-घोट्टा।"(१०)

पवणेणोव्वाय-विलेवणाउ वसुअन्त-सम-जला कुलडा।
उङ्घते ससुर-जणे ओहीरन्ते पिए य गया ॥९॥

**शब्दार्थ**—(पवणेण) पवन से; (उव्वाय) सुखा दिया गया है; (विलेवण-आउ) विलेपन जिनका, ऐसी स्त्रियाँ (आउ प्रथमा का बहु वचन का प्रत्यय) (वसुअन्त-सम जला) डरते-डरते जाते हुए होने के कारण से उत्पन्न) श्रम-जल को=पसीने को; (पवन के द्वारा) सुखा दिया गया है—जिनका; ऐसी स्त्रियाँ; (कुलडा) कुलटा स्त्रियाँ; (ससुर-जणे) श्वसुर आदि पारिवारिक

पुरुषों के, (उंघंते) निद्रागत हो जाने पर, (य) और; (पिए) पति के; (ओहीरन्ते) निद्रागत हो जाने पर; (गया)(जार पुरुषों के पास में) पहुँच गई।

**टिप्पण**—अणोरुम्मिअ । उव्वाय । वसुअन्त । "उद्वाकेरो रुम्मा वसु आ" (११) ॥

निद्दायन्तं कमल भमरो नाइग्घिउं पि ओच्छरिओ ।
अग्घायन्तो कुमुअ अब्भुत्तन्तो व्व मयरन्दे ॥१०॥

**शब्दार्थ**—(निद्दायन्त) (सूर्यास्त के कारण से) सकुचाता हुआ=सिमटता हुआ, अत एव निद्राग्रस्त होते हुए; (कमलं) कमल को, (आइग्घिउं) सूँघने के लिये, (पि) भी; (भमरो) भ्रमर; (न) नहीं; (ओच्छरिओ) ठहरा, (कुमुअं) कुमुद को (रात्रि-कमल को), (अग्घायन्तो) सूँघता हुआ, (मयरन्दे) मकरन्द में=पुष्परस में (अब्भुत्तन्तो व्व) स्नान—संलग्न के समान, (स्नान करता हुआ-सा भ्रमर प्रतीत हो रहा था)।

**टिप्पण**—उङ्घन्ते । ओहीरन्ते । निद्दायन्तं । "निद्राकेरोही गेङ्घौ" (१२) ॥

आइग्घिउ । अग्घायन्तो । "आघ्रे राइग्घः" (१३)

न्हाउं उदय-त्थिअ-ससि सखायाथक्क-जुण्ह-जल-वरिसे ।
निअ-ठाणे चिट्ठन्तो वि को न सुहिओ निरप्पीअ ॥११॥

**शब्दार्थ**—(उदय-त्थिअ) उदयगिरि पर स्थित, (ससि) चन्द्रमा के, (सखाय-अथक्क=) सघन और सर्वत्र फैलनेवाली; (जुण्ह-जल-वरिसे) जोत्स्ना=चान्दनीरूप जल के बरसने पर, (चान्दनी रूप जल की वर्षा में) (न्हाउँ) स्नान करके, (निअ-ठाणे) अपने स्थान पर, (चिट्ठन्तो); ठहरे हुए, (वि) भी, (को) (ऐसा कौन है जो कि) (सुहिओ) सुखी होता हुआ (न) नहीं, (निरप्पीअ) रहा हो। अर्थात सुखी नहीं हुआ हो।

**टिप्पण**—अब्भुत्तान्तो । न्हाउ । स्नाकरेब्भुत्त." (१४)
सखाय । "सम स्त्यः खा" (१५)॥

अथक्क । ठाणे । चिट्ठन्तो । निरप्पीअ । स्थष्ठा-थक्क-चिट्ठ-निरप्पाः" (१६) बाहुलकात् क्वचिन्न । त्थिअ ।

उदयुट्ठिअस्स ससिणो समुहोकुक्कुरिअ-किंनरीहि कओ ।
अमिलाण - पारिजायापव्वाइअ - कप्प - कुसुमग्घो ॥१२॥

**शब्दार्थ**—(उदय-उट्ठिअ अस्स) उदयगिरि पर उदय हुए, (ससिणो) चन्द्रमा के; (समुह) सम्मुख; (उकुक्कुरिअ) खड़ी हुई; (किंनरीहि) किन्नरियों

द्वारा; (अमिलाण) अम्लान—नहीं कुम्हलाये हुए; (पारिजाय) पारिजात पुष्पों (की अजलि) (अपव्वाइअ) नहीं कुम्हलाये हुए अम्लान; (कप्प-कुसुम) कल्प-द्रुम के पुष्पों (की अजलि) (अग्घो) अर्घ्य—अंजली; (कओ) की, (भक्ति-पूर्वक चन्द्रमा के सम्मुख खड़ी होकर किन्नरियों ने अम्लान पुष्पों की अंजली भेंट की।

टिप्पण—उट्ठिअस्स। उक्कुरिअ। "उदष्ठ कुक्कुरौ" (१७)

**चन्द्रोदय वर्णनम् १३-२१**

वाय-मुह-विहिअ-कमलो निम्मविआ झिज्जमाण-कुमुअ-सिरी।
निम्माणिअ - हरिसमणिज्झरन्त - रुइ-णुमिअ-सव्व-दिसो ॥१३॥

**शब्दार्थ**—(वाय-मुह) म्लान मुख, (विहिअ-कमलो) कर दिया है कमल का जिसने, ऐसा (चन्द्रमा) अर्थात् चन्द्रोदय के कारण से कमल बंद हो गया है (निम्मविअ) निर्मित की है; (अझिज्जमाण) क्षय को नही प्राप्त होने वाली-(कुमुअ-सिरी) कुमुद की शोभा को; जिसने; (ऐसा चन्द्रमा) (निम्माणिअ-हरिसम्) जिसने सर्वत्र हर्ष का निर्माण किया है, (अणिज्झरन्त=) ह्रास अवस्था को नही प्राप्त होनेवाली; (रुइ) रुचि - चान्दनी (के द्वारा) (णुमिअ) ढँक दी है; आच्छादित कर दी है; (सव्व-दिसो) सभी दिशाओं को जिसने; ऐसा चन्द्रमा, (आकाश तल पर चढ़ गया)।

नूमिअ-गयणो सन्नुमिअ-महि-अलो ढक्कि ओडु-पह-पसरो।
ओम्बालिअ - दीव - रुई पव्वालिअ-माणिणी-माणो ॥१४॥

**शब्दार्थ**—(नूमिअ-गयणो) जिसने आकाश को (अपनी कान्ति से) ढँक लिया है; (ऐसा चन्द्रमा) (सन्नुमिअ-महि-अलो) जिसने पृथ्वीतल को (अपनी चान्दनी से) (आच्छादित कर दिया है); (ऐसा चन्द्रमा) (ढक्किअ-उडु-पह-पसरो) ढक दिया है नक्षत्रों की प्रभा के प्रसार को—कान्ति के फैलाव को जिसने; (ऐसा चन्द्रमा) (ओम्बालिअ-दीव-रुई) दीपक की कान्ति को जिसने ढक दिया है ऐसा चन्द्रमा (पव्वालिअ-माणिणी-माणो) मानिनी के मान को जिसने ढक दिया है—ऐसा चन्द्रमा; (आकाश तल पर चढ़ आया)

छाइअ-जणच्छि-पसरं तम-पुञ्जं सव्वओ णिहोडन्तो।
अणिवारिअ-पह-पसरो पाडिअ - दूमिअ-पउरत्थ-कुलो ॥१५॥

**शब्दार्थ**—(छाइअ-जणच्छि-पसरं) ढक दिया है मनुष्यों के आंखों के (देखने के) फैलाव को; जिसने ऐसे (अंधकार का विशेषण); (तम-पुञ्जं) अंधकार के समूह को; (सव्वओ) सभी ओर से; (णिहोडन्तो) नष्ट करता हुआ=दूर करता हुआ; (अणिवारिअ-पह-पसरो) (जिस चन्द्रमा के) प्रभा के फैलाव को कोई भी (मेघ आदि) नहीं रोक सका; (ऐसा चन्द्रमा) (पाडिअ)

(मूर्च्छा आदि उत्पन्न करने से) नीचे गिरा दिया है; (पउत्थ-कुलो) विरही जनों को जिसने (ऐसा चन्द्रमा) (दूमिअ-) दुखित कर दिये हैं अथवा पाण्डु-वर्णवाले कर दिये हैं; (पउत्थ-कुलो) विरही जनों को जिसने; (ऐसा चन्द्रमा आकाश में चढ़ गया)।

किरणेहिँ खं दुमन्तो धवलण-कुच्चय-सिरिं तुलन्तेहि ।
ओहामन्तो अमलोलुण्डिर - नव - रुप्पमय - कुम्भं ॥१६॥

**शब्दार्थ**—(धवलण-कुच्चय-सिरिं) आरास खडिया आदि की सफेदी करने की, तथा; मुंज आदि की बनी हुई कूँची के सौंदर्य-की धवलता की; (तुलन्तेहि) तुलना करनेवाले; (किरणेहिं) किरणों द्वारा; (खं) आकाश को; (दुमन्तो) धवल करता हुआ (ऐसा चन्द्रमा) (अमअ) अमृत; (ओलुण्डिर) झर रहा है जिसमे से; ऐसे (नव) नवीन; (रुप्पमय) चान्दी का बनाया हुआ; (कुम्भं) घडे के साथ; (ओहामन्तो) (स्वच्छता सौंदर्य और धवलता में अपने आपकी) तुलना करता हुआ (ऐसा चन्द्रमा) (आकाश में चढ़ आया)। (रजत निर्मित अमृतमय-धवल-स्वच्छ कुम्भवत् चन्द्र प्रतीत हुआ)।

जलमुल्लुण्डावन्तो ससि-कन्ताउ अमयं विरेअन्तो ।
पल्हत्थाविअ - गुज्झो रइ-वावड-मिहुण-हिअआओ ॥१७॥

**शब्दार्थ**—(ससि-कन्ताउ) चन्द्रकान्त मणि से, (जलम्) जल को; (उल्लुण्डावन्तो) बहाता हुआ; (चन्द्रमा) (अमयं) अपने शरीर में से अमृत की, (विरेअन्तो) वर्षा करता हुआ; अर्थात् अमृत सम रस धारा चान्दनी के रूप में प्रवाहित करता हुआ, (रइ वावड) रति क्रिया में संलग्न; (मिहुण-हिअआओ) मिथुनों के—दम्पत्ति के हृदयों से, (पल्हत्थाविअ-गुज्झो) गुप्त-भावों को प्रकट कर दिया है जिसने, (ऐसा चन्द्रमा आकाश मे चढ़ आया)।

आहोडिअ-धणुह-गुणे सर-ताडिअ-तिहु अणम्मि रइ-नाहे ।
दूर-विहोडिअ-सज्झस असईणं दइअ मेलवाणो ॥१८॥

**शब्दार्थ**—(आहोडिअ) खीच ली है; (धणुह-गुणे) धनुष की डोरी-प्रत्यंचा को; जिसने; (ऐसे कामदेव के हृदय मे जागृत होने पर) (सर-ताडिअ-तिहुअणम्मि) जिसके बाण से; (अखिल) त्रिभुवन ताड़ित है—पीड़ित है, ऐसे (कामदेव के हृदय में जागृत होने पर) (रइ-नाहे) रतिनाथ—कामदेव

के (प्रज्वलित) होने पर; (दूर-विहोडिअ- सज्झस) (काम के जागृत हो जाने के कारण से दूर कर दिया गया है श्वसुर-पति आदि का भय और लज्जा जिन द्वारा; (ऐसो) (असईणं) कुलटा स्त्रियों का, (दइअ) प्रियतम के साथ; (मेलवणो) मिलाप कराने वाला; (ऐसा चन्द्रमा-आकाश में चढ़ आया)।

नीहार-मीसिआहि व छुह-रस-वीसालिआहि व पहाहिं ।
तिमिरोद्धूलिअ-भुवणं गुण्ठन्तो भामि आहि नहे ॥१९॥

**शब्दार्थ**—(नीहार-मीसिआहि व, (जिन चन्द्र किरणों में) हिम-कण मिले हुए हैं; ऐसी किरणों द्वारा; (छुह-रस वीसालि-आहिव) जिन चन्द्र किरणों मे) अमृत-रस मिला हुआ है; (ऐसी किरणों द्वारा) (नहे) आकाश में, (भामिआहि) (चारों ओर) भ्रमर करती हुई; (पहाहि) (ऐसी) प्रभाओं द्वारा=किरणों द्वारा; (तिमिर-उद्धूलिअ-भुवण) अन्धकार से व्याप्त ससार को, (गुण्ठन्तो) पूर्वोक्त गुणोंवाली किरणो से) आच्छादित करता हुआ (ऐसा चन्द्रमा आकाश मे चढ़ गया)

कामि-मण-तालि अण्टिर-वम्मह-आणं जगे तमाडन्तो ।
नासविअ भओ अहिसारिआण हारविअ-लज्जाण ॥२०॥

**शब्दार्थ**—(कामि-मण) कामी-स्त्री-पुरुषों के मन को; (तालि अंटिर) विचलित-भ्रमित-कर देनेवाले, (वम्मह-आणं) कामदेव की आज्ञा को( (जगे) संसार में; (तमाडन्तो) विस्तारित करता हुआ (ऐसा चन्द्रमा) (हार विअ-लज्जाण) (जिस चन्द्रमा ने काम-वासना की अधिकता से) हरण कर ली है लज्जा (जिन स्त्रियों की) ऐसी; (अहिसारिआण अभिसारिकाओं का (अपने प्रियतमों की ओर जाती हुई स्त्रियों का) (नासाविअ-भओ) नष्ट कर दिया है (लज्जा रहित हो जाने के कारण से) भय (जिन पूर्वोक्त स्त्रियों का) जिसने, (ऐसा चन्द्रमा आकाश में चढ़ आया)।

विउडिअ चओर-तण्हो जुण्हाए विप्पगालिअ दिणोम्हो ।
नासिअ-चक्को विरहिणि-पलावणो खं ससी चडिओ ॥२१॥

**शब्दार्थ**—(विउडिअ-चओर-तण्हो) (अपनी मधुर ज्योत्स्ना द्वारा) दूर कर दी है चकोर की तृष्णा को जिसने; ऐसा (जुण्हाए) (अपनी) ज्योत्स्ना से; (विप्पगालिअ-दिणोम्हो) (जिसने) दिन के सन्ताप को=उष्णता जनित कष्ट को; नष्ट कर दिया है; ऐसा (चन्द्रमा); (नासिअ-चक्को) नष्ट कर दिया है; (अपनी प्रियतमा का अभाव रूप) चक्र जिसने; ऐसा (चन्द्रमा) चन्द्रोदय

के कारण से वियोगी भी संयोगी बन गये। (विरहिणि पलावणो) विरहिणी स्त्रियों को; (काम-पीड़ा का मरणान्त कष्ट पहुंचाने के कारण से) नष्ट करने-वाला; ऐसा; (ससी) चन्द्रमा; (खं) आकाश में; (चडिओ) चढ़ गया।

**टिप्पण**—अमिलाण। पव्वाइअ। वाय। "म्लेर्वा-पव्वायौ" (१८)

निम्म विआ। निम्माणिअ। "निर्मो निम्माण-निम्मवौ" (१६)

झिज्जमाण। अणिज्झरन्त। "क्षेणिज्झरो वा" (२०)

णुमिअ। नूमिअ। सन्नुमिअ। ढक्किओ। ओम्बालिअ। पव्वालिअ छाइअ। "छदेर्णेणु म-नूम-सन्नुम-ढक्कौ म्बाल-पव्वालाः" (२१)॥

णिहोडन्तो। अणिवारिअ। पाडिअ। "निन्नि-पत्योर्णि होडः" (२२)॥

दूमिअ। दूङो दूमः (२३)

दुमन्तो। धवलण "धवलेर्दुमः" (२४)॥ स्वराणां स्वराः" (४·२३८) बहुलम् इति दीर्घत्वमपि। दूमिअ।

तुलन्तेहि। ओहामन्तो। 'तुलेरोहामः" (२५)॥

ओलुण्डिर। उल्लुण्डावन्तो। विरे अन्तो। पल्हत्थाविअ। "विरिचेरो-लुण्डो-ल्लुण्ड-पल्हत्थाः" (२६)॥

आहोडि अ। विहोडि अ (ताडि अ) "तडेराहोड-विहोडौ" (२७)॥

मेलवणो। मीसिआहि। वीसालिआहि। "मिश्रेर्वीसाल-मेलवौ" (२८)॥ उद्धूलिअ। गुण्ठन्तो। 'उद्धलेर्गुण्ठः" (२६)

भामिआहि॥ तालिअण्टिर। तमाडन्तो। "भ्रमेस्ता लिअण्ट-तमाडौ" (३०)। नासविअ। हारविअ। विउडिअ। विप्पगालिअ। नासिअ। पला-वणो। "नशेर्विउड-नासव हारव-विप्पगाल-पलावाः" (३१)॥

**मण्डपिकामध्यारूढस्य नृपतेर्वर्णनम् २२-२६**

**(पञ्चभिः कुलकम्)**

अह दोवारिअ-दाविअ-नरवइ-दंसिअ-अणेइ-पाहुडओ।
आभरण-कन्ति-दक्खविअ-सुर-धणू दरिसिएभ-गई ॥२२॥

(राजा कुमारपाल स्वर्ण निर्मित मंडप में जाता है और वहाँ पर बैठ जाता है—यह पाँच गाथाओ द्वारा वर्णन किया जाता है)

**शब्दार्थ**—(अह) इसके बाद; (दोवारिअ-दाविअ) द्वारपाल के द्वारा बतलाये हुए; निवेदन किये हुए; (नरवइ) राजाओं द्वारा; (दंसिअ) प्रदर्शित की हुई (कुमारपाल की सेवा में प्रस्तुत की हुई); (अनेग-पाहुडओ) अनेक

भेंट (वाला—ऐसा राजा कुमारपाल —अर्थात् द्वारपाल द्वारा कुमारपाल का आगमन सुनकर उपस्थित अनेक राजाओं ने कुमारपाल की सेवा में भेंट-उपहार प्रस्तुत किये); (आभरण-कान्ति) (कुमारपाल द्वारा पहने हुए विभिन्न आभूषणों की कान्ति से); (दक्खविअ-सुर-धणू) दिखला दिया है अपने आपको सप्तवर्णीय इन्द्र धनुष के समान; जिसने; (ऐसा कुमारपाल) (दरिसिएभ-गई) (जो हाथी की चाल से चलता था; अतएव) जिसने प्रदर्शित की है हाथी की चाल को; ऐसा (राजा सभा में आकर बैठा)

उदउग्गिअ-रवि-तेओ उग्घाडिअ-ससिह्-जण-मणाणन्दो ।

संभाविओ उविन्दो इन्दो आसंघिओ अहवा ॥२३॥

शब्दार्थ—(उद-उग्गिअ-रवि-तेओ) उदय होने पर सर्वत्र फैले हुए—सूर्य के तेज के समान तेज है जिसका; (ऐसा कुमारपाल) (उग्घाडिअ) उद्घाटित—प्रकट किया है; (ससिह्-जण-मण) धनादि की अभिलाषा रखनेवाले मनुष्यों के मन में; (आनन्दो) आनन्द को; जिसने ऐसा; (धनार्थी को राजा द्वारा धन प्रदान करने से वे धनार्थी कुमारपाल से अत्यन्त प्रसन्न हैं) ऐसे दान-समय में वह कुमारपाल (उविन्दो) (जनता की दृष्टि में) (उपेन्द्र) (जैसा) (संभाविओ) प्रतीत हुआ; अनुमानित किया गया; (अहवा इन्दो) इन्द्र (जैसा); (आसंघिओ) प्रतीत हुआ—अनुमानित किया गया ।

उल्लालिअ-णेवत्थणमुत्थंघिय-कर-पुडं नमन्त-निवे ।

गुलुगुञ्छि अच्छि उप्पेलिअच्छिणो सणिअमिक्खन्तो ॥२४॥

शब्दार्थ—(उल्लालिअ) उठा करके एक बाजू से दूसरे बाजू पर रक्खा है; (नेवत्थणम्) उत्तरीयवस्त्र के अंचल को जिसने; (अर्थात् उत्तरीय वस्त्र को जिसने व्यवस्थित किया है) (उत्थंघिअ-कर-पुडं) जिसने दोनों हाथों को जोड़ करके कुछ उन्नत किये हैं; (गुलुगुञ्छि-अच्छि) जिसने अपनी आँख को (उपस्थित राजाओं को देखने की दृष्टि से) जरा उन्नत की है, ऐसा; (उप्पेलि अच्छिणो) (भय और आदर के कारण से) विस्फारित हैं आँखें जिनकी ऐसे; (नमन्त-निवे) प्रणाम करते हुए राजाओं को; (सणि अम्) धीरे से; (इक्खंतो) देखता हुआ (राजा कुमारपाल सभा मंडप में) बैठा ।

उन्नामिअ-भुमयाए चण्डारे पाहुडाइँ पेण्डविरो ।

नरवइ पट्ठविआइँ देवय-पट्ठाविआइँ च ॥२५॥

शब्दार्थ—(नरवइ-पट्ठविआइं) राजाओं द्वारा भेजी हुई; (च) और; (देवय-पट्ठाविआइं) (मन्त्र आदि से वशीकृत) देवताओं द्वारा भेजी हुई;

(पाहुडाइं) उपहारों को; (उन्नामिअ भुमयाए) कुछ (आँखों की) भौंओं को उन्नत करके; (इशारा करके) (चण्डारे) भण्डार में, (पेण्डविरो) रखने वाला (राजा कुमारपाल सभा-मडप में बैठा)।

वोक्कन्त-महामच्चो निवो अवुक्कन्त-पणइ-मण्डलिओ।
विण्णत्ति-दिन्न-कण्णो अहिट्ठिओ कणय-मण्डविअं ॥२६॥

**शब्दार्थ**—(वोक्कन्त महामच्चो) (जिसकी सेवा में बड़े-बड़े मंत्रीगण (कुछ) निवेदन कर रहे है; (ऐसा राजा) (अवुक्कन्त-पणइ-मंडलिओ) जिसकी सेवा में प्रेमी मांडलिक राजागण (कुछ) निवेदन कर रहे हैं (ऐसा राजा), (विण्णत्ति-दिन्न-कण्णो) (मंत्री और राजाओ की) विज्ञप्ति के प्रति-निवेदन के प्रति दिया है कान-जिसने; (ऐसा) (निवो) राजा कुमारपाल, (कणय-मडविअं) स्वर्णनिर्मित मंडप पर; (अहिट्ठिओ) बैठा।

**टिप्पण**—दाविअ। दसिअ। दक्खविअ। दरिसिए। "दृशेर्दाव-दस-दक्खवा, (३२)

उग्गिअ। उग्घाडिअ। "उद्घटेरुग्गः" (३३) ॥

ससिह। "स्पृहः सिहः" (३४)

सभाविओ। आसङ्घिओ। "संभावेरासङ्घः (३५) ॥

उल्लालिअ। उत्थङ्घिअ। गुलुगुञ्छिअ। उप्पेलिअ। उन्नामिअ। उन्नमेरुत्थङ्घोल्लाल-गुलुगुञ्छोप्पेला. (३६) ॥

पेण्डविरो। पट्ठविआइं। पट्ठाविआइं। "प्रस्थापेः पट्ठव-पेण्डवौ" (३७) वोक्कन्त। अवुक्कन्त। विण्णत्ति। "विज्ञपेर्वोक्कावुक्कौ" (३८)

पणमिर-पणइ-पणामिअ-दिट्ठी सो तत्थ अल्लिविअ-हरिसो।
अणचच्चुप्पिअ-हिअओ अप्पिअ-निव-खोहमासीणो ॥२७॥

**शब्दार्थ**—(पणमिर-पणइ) प्रणाम करने वाले प्रेमियों के प्रति; (पणामिअ-दिट्ठी) प्रदान की है दृष्टि को—जिसने ऐसा-कुमारपाल; (नमस्कार करने वालो को राजा ने देखा—यह तात्पर्य है); (तत्थ) वहाँ पर, अल्लिविअ हरिसो) (अपना दर्शन देने से) प्रदान किया है हर्ष (सभी सभाजनों के लिए जिसने ऐसा, कुमारपाल); (अणचच्चुप्पिअ-हिअओ) (जिसने गम्भीर होने के कारण से) अपने हृदय की बात को (बाहिर) प्रकट नहीं की है; ऐसा सो वह कुमारपाल, (अप्पिअ-निव-खोहम्) जिसने राजाओं के चित्त में क्षोभ उत्पन्न किया है; ऐसा (अर्थात् राजाओं के चित्त में यह दुविधा थी कि राजा कुमारपाल हम पर प्रसन्न है अथवा नहीं? हमें

कुछ आज्ञा प्रदान करेंगे अथवा नहीं ? ऐसी दुविधा जिन राजाओं के हृदय में कुमारपाल के कारण से थी; ऐसा राजा कुमारपाल); (आसीणो) उस मंडपिका पर बैठा।

टिप्पण—पणामिअ। अल्लिविअ। अणच्चवुप्पिअ। अप्पिअ। "अर्पेर-ल्लिव-चच्चुप्प पणामाः (३६)

जाविअ मुहुत्तमेगं पुरोहिओ जविअ-दुट्ठ-कलि-ललिओ।

दन्त-रुई - ओम्वालिअ - गयणो उच्चारही मन्तं ॥२८॥

शब्दार्थ—(एग-मुहुत्तम्) एक मुहूर्त; (जाविअ) व्यतीत करके; (जविअ-दुट्ठ-कलि-ललिओ) जिसने अपनी प्रवृत्ति से दुष्ट कलियुग की लीलाओं को नष्ट कर दिया है, (ऐसा पुरोहित का विशेषण) (दन्त-रुई-ओम्वालिअ-गयणो) अपने दांतो की कान्ति से व्याप्त कर दिया है आकाशप्रदेश को (ऐसे); (पुरो-हिओ) पुरोहित ने; (मन्तं) राजा के कल्याणार्थ मंत्र को, (उच्चारही) बोला (मंत्र का उच्चारण किया)।

टिप्पण—जाविअ। जविअ। "यापेर्जवः" (४०)॥

हार-प्पह-पव्वालिअ हिओ निवो पाविओ व्व अमएण।

पक्खोडिअ चमराहिं विकोसिअ अच्छीहि उवसरिओ ॥२९॥

शब्दार्थ—(हार-प्पह) नानाविध मोतियो वाले हारों की प्रभा से; (पव्वालिअ-हिओ) सरोबार=भीगा हुआ है हृदय जिसका, (ऐसा राजा) मानो (अमएण) अमृत से; (पाविओ व्व) भीगा हुआ है ऐसा (जो मालूम पडता है) ऐसा; (निवो) राजा कुमारपाल; (पक्खोडिअ-चमराहिं) (बार बार संचालन करने से) विकसित जैसे मालूम पडने वाले अथवा फैलाये हुए जैसे मालूम पडनेवाले; चामरों से; (विकोसि अच्छीहि) विकसित नेत्रों वाली महिलाओं द्वारा; (उवसरिओ) (वह राजा) अति नजदीक से सेवा किया गया (अर्थात् चँवर करने वाली वनिताएँ राजा के अति समीप में उपस्थित होकर उसकी सेवा चँवर आदि द्वारा कर रही थीं)।

टिप्पण—ओम्वालिअ। पव्वालिअ। पाविओ। "प्लावेरोम्वाल-पव्वालौ" (४१)

पक्खोडिअ। विकोसिअ। "विकोशेः पक्खोडः" (४२)

ओग्गालिर-वसहाणं वग्गोलिर-करहयाण वारम्मि।

रोमन्थ-भङ्ग-जणणो अहासि गम्भीर - तूर-रवो ॥३०॥

**शब्दार्थ**—(ओग्गालिर-वसहाणं) पगुरानेवाले (जुगाली करने वाले बैलों के); (और) (वग्गोलिर-करहयाणं) पगुराने वाले ऊँटों के; (आरम्भिम) समूह में; (रोमन्थ-भंग-जणणो) पगुराने की क्रिया में भंग-बाधा-उत्पन्न करने वाला (ऐसा) (गंभीर-तूर-रवो) गम्भीर बाद्यों की आवाज; (अहासि) हुई।

**टिप्पण**—ओग्गालिर। वग्गोलिर। रोमन्थ। "रोमन्थेरोग्गाल वग्गोलौ" (४३)

णुव्वन्तो सिरि-णिहुवय-सिरिमुम-कामय-सिरिं पयासन्तो।
विच्छोलिअ-भूमयाहिं राया विलयाहिं परिअरिओ ॥३१॥

**शब्दार्थ**—(सिरि-णिहुवय-सिरिम्) लक्ष्मी की इच्छा करनेवाले (विष्णु) की शोभा को; (णूव्वन्तो) प्रकाशित करता हुआ; (अर्थात् अपनी विभूति के बल पर अपने आपको विष्णु और शिव जैसा प्रतीत कराता हुआ, (विच्छोलिअ-भुमयाहिं) (जिन महिलाओं ने) अभीष्ट की इच्छा करने वालों को आधी आंख से देखने के लिए चलित किये हैं भौओं को ऐसी; (विलयाहिं) वनिताओं के द्वारा; (राया) वह राजा कुमारपाल; (परिअरिओ) परिवृत होता हुआ (अपने-अपने कृत्य करने के लिए वहाँ से अन्यत्र जाने के लिये निकला)।

**टिप्पण**—णिहुवय। कामय। "कमेर्णिहुवः" (४४)
णुव्वन्तो। पयासन्तो। "प्रकाशेर्णुव्वः" (४५)

अणकम्पिर-कर-वलिअ-त्थाले आरोविउं अदोलि-सिहं।
रङ्खोलिर-ताडङ्का वर-विलयारत्तिअं काही ॥३२॥

**शब्दार्थ**—(अणकंपिर) नहीं काँपनेवाले—स्थिर (ऐसे) कर हाथों द्वारा; (वलिअ) रखे हुए; (त्थाले) (रत्न-जडित सुवर्ण निर्मित) पात्र में; (रंखोलिर-ताडंका) (चंचलतायुक्त होने से) हिल रहे हैं दोनो कुण्डल जिसके; ऐसी; (वर-विलया-) वार-वनिता ने (वेश्या ने); (आरत्तिअं) सम्पूर्ण रात्रि तक बराबर जलता रहने वाला ऐसा दीपक, (आरोविउं) रख करके, (अदोलि-सिहं) जिस (दीपक) की शिखा स्थिर रहती है; ऐसी स्थिर बत्ती; (काही) की। (अर्थात् दीप जलाया)।

**टिप्पण**—विच्छोलिअ। अणकम्पिर। "कम्पेर्विच्छोलः" (४६)
वलिअ। अरोविउं। "आरोपेर्वलः" (४७)
अदोलि। रङ्खोलिर। दोले रङ्खोलः (४८)

जण-रञ्जणेहि राविउमुव्वीसं तत्थ पणमिर-निवेहि ।
परिवाडिअञ्जलीहिं से घडिआ कमल-कोस व्व ॥३३॥

**शब्दार्थ**—(जण-रंजणेहि) (नीति युक्त होने से) मनुष्यों को प्रसन्न रखनेवाले; (परिवाडिअञ्जलीहिं) जिन्होंने हाथ जोड रक्खे हैं ऐसे; (पणमिर-निवेहि) प्रणाम करते हुए ऐसे राजाओं द्वारा; (तत्थ) वहाँ मंडपिका में; (उव्वीसं) पृथ्वीपति कुमारपाल को; (राविउम्) प्रसन्न करने के लिये; (से) राजा के शिर के ऊपर-आकाश में; (कमल-कोस व्व) कमल-कोश के समान; (घडिया) (करबद्ध अंजलि) रची गई।

राजाओं की हाथ जोडने की पद्धति ऐसी थी कि संपुट भाग ऊर्ध्व-आकारवाला और अंगुलियाँ भी ऊर्ध्व आकार वाली जैसी बनाई हुई थीं जो कि कमल-कोश के समान मालूम पडती थी। ऐसी रचना सभी राजाओं ने मिलकर राजा कुमारपाल के सिर पर रची।)

**टिप्पण**—रञ्जणेहि। राविउ। "रञ्जे रावः" (४९)॥

परिवाडिअ। घडिआ। 'घटेः परिवाडः" (५०)

कणय-परिआलिएहिं रयणाहरणेहि वेढिअङ्गुलिआ।
विकिणण-किणण-छइल्ला पुरो निविट्ठा महाजणिआ ॥३४॥

**शब्दार्थ**—(कणय-परिआलिएहिं) स्वर्ण से परिवेष्टित अर्थात् निर्मित; (रयण-आहरणेहि) रत्न जिनमें जड़े हुए हैं; ऐसी अंगूठियाँ रूप आभूषणों से; (वेढि अंगुलिआ) जिनकी अंगुलियाँ परिवेष्टित हैं ऐसे; (महाजणिआ) महा-जन=व्यापारी (विकिणण-किणण-छइल्ला) बेचने और खरीदने के काम में जो अत्यन्त निपुण है ऐसे महाजन; (पुरो) राजा कुमारपाल के आगे (हम आपके राज्य में अत्यन्त सुखी है ऐसी ही अन्य बातें निवेदन करने के लिये; (निविट्ठा) बैठे।

**टिप्पण**—परिआलिएहिं। वेढिअ। "वेष्टे परिआलः (५१)॥

विक्केन्तोद्धरिआ इव भायन्ता अवि अबीहिरा निच्चं।
भीएहि सहचरेहिं निव-दूआ दूरमल्लीणा ॥३५॥

**शब्दार्थ**—(भीएहि) (राजा के प्रताप से) डरे हुए; (सहचरेहिं) सह-चरों—सहयोगियों के साथ; (निव-दूआ) (विभिन्न देशों के) राज-दूत; (दूरम्) दूर से; (अल्लीणा) आये हुए; (अर्थात् राजा-आज्ञा प्राप्त होते ही सेवा में उपस्थित हो जायगें; इस दृष्टि से प्रतीक्षा करते हुए समीप नहीं आये)

(विक्केन्त) (जैसे) बेची जाने योग्य (वस्तु); (उद्धरिआ) बाहिर निकाल कर पृथक् ही (ग्राहक के दृष्टि-योग्य स्थान पर) रक्खी जाती है; (इव) (इसके) समान ही; (भायन्ता अवि) (वे राजदूत-दूरस्थ) डरते हुए भी; (निच्चं) सदा; (अबीहिरा) (राज-कृपा के ज्ञाता होने के कारण से) नहीं डरनेवाले; ऐसे राजदूत दूरस्थ थे।

**टिप्पण**—विकिणण। किणण। विक्केन्तो। "क्रिय. किणो वेस्तु क्के च" (५२) इति क्रीणातेः किणो वा वेः परस्य तु द्विरुक्तः क्के। चकारात् किणश्च। णेरिति निवृत्तम्॥

भायन्ता। अबीहिरा। "भियो भा-बीहौ" (५३) बाहुलकात् क्वचिन्न। भीएहि॥

अल्लीणा। "आलीङोऽल्ली" (५४)

भत्ति-णिरिग्घिअ-हिअआ मउलि-णिलीअन्त-पाणि-संपुडया।
निव - पय - कमल- णिलुक्कन्त-लोअणा सा सहा आसि॥३६॥

**शब्दार्थ**—(भत्ति-णिरिग्घिअ-हिअआ) हृदय- भक्ति-भावपूर्वक सलग्न है; (ऐसी) (सभा) (मउलि) मस्तक पर; (णिलीअन्त-पाणि-संपुडया) (सभी सभासदो ने राजा के प्रति) अपने दोनो हाथ जोड़कर (भक्ति और श्रद्धा-प्रदर्शनार्थ) लगा रक्खे है, (ऐसी सभा) (निव पय-कमल) राजा के चरण-कमलों में; (णिलुकन्त-लोअणा) (प्रसन्नता प्राप्ति की दृष्टि से) जमा रक्खे है लोचन, जिसने ऐसी, (सा) (सहा) वह (उपरोक्त गुणोंवाली) सभा, (आसि) थी।

आसि मणि-वेइ आसुं लुक्कन्तो मणि-महीएं लिक्कन्तो।
ल्हिक्कन्तो मणि-थम्भेसु सय-गुणो पडिकिदीइ जणो॥३७॥

**शब्दार्थ**—(मणि वेइ आसुं) मणिनिर्मित वेदिकाओं मे; (लुक्कन्तो) जडे हुए के समान प्रतीत होने वाला, (मणि-महिए) मणि-निर्मित आँगण में; (लिक्कन्तो) जडे हुए के समान प्रतीत होने वाला; (मणि-थम्भेसु) मणि-निर्मित स्तंभो में; (ल्हिक्कन्तो) जडे हुए के समान प्रतीत होनेवाला; (जणो) मनुष्य; (पडिकिदीइ) अपनी प्रतिछाया के कारण से; (सयगुणो) सौ गुणा; (आसि) (दिखाई दे रहा) था।

निवइ-निलीइर-नयणा अविराय-सिरी विलीइर जुआणा।
अलि-रुञ्जिअ-जइ-रुण्टिअ-किङ्किणि - नीवीउ आसीणा॥३८॥

**शब्दार्थ**—(निवइ-निलीइर-नयणा) जिन (स्त्रियों की आंखें राजा के प्रति लगातार देखने की दृष्टि से) जमी हुई है; ऐसी; (अविराय-सिरी) जिनके शरीर की शोभा में किसी भी प्रकार की कमी नहीं हुई है; ऐसी; (विलीइर-जुआणा) (जिन स्त्रियों को देखते ही) युवक-गण अपना धैर्य खो बैठते हैं और पिघल जाते हैं, ऐसी; (अलि-रुञ्जिअ) भ्रमरों के गुंजारव को; (जइ रुण्टिअ) जिनका गुञ्जारव (माधुर्य और सरसता की दृष्टि से) जीत लेता है; ऐसी; मधुर ध्वनिवाली, (किंकिणि-) छोटी छोटी घुघरियाँ लगी हुई है, जिनमें ऐसे; (नीवीउ) नाडेवाली-स्त्रियां; (आसोणा) (राजा कुमारपाल के पास में आकर के) बैठीं ॥

**टिप्पण**—णिरिग्घिअ । णिलीअन्त । णिलुक्कन्त । लुक्कन्तो । लिक्कन्तो । लिहक्कन्तो । निलीइर । "निलीङ् णिलीअ-णिलुक्क-णिरिग्घ लुक्क-लिक्क-लिहक्काः (५५)

अविराय । विलीइर । "विलीङ् विरा ।" (५६)

रुञ्जिअ । रुण्टिअ । "रुके रुञ्ज-रुण्टौ" (५७)

सग्गे वि हुणिअ-विहवा असुणिअ-दोसा तिलोअ-सिरि-धुवणी ।
कुमर-नरिंद - सहा स धुणिआरि मणोरहा हूआ ॥३९॥

**शब्दार्थ** – (सग्गे वि) स्वर्ग में भी; (हुणिअ-विहवा) (जिसके) वैभव की चर्चा सुनी गई है, अर्थात् जो तीनों लोकों में वैभव की दृष्टि से विख्यात है, ऐसी, (असुणिअ-दोसा) जिसके दोष अथवा त्रुटियाँ कभी भी नही सुने गये हैं, ऐसी, (तिलोअ-सिरी-धुवणी) (जो सभा) तीनों लोक में स्थित लक्ष्मी-वैभव को अपने वैभव द्वारा तिरस्कृत कर देती है ऐसी, (धुणिअ-अरि-मणोरहा) जो शत्रुओ के मनोरथो को परास्त कर देती है ऐसी; (सा) वह (कुमर-नरिंद-सहा) कुमारपाल राजा की सभा, (हूआ) (उपरोक्त गुणोवाली; सिद्ध हुई (या थी।)

**टिप्पण**—हुणिअ । असुणिअ । "श्रुटेर्हणः" (५८) ॥

धुवणी । धुणिअ । "धूगेर्धुवः" (५९)

हुत्ताणन्दो अहुवन्त - संसओ निवइमुब्भुअन्त-मई ।
पहुवन्तो अपरिहवो विण्णविही संधिविग्गहिओ ॥४०॥

**शब्दार्थ**—(हुत्त आनन्दो) (राजा के आगे आत्म-अभिप्राय प्रकट करने से) उत्पन्न हुआ है आनन्द जिसको, ऐसा; (अहुवन्त-संसओ) (अपना और शत्रु का सैन्य-बल जानने के कारण से सन्धि अथवा युद्ध वार्ता के प्रति) नहीं अवधिमान संशयवाला; ऐसा; (उब्भुअन्त-मई) (प्रतिभाशाली होने के

कारण से) कठिन विषयों में तत्काल उत्पन्न हो जाती है बुद्धि जिसकी ऐसा; (पहुवन्तो) (अपनी शब्द-चतुराई द्वारा) दूसरों पर प्रभाव जमानेवाला; (ऐसा प्रधान पुरुष); (अपरिहुवो) (कहीं पर भी तिरस्कृत नहीं होने वाला); ऐसा; (संधि-बिग्गहिओ) (अन्य राज्यों से) सन्धि और विग्रह करने के कार्य पर नियुक्त—ऐसे प्रधान पुरुष ने; (निवइम्) राजा कुमारपाल को, (विण्णविही) कहने योग्य सभी बात निवेदन कर दी।

टिप्पण हूआ। होन्त। अहुवन्त । अपरिहुवो। "भुवेर्हो-हुव हवाः (६०) क्वचिद् अन्यदपि। उब्भुअत।

**विज्ञप्तिका ४१—१०६—**

देव विवक्खीहुन्तो णिव्वडिअ बलेण सो पहुप्पन्तो।
हूओ कुङ्कुण नाहो जहा - तहा कुणसु अवहाणं ॥४१॥

(यहां से लगाकर १०६ गाथा तक राजा के युद्धसंधि विषयक मंत्री ने जो जो बयान किया, उसका वर्णन है। इसमें कुंकुण नरेश के साथ युद्ध की घटना का भी वर्णन उक्त मंत्री के मुख से कवि ने कहलाया है)—

**शब्दार्थ**—(देव) हे देव ! (विवक्खीहुन्तो) विपक्षी-विरोधी होता हुआ; (णिव्वडिअ-बलेण) जिसका सैन्यबल पृथक् है, और समर्थ है, इस कारण से, जो (पहुप्पन्तो) समर्थ-शील है; ऐसा (सो) वह; (कुंकुण नाहो) कुंकण देश का राजा, (जहा) जैसा; (हूओ) हो गया है, (तहा) वैसा; (अवहाणं) अवधान = ध्यानपूर्वक सुनने का कार्य; (कुणसु) आप करे। (यह घटना ध्यान से सुने)।

**टिप्पण**—हुन्तो। "अविति हु" (६१)
णिव्वडिअ। "पृथक्स्पष्टे णिव्वडः" (६२)" ॥
पहुप्पन्तो। "प्रभौ हुप्पो वा" (६३) पक्षे पहवन्तो ॥
हूओ। "क्ते हू' (६४)

**षड्भिः कुलकम्**—

दूर ट्ठिआहि करिउं णिआरिअं सुर - वहूहि दीसन्ता।
संदाणन्ता अइनिट्ठुहावणा वेरि सुहडाण ॥४२॥

**शब्दार्थ**—(णिआरिअ) आधी आंख से देखने रूप कार्य को; (करिउं) करके (आधी खुली और आधी बंद इस रीति से आंख द्वारा देख करके) (दूर-ट्ठिआहि) (आकाश में ठहरी हुई होने के कारण से) दूर स्थित; (ऐसी) (सुर-वहूहि) देव वधुओं द्वारा = देवांगनाओं द्वारा; (दीसंता) (जो योद्धा)

देखे आ रहे हैं (संवाण-आ) (जो योद्धा) (कठिनाई में धैर्य का) सहारा लिया करते हैं (वैरि-सुहडाण) शत्रुओं के सुभटों का; (जो योद्धा) (अइ निट्ठुहावणा) युद्ध क्षेत्र में पूरी रुकावट कर देते हैं; (ऐसे तुम्हारे) ये शूर-वीर योद्धा हे राजन् ! कुंकुण देश को पहुंचे हैं।

वावम्फिरा कलासुं अमोघ निब्बोलणं पयासन्ता।
अपल्लिर असि-फलया णीलुञ्छत्ता रिउ-दलम्मि ॥४३॥

**शब्दार्थ**—(कलासुं) शस्त्र-अस्त्र सम्बन्धी कलाओं में; (वावम्फिरा) परिश्रम—अभ्यास करनेवाले; (अमोघ-णिब्बोलण) क्रोध से होठ को मलीन करने रूप कार्य को—सफल रूप में, (पयासन्ता) प्रकाशित करते हुए; (अप-यल्लिर) अशिथिला और शीघ्रतापूर्वक; (असि-फलया) ठीक रीति से पकड रक्खी है तलवार की मूंठ—जिन्होंने ऐसे; (रिउ-दलम्मि) शत्रुओं के समूह में; (णीलुञ्छन्ता) (गिरावट अथवा भयपूर्ण दरार विभाजन) करते हुए; (ऐसे योधा कुंकण देश को पहुंचे।)

कम्मन्त-मेत्त-मन्निअ-रिउणो गुललन्त-सामिणो विजये।
दाउं वसुमझरन्ता पहु-आदेसं च झूरन्ता ॥४४॥

**शब्दार्थ**—(कम्मन्त-मेत्त-) हजामत बनानेवाला नाई मात्र; (मन्निअ-रिउणो) माना है शत्रुओं को, (जिन्होंने ऐसे योधा) (सामिणो-विजये) अपने स्वामी राजा कुमारपाल की विजय के लिये; (गुललन्त) जो अपने देवों की अनुनय-विनय चाटुकारी कर रहे है ऐसे, (वसुम्) (चारण-भाटों को) धन; (दाउं) दे करके; (अझरन्ता) (जो अपने आपकी स्थिति को) भूल रहे हैं (और दानी बन रहे हैं—ऐसे योधा) (च) और; (पहु-आदेस) प्रभु-राजा कुमार-पाल की आज्ञा को; (झूरन्ता) (तत्काल ही पुनः) याद कर रहे हैं, मन में विचार कर रहे हैं; (ऐसे योधा—हे राजन् ! कुंकुण में पहुंच गये हैं)

जुद्धेण भरावन्ता राम-कहं भारहं भलावन्ता।
निअ-कुल-कमं लढन्ता सुमरन्ता खत्तिआचारं ॥४५॥

**शब्दार्थ**—(जुद्धेण) युद्धद्वारा; (रामकहं) राम-रावण युद्ध कथा को; (भरावन्ता) स्मरण कराते हुए; (भारहं) कौरव-पाण्डव-युद्ध रूप महाभारत को; (भलावन्ता) स्मरण कराते हुए; (निअ-कुल-कमं) अपने कुल-वंश के क्रम को=परम्परा को; (लढन्ता) स्मरण करते हुए; (खत्तिआचारं) क्षत्रियोचित आचरण को; (सुमरन्ता) स्मरण करते हुए; ऐसे योधा हे राजन् ! कुंकुण में पहुंच गये हैं।

वीर-वरणं सरन्ता पयरन्ता सामिणो पसायं च ।
बावण्ण - वीर - कह - विम्हरावणा वइर-पम्हुहणा ॥४६॥

**शब्दार्थ**—(वीर-वरण) (युद्ध-क्षेत्र में अपने अनुरूप शक्ति वाले) वीर के साथ युद्ध करने रूप बात को; (सरन्ता) स्मरण करते हुए; (सामिणो) अपने स्वामी राजा कुमारपाल की; (पसाय) प्रसन्नता को; (पयरन्ता) स्मरण करते हुए; (च) और; (बावण्ण-वीर-कह) बावन वीरो की कथा को; (विम्ह-रावणा) (जनता द्वारा) (अपने युद्ध कौशल से) भुलाते हुए; (वइर) अपने स्वामी का इनके साथ वैर है; इस बात को; (पम्हुहणा) स्मरण करते हुए; (ये योधा हे राजन् ! कुंकुण देश मे पहुंच गये है)

पम्हुसिअ-अन्न-कज्जा विम्हारिअ-वाणरिन्द-बल-ललिआ ।
वीसारिअ रिउ-मन्ता तुह जोहा कुंकुणं पत्ता ॥४७॥

**शब्दार्थ**—(पम्हुसिअ-अन्न-कज्जा) (युद्धोन्माद होने के कारण से) अन्य सभी कार्य जो; (योधा) भूल गये हैं; (ऐसे) (विम्हारिअ-वाणरिन्द-बल-ललिआ;) जिन योधाओं ने अपने युद्ध-कौशल से बानरो के राजा-सुग्रीव के बल-वीर्य पराक्रम की स्फूर्ति को भुला दिया है; ऐसे ये योधागण; (वीसारिअ-रिउ-मन्ता) जिन योधाओ ने शत्रुओं की मंत्रणाओ को (अपने पराक्रम से) भुला दिया है, ऐसे हे राजन् ! (तुह) तुम्हारे (जोहा) ये योधागण; कुकुणं) कुंकुण देश को; (पत्ता) पहुँच गये हैं।

**टिप्पण**—कुणसु । करिउ । "कृगे: कुण." (६५) कृगेरित्यधिकार: उत्तरसूत्राष्टके ज्ञेय. ॥

णिआरिअं । "काणेक्षिते णिआर:" (६६)

संदाणन्ता । अइनिट्ठुहावणा । "निष्टम्भावष्टम्भे णिट्ठुह-संदाणं" (६७)

वावम्फिरा । "श्रमे वावम्फ:" (६८)

णिव्वोलणं । "मन्युनौष्ठ मालिन्ये णिव्वोल: (६९)

अपयल्लिर । शैथिल्यलम्बने पयल्ल: (७०)

णीलुञ्छन्ता । "निष्पाताच्छोटे णीलुञ्छ:" (७१)

कम्मन्त । "क्षुरे कम्म:" (७२)

गुललन्त । "चाटौ गुलल:" (७३)

अक्षरन्ता । झूरन्ता । भरावन्ता । भलावन्ता । लढन्ता सुमरन्ता । सरन्ता । पयरन्ता । विम्हरावणा । पह्यु हुणा । "स्मरेर्झर-झूर-भर-भल-लढ-विम्हर-सुमर-पयर-पम्हुहाः" (७४) पम्हुसिअ । विम्हारिअ । वीसारिआ" । विस्मुः पम्हुस । विम्हर-वीसराः" (७५)

सीह-रव-पोक्कणा ते कोक्कन्ता किं पि सच्च-वाहरणा ।

उव्वेल्लिर-तुरय-पयल्लिरेभ-चडिआ पसरिआ अ ॥४८॥

**शब्दार्थ**—(सीह-रव-पोक्कणा) सिंह की गर्जना की भांति उच्च स्वर से दहाडते हुए; (किं पि) (युद्धोन्माद से) कुछ भी (जैसे कि क्या शत्रु मर गये हैं—भग गये हैं—आदि रूप से); (कोक्कन्ता) बोलते हुए-गर्जारव करते हुए, (सच्च-वाहरणा) सत्य बात को बोलनेवाले; (उव्वेलिर तुरय-) शीघ्रता पूर्वक चलनेवाले घोडों पर; और (पयल्लिर-इभ) शीघ्रतापूर्वक चलने वाले हाथियों पर; (चडिआ) चढे हुए; (ते) वे (तुम्हारे योधा) (पसरिआ) (शत्रु-का जैसा सैन्य-व्यूह था, उसको तोडने के लिये-उस को घेरने के लिये—उसी के अनुसार); चारो ओर फैल गया।

**टिप्पण**—पोक्कणा । कोक्कन्ता । वाहरणा । "व्याहृगेः कोक्क-पोक्कौ" (७६)

उव्वेल्लिर । पयल्लिर । पसरिआ । "प्रसरेः पयल्लोवेल्लौ" (७७) ॥

अह-महमहन्त-णीहरिअ-मद-जले सिन्धुरम्मि चडिऊण ।

ठाणाओ नीलिओ कुङ्कुणाहिवो नीसरन्त-बलो ॥४९॥

**शब्दार्थ**—(अह) अथ (आपकी सेना के वहाँ पहुँचने पर), (महमहन्त) जिसकी गध चारो ओर मघमघायमान हो रही है, ऐसा, (णीहरिअ-मद-जले) झर रहा है मदरूप जल जिससे ऐसे; (सिन्धुरम्मि) हाथी पर; (चडि-ऊण) चढ करके, (नीसरन्तबलो) जिसके पीछे-पीछे सेना निकल रही है; ऐसा; (कुंकुणाहिवो) कुंकुणदेश का राजा—मल्लिकार्जुन; (ठाणाओ) अपने नगर से; (नीलिओ) निकला (युद्ध के लिए प्रस्थान किया।)

**टिप्पण**—महमहन्त । "महमहो गन्धे" (७८)

वरहाडिआ गढाओ रण-धाडिअ-रक्खणा भडा तस्स ।

जग्गिअ खग्गा रण-जागरा य आअड्डिआ तत्तो ॥५०॥

**शब्दार्थ**—(गढाओ) दुर्ग से; (वरहाडिआ) बाहिर निकले हुए; (रण-धाडिअ-रक्खणा) कायरतावश युद्ध से भागने वाले सैनिकों की चौकसी करने-

वाले; (जग्गिअ-खग्गा) (युद्ध करने के लिये जिन्होंने) तलवारों को म्यान से बाहिर निकाल ली है और जो तलवार तानकर खड़े हुए हैं; ऐसे; (रण-जागरा) युद्ध करने के लिये जो हर प्रकार से सावधान खड़े हैं; ऐसे, (तस्स) उस कुंकुण देश के राजा के; (भडा-) भट; (तत्तो) इसके बाद अर्थात् युद्ध की तैयारी करने पर, (आअड्डिआ) परस्पर में युद्ध करने के लिए प्रवृत्त हो गये (युद्ध प्रारम्भ हो गया)।

टिप्पण—णीहरिअ। नीलिओ। नीसरन्त। वरहाडिआ। धाडिअ। "निः सरेर्णीहर-नील-धाड-वरहाडाः" (७९)॥

जग्गिअ। जागरा। जाग्रेर्जग्गः" (८०)

समरम्मि वावरन्ता साहट्टिअ - पर-बला-असंवरिआ।
अणसाहरिअ - प्पेम्मामरीहि सन्नामिआ वरिउं ॥५१॥

शब्दार्थ—(समरम्मि) युद्ध में; (वावरन्ता) एक दूसरों से भिडे हुए; (साहट्टिअ-पर-बला) (जिन कुमारपाल के योधाओं ने) (प्रबलतम आक्रमण करने के कारण से) शत्रु की सेना को (आत्म-रक्षा के लिये एक ही स्थान पर) समूह-बद्ध कर दिया है; इकट्ठे कर दिया है; (अर्थात् चारों ओर से चोट पडने के कारण से आत्म रक्षार्थं भयभीत होकर जो शत्रु-सेना एकत्र-सिमटसी गई है,) ऐसे (वे कुमारपाल के योधा थे), (असवरिआ) (जिनमें विनाश का भय नहीं रहा है अतएव जो) इच्छानुसार इधर-उधर विचरण कर रहे हैं (ऐसे कुमारपाल के योधा थे); (अणसाहरिअ-प्पेम्मा) जिनका प्रेम प्रकट रूप से मालूम पड रहा है (यह विशेषण उन देवांगनाओं का है; जो कि आकाशस्थ होकर कुमारपाल के वीरों का युद्ध कौशल देख रही थीं और जिनके प्रति प्रसन्नतापूर्वक अपना अनुराग प्रकट कर रही थी; ऐसी); (अम-रीहि) देवांगनाओं द्वारा; (वरिउं) वरण करने के लिये—उन्हें अपना पति बनाने के लिये; (सन्नामिआ) (वे योधा) अंगीकृत कर लिये गये थे।

टिप्पण—सन्नामिआ। आदरिअ। "आदृगेः सन्नामः" (८३) सारन्ते। पहरिउं। "प्रहृगेः सारः।" (८४)

आदरिअ-वीर-वरणा मारन्ते पहरिउं पयट्टा व।
अण ओहिअ भड-माणा ओरसिआ इव सिवस्स गणा ॥५२॥

शब्दार्थ—(आदरिअ-वीर-वरणा) इस शत्रु सेना के साथ मुझे युद्ध करना ही चाहिये; ऐसी जिन्होंने प्रतिज्ञा की है; (ऐसे वे कुमारपाल के योधा

थे"; (वारन्ते) जो प्रहार करते थे; उन्हीं के प्रति पुनः (पहरिउं) प्रहार करने के लिये; (पयट्टा) जो प्रवृत्त होते थे; (ऐसे वे कुमारपाल के योद्धा थे) (अण-ओहिअभड-माणा) जिनका सुभट बनाने का अभिमान कभी भ्रष्ट नहीं होता था; (अर्थात् जो कभी कायरता प्रदर्शित नहीं करते थे; (ऐसे कुमारपाल के योद्धा गण थे) (ऐसी युद्ध प्रणाली मानव-मात्र द्वारा असंभव सी प्रतीत होती थी; अतः यह घटना ऐसी मालूम पडती थी कि मानो;) (सिवस्स गणा) शिवजी के गण; (ओरसिआ इव) मानों (स्वर्ग से पृथ्वी पर युद्धार्थ) उतरे हों।

टिप्पण— आअड्डिआ। वावरन्ता। "व्याप्रेराअड्डः" (८१)॥

साहट्टिअ। असंवरिआ। अणसाहरिअ। 'संवृगेः साहर-साहट्टौ (८२)

ओअरिअ दीहीआओ अचयन्तीकय-तरन्त सुहडेहिं।
तीरन्ताण वि पारन्तएहिं तेहिं कयं जुज्झं ॥५३॥

शब्दार्थ—(अचयन्तीकय) शक्तिहीन बनाये हुए; (तरन्त) किन्तु जो शक्तिशाली है, ऐसे (सुहडेहिं) वीरों द्वारा (शक्तिशाली होने पर भी जो शक्तिहीन बना दिये गये हैं ऐसे वीरों द्वारा), (तीरन्ताण वि) शक्तिशालियों के मध्य में भी, (पारन्तएहिं) शक्तिशालियों द्वारा; (तेहिं) उनके द्वारा, (दीहि आओ) छोटी-छोटी बावडियों से (ओ अरिअ) उतर करके; (जुज्झं) युद्ध; (कयं) किया गया। (रणवाद्य को सुनकर के स्नान करना भी छोड़ करके युद्ध-क्षेत्र में उतर पडे)

टिप्पण— अणओहिअ। ओरसिआ। ओअरिअ। "अवतरेरोह-ओरसौ" (८५)

सक्कन्तो अण थक्किअ-सलहिअ-सर वरिसणो निवो ताण।
मणि-खचिअ-कणय-वेअडिअ-माढिओ पहरिउं लग्गो ॥५४॥

शब्दार्थ—(सक्कन्तो) अन्य वीरों की अपेक्षा से जो अधिक शक्तिशाली है; (अणथक्किअ-सलहिअ) जिसकी बाण-वर्षा सर्वोत्कृष्ट है और प्रशंसनीय है ऐसी; जिसकी (सर-वरिसणो) बाणों की वर्षा करने की पद्धति है; ऐसा; (मणि-खचिअ) मणिओं से जडा हुआ (और) (कणय-वेअडिअ) स्वर्ण से मढा हुआ (ऐसे) (मढिओ) कवचवाला (ऐसा वह) (निवो) कुंकुण-नरेश; (ताण) उन कुमारपाल के वीरों के प्रति; (पहरिउं) प्रहार करने के लिये; (लग्गो) संलग्न हुआ; (प्रहार करने लगा।)

**टिप्पण**—अचयन्तीकय। तरन्त। तीरन्ताण। पारन्तएहिं। सक्कन्तो।
"शकेश्चय तर-तीर-पाराः" (८६)
अणथक्किअ। "पक्कस्थक्कः" (८७)
सलहिअ। "श्लाघः सलहः" (८८)
खचिअ। वेअडिअ।" खचेर्वेअडः" (८९)

दिन्नम सोल्लिअ-मंसासणाण अणपउलिअं तओ मंसं।
अरि - पयण - पयावेणं तेणं सर-मिल्लिरेण रणे ॥५५॥

**शब्दार्थ**—(अरि-पयण-पयावेणं) जिसका प्रताप शत्रुओं को जलानेवाला है पीडा देने वाला है, ऐसे प्रतापी; (कुंकुण नरेश द्वारा;) (सर-मिल्लिरेण) बाणों को छोडने वाले, (तेणं) उस कुंकुण नरेश द्वारा; (रणे) युद्ध में; (तओ) (बाण छोडने के बाद), (असोल्लिअ-मंस-असणाण) बिना पकाया हुआ; (मंसं) मांस; (दिन्नम्) प्रदान किया गया।

(कुकुंण नरेश के बाणों से कुमारपाल के अनेक सैनिक मारे गये और उनका मांस गीधों ने खाया)

**टिप्पण**—असोल्लिअ। अणपउलिअं। पयण। "पचेः सोल्ल-पउलौ" (९०)

उस्सिक्किअ-सङ्केणं पच्छा अवहेडिउं निअं पि दलं।
अणछड्डिअ-कुल-धम्मं सीह-झुणी तेण रेअविओ ॥५६॥

**शब्दार्थ**—(उस्सिक्किअ-संकेणं) (शत्रु पक्ष के बल का भय छोड करके) शंका को छोड दी है जिसने; (ऐसे; कुंकुण नरेश द्वारा); (निअदलं पि) अपने दल को भी, (पच्छा) पीछे (बहुत दूर) (अवहेडिउं) छोड करके, (अपनी सेना से बहुत दूर अकेला ही आगे निकल करके) (अण-छड्डिअ-कुल-धम्म) जिसने अपने कुल-धर्म को नहीं छोडा है; (ऐसे) (तेण) उस (पूर्वोक्त स्थितिवाले) कुंकुणनरेश द्वारा, (सीह-झुणो) सीह ध्वनि (रेअविओ) छोड़ी गई (अर्थात् सिंह-गर्जना करता हुआ बोला, मैं यमराज की तरह तुम्हारे सामने उपस्थित हो गया हूं।

णिल्लुञ्छिअ-भय-पसरो धंसाडिअ-भयमिभं समारूढो।
मुञ्चन्तो बाणे णिच्चलीअ सो कोह-दुहिअप्पा ॥५७॥

**शब्दार्थ**—(णिल्लुञ्छिअ-भय-पसरो) जिसके हृदय से भय का प्रसार निकल गया है अर्थात् जो मुक्तभय हो गया है; ऐसा; (धंसाडिअ-भयम्) जिसका भय (शस्त्रास्त्र की वर्षा मे भी छूट गया है; ऐसे निर्भीक; (इभ)

हाथी पर; (समारूढो) चढ़ा हुआ (वह कुंकुण नरेश) (कोह-दुहिअप्पा) क्रोध से दुःखी है आत्मा जिसकी; (क्रोधाग्नि से संतप्त है शरीर जिसका; ऐसा (सो) वह कुंकुण नरेश (बाणे) बाणों को; (मुञ्चन्तो) धारा-प्रवाह रूप से) छोडता हुआ; (णिच्चलीअ) (चिन्ता रूप) दुःख को ही उसने छोड दिया। (युद्धकाल मे उसे किसी भी प्रकार की दुःखात्मक-स्मृति नहीं रही।)

**टिप्पण**—मिल्लिरेण । उस्सिक्किअ । अवहेडिडं । अणच्छड्डिअ । रेअविओ । णिल्लञ्छिअ । घंसाडिअ । मुञ्चन्तो "मुचेश्छड्डावहेड-मेल्लो-स्सिक्क-रेअव-णिल्लुञ्छ धसाडाः । (९१)

निच्चलीअ । "दुःखे निच्चलः" (९२)"

जूरवणेहि उमच्छन्तेसु जय-सिरि अवञ्चिओ समरे ।

नाह अवेह विरेहि पाइक्केहि न वेलविओ ॥५८॥

**शब्दार्थ**—(उमच्छन्तेसु) ठगने वालो के मध्य में, (जूरवणेहि) ठगने-वालों के द्वारा; (अर्थात् कपटपूर्ण युद्ध करने पर भी;) (समरे) युद्ध में (जय-सिरि अवञ्चिओ) जयश्री से नहीं ठगा गया, (अर्थात् कुंकण नरेश से विजय नहीं प्राप्त हुई। (हे नाह !) हे नाथ ! कुमारपाल ! (संधि-विग्रह अधिनायक पुरुष कुमारपाल से कहता है हे नाथ !) (अवेहविरेहि) नही ठगनेवाले; (पाइक्केहि) पैदल सैनिकों द्वारा, (भी वह राजा) (न वेलविओ) नहीं ठगा गया। (अर्थात् हे राजन् ! वह कुंकुण नरेश छल युद्ध में और प्रकट युद्ध मे दोनो ही रीति-से नही जीता गया; किन्तु उसी की जीत हुई; ऐसा निवेदन वह अधिनायक राजा की सेवा में कर रहा है।)

उग्गहिअ-जय-पइन्नो अवहिअ-वूहम्मि गुज्जर-दलम्मि ।

विडविड्डीअ पएसं तक्कालं रइअ-रोमञ्चो ॥५९॥

**शब्दार्थ**—(उग्गहिअ-जय-पइन्नो) जिसने जय-प्राप्त करने की प्रतिज्ञा की है, ऐसे कुंकण नरेश ने, (अवहिअ-वूहम्मि) रचा है व्यूह जिसमें ऐसे; (गुज्जर-दलम्मि) गुर्जर देश की सेना में (तक्काल) उस समय में (युद्ध के समय में) (रइअ-रोमञ्चो) पुलकित हो गये रोमाच जिसके ऐसे उस कुंकुण नरेश ने (पएसं) (अपनी सेना के प्रवेश करने और युद्ध करने के हेतु) प्रदेश स्थान=(अवकाश) (विडविड्डिअ) रचा डाला अर्थात् जगह प्राप्त करली।

सारविए रण-छेत्ते उवहत्थिअ-आउहेहिँ जुज्झन्तो ।

केलाइ आउहो सो निअं समारीअ-जस लच्छि ॥६०॥

**शब्दार्थ**—(रण-छेत्तं सारविए) रण क्षेत्र की (लकड़ी कांटा पत्थर आदि को हटाकर) अच्छी तरह से रचना करने पर (केलाइअ आउहेहिं) अच्छी तरह से रचना की है हथियारों की अपने लिये; ऐसा वह कुंकुण नरेश; उवहत्थिअ आउहेहिं। समारचित हथियारों से (जुज्झन्तो) युद्ध करता हुआ (सो) कुंकुण नरेश ने (निअ) अपनी निज की; (जसलच्छि) यशलक्ष्मी की (समारीअ) अच्छी तरह से रचना की (अर्थात् शत्रु की व्यूह रचित सेना में अपनी सेना के लिये स्थान तैयार करके सुसज्जित हथियारों से लडते रहने से उस कुंकुण नरेश को महती यश की प्राप्ति हुई।

**टिप्पण**—जूरवणेहि। उमच्छन्तेसु। अवञ्चिओ अवेहविरेहि। वेलविओ। "वञ्चेर्वेहव वेलव-जूरवोमच्छाः (९३) उग्गहिअ। अवहिअ। विडविड्डी अ। रइअ। -'रचेरुग्गहा वह विडविड्डाः" (९४)

पहु-कज्ज-समारचणेण सिञ्चिओ तुह बलेण बाणेहिं।

सीभर-सिम्पिअ-वसुहो मय-सेअणओ इभो तस्स ॥६१॥

**शब्दार्थ**—(पहु-कज्ज-समारचणेण) अपने स्वामी के कार्य को भलीभांति से सम्पन्न करनेवाली; ऐसी, (तुह) आपकी; (बलेण) सेना द्वारा; (सीभर) छोटे छोटे (हाथी के सूंड से निकलने वाले) जल-कणों से=फुहारों से—(सिम्पिअ) सींची हैं, (वसुहो) पृथ्वी को जिसने, (ऐसा हाथी) (मय-सेअणओ) (अपने शरीर के सात अगों से बहने वाले) मदरूप जल से सींची है पृथ्वी-तल को; जिसने, (ऐसा हाथी) (तस्स इभो) उस कुकुंण देश के राजा का वह हाथी; (बाणेहिं) तुम्हारी सेना के बाणों द्वारा; (सिञ्चिओ) सींचा गया (अर्थात् हाथी पर बाणो की भयंकर वर्षा कर दी गई;)

**टिप्पण**—सारविए। उवहत्थिअ। केलाइअ। समारीअ। समाचरणेण। "समारचेरुवहत्थ सारव-समार-केलायाः (९५)

सिञ्चिओ। सिम्पिअ। सेअणओ। "सिचेः सिञ्च-सिम्पौ" (९६)॥

पडिसुहडे पुच्छन्ता गज्जन्ता ढिक्कमाण-वसह व्व।

अह बुक्किआ तुह भडा कुङ्कुण-देसाहिवं दट्ठुं ॥६२॥

**शब्दार्थ**—(ढिक्कमाण-वसह) गर्जना करते हुए सांड के (व्व) समान; (गज्जन्ता) गर्जना करते हुए; (पडिसुहडे) प्रतिसुभटों की=प्रतिपक्षी सैनिकों को; (पुच्छन्ता) पूछते हुए; (तुहभडा) (हे राजन्!) तुम्हारे सैनिक (अह) (हाथी पर बाणों की वर्षा करने के) बाद; (कुंकुणदेसाहिवं) कुकुंण देश के राजा को; (दट्ठुं) (वहीं पर) देख करके; (उसको चिढ़ाने की दृष्टि से), (बुक्किआ) गर्वपूर्वक) गर्जना करने लगे।

**टिप्पण**—पुच्छन्ता । "प्रच्छः पुच्छः" (९०) ॥
गज्जन्ता । बुक्किआ । "गर्जेबुक्काः" (९८)
ढिक्कमाण । "वृषे ढिक्कः" (९९)

अग्घिअ-वम्मा छज्जिअ-सिरक्कया मंडलग्ग-सहिअ-करा ।
रेहिअ - सेन्ना रीरिअ - रणङ्गना राइआ ते अ ॥६३॥

**शब्दार्थ**—(अग्घिअ-वम्मा) कवच से जो सुशोभित हो रहे हैं; (छज्जिअ-सिरक्कया) शिरस्त्राण से जो सुशोभित हो रहे हैं; (मंडलग्ग-सहिअ-करा) जो अपने हाथों में तलवार ग्रहण करने से सुशोभित हो रहे है, (रेहिअ-रणं-गणा) जिन कारण से रणक्षेत्र सुशोभित हो रहा है; ऐसे (ते) वे योधागण, (राइआ) उपरोक्त रीति से सुशोभित हुए ।

**टिप्पण**—अग्घिअ । छज्जिअ । सहिअ । रेहिअ रीरिअ । राइआ । "राजेरग्घ-छज्ज-सह-रीर-रेहाः" (१००)

आउड्डिअ-रह-चक्कं खुप्पन्त-हयं णिउड्डमाणेभं ।
वुड्डन्त-भडं करि-रुहिर-मज्जणे ताण आसि रणं ॥६४॥

**शब्दार्थ**—(करि-रुहिर-मज्जणे) हाथी के खून में स्नान करने रूप स्थिति मे, (आउड्डिअ-रह-चक्क) जिसमें रथ का पहिया भी डूब गया है; (ऐसा युद्ध;) (खुप्पन्त-हय) जिसमे घोड़ा भी डूब रहा है, (ऐसा युद्ध) (णिउड्डमाण-इभ) जिसमें हाथी भी डूब रहा है; (ऐसा युद्ध) (बुड्डन्त-भड) जिसमें भट भी डूब रहे है (ऐसा युद्ध) (ताण) उन दोनों सेनाओ के बीच; (रण) युद्ध, (आसि) हुआ था ।

**टिप्पण**—आउड्डिअ । खुप्पन्त । णिउड्डमाण । बुड्डन्त । मज्जणे । "मस्जेराउड्ड णिउड्ड-बुड्ड-खुप्पाः" (१०१)

आरोलिअ-सर-माला-वमालणो मल्लि अज्जुणो राया ।
पुञ्जिअ-पहु-लज्जिर-गुज्जरेहि जीहाविओ तेहि ॥६५॥

**शब्दार्थ**—(आरोलिअ-सर-माला) इकट्ठी की हुई तीरों की मालाओं को; (वमालणो) जो फैलाने वाला है (अर्थात् माला रूप में संग्रहित तीरों को एक-एक करके शत्रुओं पर छोड़ने से उन्हें चऊँ-ओर से फैलाने वाला) ऐसा, (मल्लिअ-अज्जुणो राया) मल्लिकार्जुन नामक कुंकुण नरेश; (पुंजिअ) जो (उक्त राजा की शर-वृष्टि से) (भयभीत होकर आत्मरक्षार्थ एक-स्थान पर)

इकट्ठे हो गये हैं, ऐसे, (पहु-लज्जिर) (किन्तु उन सैनिकों को ऐसा कार्य करने से लज्जा उत्पन्न हुई कि अब हम अपने स्वामी कुमारपाल को अपना मुख कैसे बतलावेंगे, इस भावना से) जो अपने स्वामी से लज्जित हो रहे हैं ऐसे; (गुज्जरेहि) (आपके) गूर्जर—सैनिकों से (तेहि) उन (गूर्जर सैनिकों से); (जीहाविओ) (वह मल्लिकार्जुन इस प्रकार घनघोर युद्ध कर रहा था कि उसे ध्यान आया कि "अरे! ये लडनेवाले सैनिक तो भृत्य-दास वर्ग के हैं और मैं एक राजा हू, अतः इन भृत्यों के साथ लडना मेरा धर्म नहीं है; यह क्षत्रियोचित कर्म नहीं है; ऐसा विचार आते ही वह) लज्जित हो उठा।

**टिप्पण**—आरोलिअ। वमालणो। पुञ्जिअ। "पुञ्जेरारोल-वमालौ" (१०२) लज्जिर। जीहाविओ। "लस्जेर्जीह" (१०३)

ओसुक्कन्तो तेअण-गिराहि सो खत्त-धम्म-लुहण-भडे।
उग्घुसिअ-सेल्ल रोसाणि आसिणो के वि सिक्खविही ॥६६॥

**शब्दार्थ**—(तेअण-गिराहि) तेज-क्रोध-उत्पन्न करने वाली वाणी से; (ओसुक्कन्तो) क्रोधित होते हुए, (सो) उस मल्लिकार्जुन राजा ने, (उग्घुसिअ-सेल्ल) (जिन सैनिको ने) अपने-अपने भालों को तीक्ष्ण बनाये हैं (ऐसे को), (रोसाणिअ असिणो) (जिन सैनिको ने) अपनी-अपनी तलवारो को तीक्ष्ण बनाई है (ऐसे को) (खत्त-धम्म) क्षत्रिय-धर्म को, (लुहण-भडे) (पाल करके) अधिक निर्मल बनाया है जिन सैनिको ने; ऐसे (के वि) कितने ही (कुछ एक) सैनिकों को, (सिक्खविही) शिक्षा दी; (उन पर शस्त्रो से प्रहार किया)।

**टिप्पण**—ओसुक्कन्तो। तेअण। "तिजेरोसुक्कः" (१०४)॥

लुञ्छन्ता घम्म-जलं कज्जल-पुञ्छिअ-मुहव्व तेण भडा।
पर-तेअ पुंसणेणं फुसिअ-जसा हक्किआ के वि ॥६७॥

**शब्दार्थ**—(घम्म-जलं) पसीने रूप जल को, (लुञ्छन्ता) पोछते हुए; (कज्जल-पुञ्छिअ मुह व्व) (यह राजा अब हमको जीत लेगा इस प्रकार के भय रूप) काजल से मानो लिप्त है मुह जिनका; (फुसिअ जसा) जिनके यश को पोछ डाला गया है (ऐसे) (भडा) कुमारपाल के वे सैनिक; (पर-तेअ-पुंसणणं) दूसरों के शत्रु के तेज को नष्ट करनेवाले; ऐसे (तेण) उस मल्लिकार्जुन नामक राजा द्वारा, (के वि) (उपरोक्त वर्णित) कितने ही (सैनिक) (हक्किआ) (आगे बढने से) रोक दिये गये।

पहु-नामापुसणो धम्माहुलणो वेरि-नाम-मज्जणओ।
तं मूरीअ गइन्दं गुज्जर-लोओ अवेमइओ ॥६८॥

**शब्दार्थ**—(पहु-नामा अपुसणो) अपने स्वामी के नाम पर कलंक नहीं लगानेवाले; स्वामी के नाम को और भी अधिक प्रकट करने वाले ऐसे गुर्जर-सैनिक; (धम्म-अहुलणो) धर्म को नहीं डूबोने वाले; (ऐसे) (वेरि-नाम-मज्ज-णओ) शत्रु के नाम को डुबोने वाले; (ऐसे सैनिक) (अवेमइओ) (उत्साह से) नहीं टूटे हुए; (अर्थात् अभग्न उत्साहवाले; ऐसे; (मुज्जर-लोओ) गुर्जर सैनिकों ने, (तं गइन्दं) (शत्रु के) उस गजराज को; (मुरीअ) भेद दिया; (नष्ट कर दिया)

**टिप्पण**—लुहण। उग्घुसिअ। रोसाणिअ। लुञ्छन्ता। पुञ्छिअ। पु सणेणं। फुसिअ। अपुसणो। अहुलणो। मज्जणओ।

"मृज्जेरुग्घुस-लुञ्छ-पुञ्छ-पुंस फुस-पुस-लुह-हुल-रोसाणाः (१०५)

सूडिअ-सुहडो सूरिअ-तुरंगमो विरिअ-बाण-पसरो य।
मुसुमूरिअ-सिरताणो करञ्जिओ कुङ्कुणाहिवई ॥६९॥

**शब्दार्थ**—(सूडिअ-सुहडो) (जिस राजा के) सुभट नष्ट हो गये हैं; (सूरिअ-तुरंगमो) (जिस राजा के) घोड़े नष्ट हो गये हैं, (य) और; (विरिअ-बाण-पसरो) (जिसके) बाणों का फैलाव नष्ट हो गया हैं, (मुसुमूरिअ-सिर-ताणो) जिस का शिर-त्राण नष्ट हो गया है, ऐसा (कुंकुण-अहिवई) कुंकुण देश का अधिपति; (करजिओ) शस्त्रों द्वारा भेद दिया गया है। घायल कर दिया गया।

पविरञ्जि आतवत्तो नीरञ्जिअ-विजय-वेजन्तीओ।
सो लूण-सीस-कमलो कओ तुहाभञ्जिअ-भडेहि ॥७०॥

**शब्दार्थ**—(पविरंजिअ-आतवत्तो) जिसका छत्र तोड दिया गया है (ऐसा;) (नीरंजिअ-विजय वेजयन्तीओ) जिसकी विजय-ध्वजा तोड़ दी गई है; (ऐसा;) (लूण-सीस कमलो) जिसका सिर-कमल तोड दिया गया है (ऐसा); (सो) वह कुंकुण नरेश; (तुह) तुम्हारे (अभजिअ-भडेहि) (युद्ध में भय से) अभग्न (कायरता नहीं बतलाने वाले ऐसे) सैनिकों द्वारा; (कओ) (दुर्गतिवाला) कर दिया गया। मार दिया गया।

**टिप्पण**—मूरीअ। अवेमइओ। सूडिअ। सूरिअ। विरिअ। मुसुमूरिअ। करज्जिओ। पविरञ्जिअ। नीरञ्जिअ। अभिञ्जअ।" भञ्जेर्वेमय-मुसुमूर-मूर-सूर-सूड-विर पविरञ्जकरञ्ज- नीरञ्जाः" (१०६)

नय-पडि अग्गिर अणुवच्चिओ सि दाहिण-दिसाइ तुमम्मिंह।
विढविअ-कुंकुण-सत्तङ्ग-संपओ अञ्जिअ जसोह ॥७१॥

**शब्दार्थ**—(नय पडिअग्गिर) हे नीति के अनुसार चलने वाले राजन् ! (विढविअ-कुंकुण सत्तंग-सपओ) कुंकुण देश के सात अगों की (स्वामी, मन्त्री, मित्र, कोश, राष्ट्र, दुर्ग और अपनी सेना रूप) सम्पत्ति को जिसने अपनी बना ली है। ऐसे हे राजन् ! (अज्जिअ-जस-ओह) अर्जित कर लिया है यश-समूह को जिसने; ऐसे हे राजन् ! (तुमम्) तुम (इण्हि) इस समय में; (दाहिण-दिसाइ) दक्षिण-दिशा से; (अणुवच्चिअ आ) अनुसृत, (अनुसरण) किये जा रहे, (सि) (हो अर्थात् दक्षिण दिशा के भी तुम स्वामी बन गये हो) दक्षिण दिशा का राज्य भी तुम्हारे पीछे-पीछे चला आ रहा है।

पहु सिरि-नयर-सिरीए जुज्जसि जुप्पसि तिलंग-लच्छीए ।
जुज्जसि कञ्चि-सिरीए भुञ्जंतो दाहिणिं इण्हि ॥७२॥

**शब्दार्थ**—(पहु) हे प्रभो ! इण्हि इस समय में, (दाहिणि दक्षिण दिशा) को (दक्षिण में स्थित राज्य को) (भुञ्जन्तो) भोगते हुए, (सिरि-नयर-सिरीए) श्री नगर की लक्ष्मी से, (जुज्जसि) (तुम) युक्त हो (अर्थात् दक्षिण दिशा स्थित श्रीनगर पर भी आपका अधिकार हो गया है), (तिलंग-लच्छीए) तिलग-लक्ष्मी से, (जुप्पसि) (तुम) (युक्त हो ) (तिलग राज्य पर भी तुम्हारा अधिकार हो गया है ।); (कञ्चि-सिरीए) कांची लक्ष्मी से; (जुंजसि) (तुम) युक्त हो (कांची नगरी भी तुम्हारे राज्य मे आ गई हैं)

**टिप्पण**—पडि अग्गिर। अणुवच्चिओ। "अनुव्रजे पडिअग्गः" (१०७)॥
विढविअ। अज्जिअ। "अर्जेविढवः" (१०८)॥

सिन्धु-वई तुह चमढण-वेल्लिल्लो तुमइ दिन्न-चड्डुणओ ।
न जिमइ दिवसे जेमइ निसाइ पच्छिम-दिसाइ तह ॥७३॥

**शब्दार्थ**—(तह) तथा; (तुह) तुम्हारी आज्ञानुसार (चमढण-वेलिल्लो) भोजन करने का समय निश्चित है जिसके लिये, (ऐसा सिन्धुपति) (तुमइ) तुम्हारे द्वारा (ही), (दिन्न चड्डणओ) दिया गया है भोजन जिसको; (ऐसा सिंधुपति) (पच्छिम-दिसाइ) पश्चिम दिशा वाला; (सन्धु-वई) सिन्धु देश का राजा, (दिवसे) दिन में; (न जिमइ) भोजन नहीं करता है (निसाइ) रात्रि में; (जेमइ) भोजन करता है।

**टिप्पण**—जुज्जसि। जुप्पसि। जुज्जसि। "युजो जुज्ज-जुज्ज-जुप्पा (१०९)"

तम्बोलं न समाणइ कम्मण-काले वि नण्हए जवणो ।
विसए अ नोवभुज्जइ भएण तुह वसुह-कम्मवण ॥७४॥

**शब्दार्थ**—(वसुह-कम्मवण) हे पृथ्वी की पालना करने वाले कुमारपाल; (तुह भएण) तुम्हारे भय से; अतएव तुम्हें प्रसन्न करने के लिए; (जवणो) यवन-देश का राजा (तम्बोलं) पान को; (न समाणइ) नहीं खाता है;(कम्मण-काले वि) भोजन करने के समय में भी; (न ण्हए) नहीं खाता है; (अ) और; (विसए) विषयों को (न उवभुंजइ) नहीं भोगता है। अर्थात् यवन राजा की मंत्रणा दिन रात तुम्हारी कृपा प्राप्त करने के लिये ही होती रहती है।

**टिप्पण**—भुज्जन्तो। चमढण। जिमइ। जेमइ। समाणइ। कम्मण। अण्हए। "भुजो-भुज्ज-जिम-जेम-कम्हाण्ह-समाण-चमढ-चड्डाः" (११०)॥
उव भुज्जइ। कम्मवण। "वोपेन कम्मवः" (१११)

मणि-गढिअ-कणय-घडिआहरणे उव्वेसरो वर-तुरङ्गे।

संगलिअ लक्ख-सङ्खे पेसइ तुह रिउ-असंघडिओ ॥७५॥

**शब्दार्थ**—(रिउ-असंडिओ) (आपको) शत्रु से अलग होता हुआ; (अर्थात् आपके शत्रु से किसी भी प्रकार का सम्बन्ध नही रखता हुआ); (उव्वेसरो) उव्वेश्वर नामक राजा, (तुह) आपके लिए-आपकी सेवा में; (लक्खसखे) लाखों की सख्या वाले अर्थात् प्रचुर मात्रा में, (मणि-गढिअ) मणियो से बने हुए (और) (कणय-घडिय) सोने से बने हुए; (आहरणे) आभूषणो को और; (वर तुरगे) श्रेष्ठ-घोडों को; (सगलिअ) इकट्ठे करके;(पेसइ) भेजता है (भेट रूप से अर्पण करता है)

**टिप्पण**—गढिअ। घडिअ। "घटे गंढः" (११२) सगलिअ असघडिओ "समोगल." (११३)

हरिस-मुरि आणणो सो महि-मण्डण कासि-रीडणो राया।

टिविडिक्कइ तुह वारँ हय-चिञ्चिअ-हत्थि-चिञ्चइअं ॥७६॥

**शब्दार्थ**—(महि-मडण) हे पृथ्वी-भूषण ! (हरिस मुरिअ आणणो) हर्ष से युक्त और परिस्फुटित है मुख जिसका ऐसा;(कासि-रीडणो) काशी की शोभा बढ़ाने वाला; (सो राया) वह काशीराज; (हय-चिञ्चिअ) घोड़े से सुशोभित ऐसे; (तुह) आपके (वारं) द्वार को; (टिविडिक्कइ) सुशोभित करता है। (अश्व गज-चित्रित आपके दरवाजे पर काशीराज उपस्थित रहता है)

**टिप्पण**—मुरिअ। "हासेन स्फुटेर्मु रः" (११४)

चिञ्चिल्लिओ अखुट्टिअ-भत्तीइ तुमम्मि मगह-देस-निवो।

उवखुडिअ - पुव्व - गव्वो अतुट्टिअं पाहुडं देइ ॥७७॥

**शब्दार्थ**—(तुमम्मि) तुम्हारे में, (अखुट्टिअ भत्तीइ) अखण्ड भक्ति से; (चिञ्चिल्लिओ) सुशोभित, (उक्खुडिअ-पुव्व-गव्वो) नष्ट हो गया है पहिले का अभिमान जिसका, ऐसा, (मगह्-देस-निवो) मगध देश का राजा, (अतुट्टिअ) निरन्तर-बिना बाधा के, (पाहुडं) (विविध) भेट उपहार; (देइ) (तुम्हारी सेवा में) देता है।

**टिप्पण**—मण्डण। रीडणो। टिविडिक्कइ। चिञ्चिअ। चिञ्चइअं। चिञ्चिल्लिओ। मण्डेश्चिञ्च-चिञ्चअ चिञ्चिल्ल-रीड टिविडिक्काः (११५)

अखुडिअ-गमणमतोडिअ-मदमतुडिअ-लक्खणं महेभ - कुलं।
अणिलुक्कन्त सिणेहो गउडो पेसीअ तुज्झ कए ॥७८॥

**शब्दार्थ**—(अ-णिलुक्कन्त) अखण्ड; (सिणेहो) स्नेह वाला; (गउडो) गौड-देश के राजा ने; (तुज्झ कए) आपके लिये, (अखुडिअ-गमणम्) जिसकी गति में किसी भी प्रकार की त्रुटी नही हैं ऐसे; (अतोडिअ मदम्) जिसके शरीर में से निरन्तर रूप से मद झर रहा है; ऐसे (अतुडिअ-लक्खणं) जिसमे किसी भी प्रकार के सुलक्षण की कमी नहीं है (अर्थात् सम्पूर्ण लक्षणों से युक्त; ऐसे (महेभ-कुल, महान् हाथियों के समूह को, (पेसीअ) (भेटस्वरूप) भेजे।

लुक्किअ-जसमुल्लूरिअ पयावमुल्लुकिअ-मेइणिं काही।
घोलन्ती तुह सेणा भय-घुलिअं कन्नउज्जेसं ॥७९॥

**शब्दार्थ**—(घोलन्ती) चलती हुई=घूमती हुई (तुह सेणा) (हे राजन्!) तुम्हारी सेना ने; (लुक्किअ-जसम्) नष्ट हो गई कीर्ति जिसकी (ऐसे कन्नोज-नरेश को), (उल्लूरिअ-पयावम्) चला गया है प्रताप जिसका, (उल्लुकिअ-मेइणिं) (सेना के सचालन से) टूट गई है पृथ्वी जिसकी; ऐसे; (कन्न उज्जेसं) कन्नोज नरेश को; (भय-घुलिअं) भय से विचलित, (काही) कर दिया है।

**टिप्पण**—अखुट्टिट। उक्खुडिअ। अतुट्टिअं। अखुडिअ। अतोडिअ। अतुडिअ। अणिलुक्कन्त। लुक्किअ॥ उल्लूरिअ। उल्लूकिअ। "तुडे स्तोड-तुट्ट-खुट्ट-खुडोक्खुडोल्लुक-णिलुक्क लुक्कोल्लूरा" (११६)

तुज्झ पहल्लिर-सिविरे घुम्माविअ ढँसमाण-कुम्मम्मि।
दिट्ठे वि दसण्ण-वई विवट्ट माणो भए मरही ॥८०॥

**शब्दार्थ**—हे राजन्! (कुम्मम्मि) पृथ्वी के नीचे रहा हुआ कच्छप जिसके द्वारा; (ढसमाण) प्रकंपित हो उठा है ऐसी; (घुम्माविअ) विचरण शील; (तुज्झ) तेरी; (सिविरे) छावणी को; (दिट्ठे वि) देखते ही; (दसण्ण-

वई) दशार्ण देश का राजा; (भए) भय से; (विवट्टमाणो) गिर कर; (मरही) मर गया ॥

**टिप्पण**—घोलन्ती। घुलिअं। पहल्लिर। घुम्माविअ। 'घूर्णो घुल-घोल-घुम्म पहल्लाः" (११७)

ढसमाण। विवट्टमाणो। 'विवृतेर्ढंस." (११८)

अणकढिअ-दुद्ध-सुइ-जस पयाव-घम्मट्टिआरि जस-कुसुम।
तुह गण्ठिअ-वुहेणं विरोलिओ तस्स पुर-जलही ॥८१॥

**शब्दार्थ**—(अणकढिअ-दुद्ध-सुइ जस !) नही उबले हुए दूध के समान उज्ज्वल कीर्ति वाले हे राजन् ! (पयाव-घम्मट्टिआरि जस-कुसुम) तेरे प्रताप की तेज गर्मी से शत्रुओं के यश-रूपी पुष्पों को म्लान कर दिया है ऐसे हे देव !; (तुह गण्ठिअ-वूहेण) तेरी व्यूहात्मक सैन्य की छावनी ने; (तस्स) उस दशार्णपति के; (पुर-जलही) नगर रूप समुद्र का; (विरोलिओ) मथन कर दिया अर्थात् तेरे सैन्य ने दशार्णपति के नगर को ध्वस्त कर दिया।

अणकढिअ। अट्टिअ। 'क्वथेरट्टः" (११६)

गण्ठिअ। 'ग्रन्थो गण्ठ." (१२०)

मन्थिअ-दहिणो तुप्पं व घुसलिआ तस्स नयरओ कणयं।
गिण्हन्तेहिं तुह सेणिएहि अव अच्छिआ अम्हे ॥८२॥

**शब्दार्थ**—हे राजन् ! (मन्थिअ दहिणो तुप्पं) जिस प्रकार दही को मथ करके उसमें से घी निकाला जाता है; उसी तरह उस दशार्णपति का मथन करके उसे छिन्न-भिन्न करके; (तस्स नयरओ) उसके नगर से; (तुह) तेरे, (सेनिएहि) सैनिकों द्वारा, (कनयं गिण्हन्तेहिं) स्वर्ण आदि को ग्रहण करते हुए=लूट चलाते हुए देख; (अम्हे) हम बडे; (अवअच्छिआ) प्रसन्न हुए।

**टिप्पण**—विरोलिओ। मन्थिअ। घुसलिआ। "मन्थेर्घुसल-विरोलौ" (१२१)॥

अव अच्छिआ। "ह्लादेरवअच्छः" (१२२)

तस्स चमूवा समरे णुमज्जिआ तुह भडेहि णिव्वरिआ।
णिज्झोडणेहि णिल्लूरणा वि अणलूरिअ-पयावा ॥८३॥

**शब्दार्थ**—हे महाराज ! (तस्स) उस दशार्णपति के; (चमूवा) सैनिक शस्त्रों से दुश्मनो का; (निल्लूरणा) संहार करने वाले होने पर भी; (अण-

लूरिअ-पयावा) अखण्डित-प्रताप वाले होने पर भी; (णिज्झोडणेहि) संहारक ऐसे; (तव) तेरे, (भडेहि) सुभटो द्वारा, (णिव्वरिआ) छेदित हुए वे; (शत्रु-सैन्य); (समरे) रणक्षेत्र में ही, (णुमज्जिआ) रह गये अर्थात् मृत्यु को प्राप्त हुए।

णुमज्जिआ। "नेः सदा मज्जः" (१२३)

छिन्दिअ-छत्त दुहाविअ-सिरक्क-णिच्छल्लि उत्तमङ्गाण ।
उद्दालिआ दसण्णाण सिरी चालुक्क-सुहडेहि ॥८४॥

**शब्दार्थ**—हे राजन् ! (छिन्दिअ-छत्त) खण्डित-छत्र वाले; (दुहाविअ-सिरक्क) टूटे हुए शिरस्क=मुकुटवाले, णिच्छल्लि उत्तमङ्गाण) और छेदित मस्तक वाले, (दसण्णाण) दशार्ण देश के क्षत्रियों की लक्ष्मी, (चालुक्क-सुहडेहि) चौलुक्य सुभटों द्वारा, (उद्दालिया) लूट ली गई—ग्रहण की गई।

**टिप्पण**—णिव्वरिआ। णिज्झोडणेहि। णिल्लूरणा अणलूरिअ। छिन्दिअ। दुहाविअ। णिच्छल्लिअ। "छिदेर्दुहाव-णिच्छल्ल-णिज्झोड-णिव्वर णिल्लूर-लूरा. (१२४) ॥

तिहुअण-जस-ओअन्दण-रिउ-अच्छेदण-चमूइ पहु तुज्झ ।
मलिऊण बलं तिउरी सरस्स परिहट्टिओ मणो ॥८५॥

**शब्दार्थ**—(पहु) हे स्वामी ! (तिहुअण-जस) तीनो लोक के यश को, (ओ अन्दण-रिउ) शत्रुओं से हठात् ग्रहण करने वाली, (अच्छेदण) तथा उनका उच्छेद करने वाली, (तुज्झ) तेरी, (चमुइ) सेना ने; (तिउरीसरस्स) चेदि देश की नगरी त्रिपुरी के स्वामी के, (मलिऊण बल) सैन्य का मर्दन करके उसके, (परिहट्टिओ माणो) अभिमान को चूर दिया=नष्ट कर दिया।

**टिप्पण** –उद्दलिआ। ओ अन्दण। अच्छेदण। "आङा ओ अन्दोद्दालो" (१२५)

चड्डिअ-नक्का मड्डिअ-महा-तडा खड्डिआखिलारामा ।
पन्नाडिअ-द्रह-पङ्का तुज्झ चमुए कया रेवा ॥८६॥

**शब्दार्थ**—(चड्डिअ नक्का) जिसमें मगर-मच्छ दबा दिये हो, ऐसी; तथा (मड्डिअ-महा-तडा) जिसके बडे-बड़े तटों को मर्दित कर दिया तोड़ दिया गया है ऐसी, तथा (खड्डिआखिलारामा) जिसके अनेको उद्यानों को ध्वस्त कर दिया है, ऐसी; (पन्नाडिअ-द्रह पंका) तथा सरोवर में रहे हुए कीचड़ को जिसने र्मादित कर दिया है खूँद डाला है, ऐसी, (खो) नर्मदा नदी को; (तुज्झ) तेरी, (चमुए) सेनाने, (कया) कर दिया।

पय-मढिअ-पंसु-मसिणे चलु चुलमाणाणिलेण कय-फन्दे ।
रेवा-तड-लय-गहणे निव्वलिओ तुह बल-निवेसो ॥८७॥

**शब्दार्थ**—(पय-मढिअ-पंसु-मसिणे) पैरों से मर्दित धूली जैसा; (मसिणं) कोमल; (चलुचुलमाणाणिलेण) एवं मन्द गति से बहते हुए पवन से; (कय फन्दे) जिसमें कम्प उत्पन्न कर दिया है ऐसे; (रेवा-तड-लय-गहणे) नर्मदा नदी के तट पर रहे हुए लताओं के वन में, (तुह) तेरी, (बल-निवेसो) सेनाने अपना पडाव डाला है।

**टिप्पण**— मलिऊण । परिहट्टिओ । चड्डिअ । मड्डिअ । खड्डिअ । पन्नाडिअ । मढिअ । "मृदो मल-मढ-परिहट्ट-खड्ड-चड्ड-मड्ड-पन्नाडा:" (१२६) ॥

चलुचुलमाण । फन्दे । "स्पन्देश्चलुचुल:" (१२७) ॥

निपाइअ-जय-कज्जं अविअट्टिअ-विक्कमं बलं तुज्झ ।
अविलोट्टिअ-जय-महुराहिवस्स फंसावही विजयं ॥८८॥

**शब्दार्थ**—(निपाइअ जय-कज्ज) जय का प्रयोजन जिसने सिद्ध किया है, ऐसी (अविअट्टिअ) विसवाद रहित; (याने अवश्य विजय शील); विक्क-बल तुज्झ) पराक्रमवाली तेरी सेनाने; (अविलोट्टिअ-जय-महुरा-हिवस्स) अविसंवदित अतिपराक्रम से निश्चित जय वाले मथुरा नरेश के, (फंसावही विजय) विजय को विसंवादित कर दिया अर्थात् मथुरा नरेश को पराजित कर दिया।

**टिप्पण**—निव्वलिओ । पीपाइअ । "निरः पदेर्वल:" (१२८)

अविसंवाइ-परिक्खा तणु-पक्खोडण-झडन्त-पंसु-कणा ।
णीहरिअ-नक्क-चक्कं तुह तुरया जँउणमुत्तिन्ना ॥८९॥

**शब्दार्थ**—(अविसवाइ-परीक्खा) हे राजन् ! शस्त्रों से घायल होने पर भी अश्व सैनिकों को जो रण भूमि में नीचे नहीं गिराते; ऐसे विचाररूप अविसंवादि अविघटनशील परीक्षा वाले; तथा (तणु पक्खोडण) शरीर को धूनने से; (झडन्त-पसु-कणा) गिरते हुए राजकणों वाले, (तुह) तेरे घोड़े (णीहरिअ-नक्क-चक्कं) आक्रन्द करते हुए मगर-मच्छों का समूह है जिसमें; ऐसी (जँउण मुत्तिण्णा) जमुना नदी को पार करके आगे बढ़ गये।

**टिप्पण**—अविअट्टिअ । अविलोट्टिअ । फसावही । अविसंवाइ । "विसं-वदेर्विअट्टविलोट्ट फंसा:" (१२९)

पक्खोडण । झडन्त । "शदो झड-पक्खोडौ" (१३०) ॥

रिउ-अक्कन्दावणयं अखिज्जमाण-हयमजूरिएभकुलं ।
अविसूरन्त-चमूवं पत्तं महुराइ तुह सेन्नं ॥६०॥

**शब्दार्थ**—हे राजन् ! (रिउ-अक्कन्दावणयं) तेरे शत्रुओं को आक्रन्द कराने वाले; (अखिज्जमाण) कभी नही थकने वाले; (हयं) घोडे; तथा (अजूरिएभ कुलं) कभी नहीं थकने वाला हाथियों का समूह; तथा (अविसूरन्त-चमूव) तथा नहीं थकने वाली, (तुह) तेरी, (सेन्नं) सेना, (महुराइ पत्तं) सुख पूर्वक मथुरा पहुंच गई ।

**टिप्पण**—णीहरिअ । अक्कन्दावणयं । "आक्रन्देर्णीहरः" । (१३१) ॥
अखिज्जमाण । अजूरिए । अविसूरन्त । "खिदेर्जू रविसूरौ" (१३२) ॥

उत्थङ्घअ-वारेहिं रुन्धिअ-मग्गेहि हक्कमाणेहि ।
कुज्झन्तेहिं तुह सेणिएहिं जूराविआ रिउणो ॥६१॥

**शब्दार्थ**—(उत्थङ्घअ-वारेहि) हे नरेन्द्र ! नगर के दरवाजों को जिन्होंने घेर लिया है ऐसी; (रुन्धिय-मग्गेहि) और इसी कारण से जिन्होंने नगर जनो के मार्ग को रोक दिया है ऐसी; (हक्कमाणेहिं) शत्रुओं के सुभटों को रोकने से, (कुज्झन्तेहि) क्रुद्ध हुए, (तुह सेणिएहि) तेरे सैनिकों द्वारा, (जूराविआ रिउणो) शत्रुओं के सैनिको को क्रुद्ध कर दिया गया । (अर्थात् तेरे क्रुद्ध सैनिकों से नगर की चारों ओर से घिरा देख शत्रु सैनिक अधिक क्रुद्ध हुए)

**टिप्पण**— उत्थङ्घअ । रुन्धिअ । "रुधेरुत्थङ्घः" (१३३)
हक्कमाणेहिं । 'निषेधर्हक्कः" (१३४)
कुज्झन्तेहिं । जूराविआ । "क्रुधेर्जूरः" (१३५)

तुह जायन्त-पवेसे सिन्ने जम्मन्त-परिहवो तत्तो ।
तडिअ-भओ महुरेसो न तड्डवीआजि-संरम्भं ॥६२॥

**शब्दार्थ**—हे राजन् ! (तह जायन्त-पवेसे सिन्ने) तेरे सैन्य के मथुरा नगरी में प्रवेश करने पर; (जम्मन्त-परिहवो तत्तो) और उनसे पराजित होने पर; (तडित-भओ महुरेसो) बहुत भयभीत बने हुए उस मथुरा नरेश ने; (न तड्डवीआजि-संरम्भं) युद्ध का प्रयत्न भी नहीं किया ।

**टिप्पण**—जायन्त । जम्मन्त । "जनो जा जम्मौ" (१३६)

तड्डिअ-कणय-चएणं विरल्लिअं थिप्पिऊण तुह सेन्नं ।
महुरेसो तणिअ-दिही रक्खीअ निअं पुरिं महुरं ॥६३॥

**शब्दार्थ**—(पुनः आगे क्या हुआ वह आप सुने) हे नरेन्द्र ! (तड्डिअ-कणय-चएणं) विस्तृत फैले हुए स्वर्ण के ढेर से; (विरल्लिअं) चारों ओर फैली हुई; (तुह सेन्नं) तेरी सेना को, (थिप्पिऊण) सन्तुष्ट करके-उन्हें दे करके; (तणिअ दिट्ठी) जिसने अपने चित्त की स्वस्थता को रोक दी है ऐसे; (महुरेसो) मथुरा नरेश ने; (निअपुरिं) अपनी नगरी; (महुरं) मथुरा को; (रक्खीअ) बचाया अर्थात् अपनी नगरी का रक्षण किया।

**टिप्पण**—तडिअ। तड्डविअ। तड्डिअ। विरल्लि अं। तणिअ। "तनेस्तड-तड्ड-तड्डव-विरल्लाः" (१३७)

थिप्पिऊण। "तृपस्थिप्प." (१३८)

सग्गल्लिअन्त-जस-भर जङ्गल-वइणोवसप्पिउं दिण्णा।
तुह रिउ-झङ्खावण-घण-पयाव-संतप्पिएण गया ॥९४॥

**शब्दार्थ**—(सग्गल्लिअन्त-जस भर) स्वर्ण पर्यन्त फैले हुए यश भार वाले हे राजन् ! (तुह रिउ-झङ्खावण) तेरे शत्रुओं को सताप करने वाले; (घण-पयाव) प्रखर-प्रताप से संत्रस्त होने पर, (जङ्गलवइणो) जंगलपति सपादलक्ष के राजा ने, (उवसप्पिउ) तेरा आश्रय लेने के लिए उसे; (तुह गया) तेरे हाथियों ने साथ, (दिण्णा) दिया।

**टिप्पण**—अल्लि अन्त। उवसप्पिउं। "उवसर्पेरल्लि अः" (१३९)

झङ्खावण। संतप्पिएण। "सतपेर्झङ्खः" (१४०)

जस-ओअग्गिअ तिहुअण तेण कया भत्तिवाविअ-मणेण।
असमाणिअ-गुणवइरं समाविउं तुज्झ विन्नत्ती ॥९५॥

**शब्दार्थ**—(जस-ओअग्गिअ-तिहुअण) तीनो लोक मे व्याप्त यश वाले; हे राजन् ! (असमाणि अ-गुण) हे असख्यात गुण वाले देव, (तुज्झवइरं समाविउं) तेरे प्रति वैरभाव को समाप्त करने के लिए, (भत्ति-वाविअ-मणेण) भक्ति से व्याप्त मन वाला हो; (तेण) उस जंगलपति ने; (विन्नत्ती कया) विज्ञप्ति-प्रार्थना की है।

तइ पेल्लिओ तुरुक्को ढिल्ली-नाहो गलत्थिओ तह य।
अड्डक्खिओ अ कासी रिउ-घत्तण छुह महाएसं ॥९६॥

**शब्दार्थ**—(रिउ-घत्तण) हे वैरि निरासक ! (तइ) तूने; (तुरुक्को) म्लेच्छाधिपति को; (पेल्लिओ) खण्डित किया; (तह य) उसी तरह; (ढिल्ली-नाहो गलत्थिओ) दिल्ली पति को भी उखाड़ कर फेंका; (अड्डक्खिओ अ

कासी) काशी नरेश को भी खण्डित कर दिया ऐसे आप; (छुह महाएसं) मुझे, (जगतपति नरेश को) आज्ञा दे ।

सोल्लिज्जइ जह लुद्धो तह मं णोल्लेसु रिउ-हुलण-कज्जे ।
कं कं परीसि न तुमं किणा वि खिविआ न तुज्झाणा ॥९७॥

**शब्दार्थ**—(सोल्लिज्जइ जह लुद्धो) जिस प्रकार लुब्ध सेवक को अपने कार्य में नियुक्त किया जाता है, (तह) उसी प्रकार से; (मं, मुझे, (रिउ-हुलण-कज्जे) शत्रुओ के तिरस्कार करने के कार्य में; (णोल्लेसु) नियुक्त करे; तथा (क क परीसि न तुम) तुम किस किसका तिरस्कार नही करते हो, (किणा वि खिविआ न तुज्झाणा) किसी के द्वारा भी तेरी आज्ञा का तिरस्कार नही हुआ है । अर्थात् सभी तेरी आज्ञा के अनुसार बरत रहे हैं ।

**टिप्पण**—पेल्लिओ । गलत्थिओ । अड्डक्खिओ । घत्तण छुह । सोल्लिज्जइ । णोल्लेसु । हुलण । परीसि । खिविआ "क्षिपेर्गलत्थाड्डक्ख-सोल्ल-पेल्ल-णोल्ल-छुह-हुल-परी घत्ताः ॥ (१४३) ॥

गुलगुञ्छिऊण हत्थं उत्थङ्घिअ तज्जणिं भणामि इमं ।
हक्खुविअं तुमए च्चिअ मह दुग्गं वेरि-उक्खिवणा ॥९८॥

**शब्दार्थ**—(वेरि-उक्खिवण) हे शत्रु निरासक ! (तुमए च्चिअ) निश्चय पूर्वक तुमने ही, (मह दुग्ग) मेरे कीले को; (हक्खुविअ) तोड गिराया, (इमं) यह बात मै, (गुलगुञ्छिऊण हत्थ) अपने हाथ को ऊँचा करके और, (तज्जणि उत्थंङ्घिअ) तर्जनी उगली को उठाकरके समस्त राजाओ की मण्डली के सामने; (भणामि) करता हूँ ।

अल्लत्थिअ-विजय-धजा उब्भुत्तिअ-गुरु करा तुहं करिणो ।
उस्सिक्कन्ति गिरिं पि हु रिउ-णीरव कं न अक्खिवसि ॥९९॥

**शब्दार्थ** (अल्लत्थिअ विजय-धजा) तेरी ऊँची उठाई गई विजय वैजयन्तीका; (उब्भुत्तिअ-गुरु-करा तुह करिणो) तेरी ऊँचे उछलते हुए बड़ी सूढ़े रूप-दण्ड वाले हाथी, (उस्सिक्कन्ति गिरिं पि हु) मानो पर्वत को भी उखाड कर फेंक देते हैं। (रिउ-णीरव कं न अक्खिवसि) अतः तू किसे नहीं उखाड़ कर फेंक सकता है ? जिसके पास ऐसे हाथी है ऐसा तू सर्वत्र विजय ही प्राप्त करता है ।

**टिप्पण**—गुलगुञ्छिऊण । उत्थङ्घिअ । हक्खुविअं उक्खिवण । अल्लत्थिअ । उब्भुत्तिअ । उस्सिक्कन्ति । "उत्क्षिपेर्गुलगुञ्छोत्थङ्घाल्लत्थोब्भुत्तोस्सिक्क हक्खुवा" (१४४) ॥

णीरव । अक्खिवसि । "आक्षिपेर्णीरव." (१४५)

कमवसइ जुण्ण-कालो लुट्टइ सेसो सुअन्ति दिक्करिणो ।
कुम्मो वि लिसइ अणवेविरम्मि तइ पहु मही-धरणे ॥१००॥

**शब्दार्थ**—(पहु अणवेविरम्मि) हे महीश्वर, (तइ) तेरे जैसे निश्चल; (मही-धरणे) पृथ्वी का भार धारण करने वाले होने पर; पहु) हे राजन् ! (जुण्ण कोलो) जीर्ण-कोल आद्य वराह भी, (कमवसइ) सो जाता है (सेसो लुट्टइ) शेष नाग भी सो जाता है, (सुअन्ति दिक्करिणा) दिग्गज भी सो जाते है, (कुम्मो वि लिसइ) कूर्म भी सो जाता है । अर्थात् तुझे पृथ्वी का भार धारण करते देख ये सभी निश्चिन्त हो गये है ।

आयम्बमाण-हिअया आयज्झन्तीउ विलविरा रण्णे ।
झझखङ्खन्त-सिसू तुह रिउ-वहूउ दइए वडवडन्ति ॥१०१॥

**शब्दार्थ**—हे राजन् ! (आयम्बमाण-हिअया) कांपती हुई हृदय से, (आयज्झन्तीउ) कापती हुई शरीर से—धूजती हुई विलाप करती हुई, (झखन्त-सिसू) बालको के लिए रुदन करती हुई, (तुह रिउ वहूउ) तेरे शत्रुओ की पत्नियां (दइए) पति के लिए; (रण्णे) अरण्य में, (वडवडन्ति) रुदन करती है ।

**टिप्पण** · अणवेविरम्मि । आयम्बमाण । आयज्झन्तीउ "वेपे रायम्बायज्झौ" (१४७)

अलविरा । झङखन्त । वडवडन्ति । 'विलयेर्झङ्ख वडवडौ' (१४८)

मय-लिम्पिअ-वसुहा तुह न णडन्ति गया विरन्ति न य तुरया ।
अणगुप्पन्त-परक्कम अवहावसु को तुह दुइज्जो ॥१०२॥

**शब्दार्थ**—(अणगुप्पन्त-परक्कम;) स्थिर पराक्रम वाले (हे राजन् !) (मय-लिम्पिअ-वसुहा) मद से सिंचित कर दी है पृथ्वी को जिन्होंने; ऐसे; तेरे (गया) हाथी; (न णडन्ति) रण संग्राम में कभी व्याकुल नहीं होते; (न य तुरया विरन्ति) और न घोड़े ही व्याकुल होते हैं; (अवहावसु) तुम मेरे पर प्रसन्न हो; (को तुह दुइज्जो) क्योंकि तुम्हारे जैसा शक्तिशाली अन्य-दूसरा कौन हो सकता है ?

**टिप्पण**—लिम्पिअ । "लिपो लिम्पः" (१४९)

णडन्ति । विरन्ति । अणगुप्पन्त । 'गुप्येर्विर-णडौ" (१५०)

अवहावसु । "कृपोऽवहो णिः" (१५१)

संदुमइ घरं संधुक्कइ पुरमब्भुत्तए तहोज्जाणं ।
तुज्झ पयावग्गि-पलीविआण सव्वं पि तेअविअं ॥१०३॥

**शब्दार्थ**—हे राजन् ! (तुज्झ) तेरे (पयावग्गि) प्रतापरूप अग्नि से, (पलीविआण) प्रज्वलित हुए का; (घरं) घर; (संदुमइ) जलता है, (पुर) नगर; (संधुक्कइ) जलता है; (तहा) उसी प्रकार से; (उज्जाण) उद्यान, (अब्भुत्तए) जलता है; (सव्वं पि नेअविअ) अधिक क्या कहूँ सब कुछ जल रहा है ।

**टिप्पण**—सदुमइ । संधुक्कइ । अब्भुत्तए । पलीविआण । तेअविअं । "प्रदीपे स्ते अव-संदुम-संधुक्काब्भुत्ताः" (१५२)

जइ संभावसि सग्गे लुब्भसि अह वा अहिन्द-लोगम्मि ।
खउरइ इन्दो पड्डहइ वासुगी ता खु अक्खोह ॥१०४॥

**शब्दार्थ**—(अक्खोह) हे अक्षोभ ! कभी क्षुब्ध नही होने वाले राजन् ! (जइ) यदि तू, (सग्गे) स्वर्ग में जाने की; (सभावसि) तृष्णा रखता है; (अह वा) अथवा; (अहिन्द-लोगाम्मि) पाताल—लोक में जाने के लिये; (लुब्भसि) लालायित हुआ है तो, (खु) मैं ऐसा मानता हूँ कि; (इंदो खउरइ) (तुम्हारी इस महति इच्छा को जानकर) इन्द्र भी क्षुब्ध होता है; (वासुगी पड्डुहई) शेष भी क्षुब्ध होता है;

**टिप्पण**—संभावसि । लुब्भसि । लुभेः संभावः" (१५३) खउरइ । पड्डहइ । अक्खोह । "क्षुभेः खउर-पड्डुहौ" (१५४)

आरभिअ मए भत्ति आढविअं पहु तुमम्मि दासत्तं ।
आरम्भिअं खु निव्वाहिस्सं कत्तो उवालम्भो ॥१०५॥

**शब्दार्थ**—(पहु) हे स्वामी ! (मए) मैंने; (भत्ति आरभिअ) सेवा-भक्ति करके; (तुमम्मि) तेरा; (दासत्तं) दासत्व; (आढविअं) स्वीकार किया है;(आर-म्भिअ) (कदाचित् शंका करो कि) दासत्व स्वीकार करने पर यदि आप नहीं निभा सको तो भी; (खु) निश्चित मैं, (निव्वाहिस्सं) निभाऊँगा; (कत्तो उवा-लम्भो) तो फिर उपालंभ किस बात का ? (अर्थात् आप को उपालंभ का अवसर नही आने दूंगा)

**टिप्पण**—आरभिअ । आढविअं । आरम्भिअं 'आङो रभे रम्भ-ढवौ" (१५५)

पच्चारन्ति न गरुआ झङ्खण-जोग्गो वि मारिसम्मि जणे ।
जइ कह वि अभत्तो हं वेलवणिज्जो तुह अहं ता ॥१०६॥

**शब्दार्थ**—हे राजन् ! (गरुआ) आप जैसे महापुरुष; (मारिसम्मि जणे) मुझ जैसे; (झङ्खण-जोग्गो वि) उपालम्भ के योग्य होने पर भी; (न पच्चा-रन्ति) उपालम्भ नहीं देते; (जइ) यदि, (कह वि अभत्तो हं) मैं किसी प्रकार अभक्त हो जाऊँ (ता) तो; (तुह वेलवणिज्जो अहं) मैं अवश्य आपकी शिक्षा का पात्र हूं।

**टिप्पण**—उवालम्भो। पच्चारन्ति। झङ्खण वेलणिज्जो। "उपा-लम्भे झंङ्ख पच्चार वेलवाः (१५६)

**कुमारपालस्य स्वपनम्**—

इअ विन्नत्तिं सोउं राया जम्भायन्त-जणम्मि निसीहे।

लच्छि-विअम्भिअ णिसुढिर-सयणे निव्वाओ कोअण विसामे ॥

**शब्दार्थ**—(इअ विन्नत्तिं सोउं) इस प्रकार की विज्ञप्ति सुनकर; (जम्भायन्त-जणम्मि) जब मनुष्य उबासी ले रहा हो ऐसे; (नीसीहे) अर्ध रात्रि के समय में, (लच्छि विअम्भिअ) लक्ष्मी का जहाँ विलास है अर्थात् बहुमूल्य; (णिसुढिर-सयणे) और जिसका मध्य भाग नरम है ऐसी कोमल शय्या पर राजा कुमारपाल; (लोअण-वीसामे) आँखों के विश्राम के लिये, (निव्वाओ) (थककर) सो गया।

**टिप्पण**—जम्भायन्त। "अवेजृम्भो जम्भा" (१५७) ॥ अवेरिति किम्। विअम्भिअ।

णिसुढिर। "भाराक्रान्ते नमेर्णिसुढ" (१५८)

णिव्वाओ। वीसामे। "विश्रमेर्णिव्वा" (१५९)

इत्याचार्य श्री हेमचन्द्र विरचित श्री कुमारपालचरित प्राकृत द्वयाश्रय महाकाव्यवृत्तौ

**षष्ठ सर्गः समाप्तः ॥**

# सप्तमः सर्गः

**स्वापान्ते राज्ञः परमार्थचिन्ता – १-८४**

ओहाविय-सयल बलो, उत्थारिअ-अन्तरङ्ग-रिउ-वग्गो ।
त्थुन्दिअ करणो राया निद्दन्ते चिन्तं इअ काही ॥१॥

**शब्दार्थ**—(सयल-बलो) जिसने शत्रुओं की समस्त सेना को अपने बल से; (ओहाविय) पराजित कर दिया है; और (अंतरग रिउ वग्गो) क्रोध, मान, इर्ष्या आदि आन्तरिक शत्रुओ को; (उत्थारिय) दबा दिया है, और जिसने (करणो) इन्द्रियों को; (त्थुन्दिय) वश कर लिया है; ऐसे (राया) राजा कुमारपाल ने; (निद्दन्ते) निद्रा के अन्त में, प्रातः जागृत होने पर; (इअ) ऐसा, (चिन्तम्) विचार (काही) किया ।

अक्कमिआ विसएहिं, टिरिटिल्लंता पुरन्धि - सेवाए ।
ही ढुण्ढुलन्ति भवे चक्कम्मविआ कुकम्मेहि ॥२॥

**शब्दार्थ**—(विसएहिं) विषयो से, (अक्कमिया) आक्रान्त हुई; (पुरन्धी सेवाए) स्त्रियों के सेवन से; (टिरिटिल्लंता) परिभ्रमण करता हुआ पुरुष अपने ही; (कुकम्मेहिं) कुकर्मों से; (चक्कम्मविया) परिभ्रमित है; ऐसे पुरुष (ही) खेद है कि वे (भवे) संसार मे; (ढुंढुल्लन्ति) परिभ्रमण करते है ।

**टिप्पण**—ओहाविअ । उत्थारिअ । त्थुन्दिअ । अक्कमिआ । "आक्रमे-रोहावोत्थारत्थुन्दा." (१६०)

काम गह भमडिएहिं भमाडिओ भम्मडेइ को न भवे ।
गय -काम- झण्ठणो पुण तलअण्टइ सिद्ध भूमीसु ॥३॥

**शब्दार्थ**—(काम-गह) काम-ग्रह—विषयवासना से; (भमाडिओ) भ्रान्त नील पटादि मिथ्यादार्शनिकों से मोहित; (को न भवे) कौन व्यक्ति संसार में परिभ्रमण को प्राप्त नहीं होता ? परन्तु (गय-काम-झण्टणो) जिसका काम-भ्रमण नष्ट हो गया है; ऐसा पुरुष; (सिद्ध भूमीसु) सिद्ध-क्षेत्र में; (तलअंटइ) भ्रमण करता है—जाता है ।

ढण्ढल्लिअ भूमयं भुमिअ धणू, जग झम्पणो गुमिअआणो ।
जं न फुमावइ मयणो अफुसिअ बुद्धी खु सो धन्नो ॥४॥

**शब्दार्थ**– (भूमयं) भ्रकुटि को, (ढण्ढल्लिय) चलाकर=ताणकर; (धणू भुमिअ जिसने धनुष को चलाया है; (जग झम्पणो) और जिसने जगत को भ्रान्त कर दिया है, (गुमिअ आणो) तथा जिसका शासन सर्वत्र है; ऐसा (मयणो) कामदेव; (जं) जिसको, (न फुमावइ) विचलित नहीं करता; ऐसा (अफुसिअ बुद्धी) निश्चल बुद्धिवाला, (सो) वह पुरुष, (खु) निश्चित ही; (धन्नो) धन्य है ।

ढुमइ पुरे, ढुसइ वणे, परइ थलीसुं परीइ जल मज्झे ।
अभमिअ-चित्तो इत्थीहि, णोइ धन्नो पसम-रज्जं ॥५॥

**शब्दार्थ**—(इत्थीहि अभमिअ-चित्तो) स्त्रियों से जिसका चित्त भ्रमित नही होता, ऐसा, पुरुष चाहे, (पुरे ढुमइ) नगर में घूमता हो, (वणे ढुसइ) वण में घूमता हो; (थलीसुं परइ) भूमि पर घूमता हो; (जल मज्झे परीइ) पानी के बीच चलता हो; तो भी शील के प्रभाव से उसे कोई भी स्खलित नही कर सकता । स्त्री से व्यावृत्त चित्तवाला हो परम पद को प्राप्त कर; (धन्नो) धन्य हो जाता है; (पसम रज्जं नीइ) प्रशम राज्य को=मोक्ष सुख को प्राप्त करता है ।

**टिप्पण**—टिरिटिल्लंता । ढुण्ढुल्लन्ति । चक्कम्मविआ । भमडिएहि । भमाडिओ । भम्मडेइ । झण्टणो । तल अण्टइ । ढण्ढल्लिअ । भुमिअ । झम्पणो । गुमिअ फुमावइ । अफुसिअ । ढुमइ । ढुसइ । परइ । परीइ । अभमिअ । "भ्रमेष्टि रिटिल्ल-ढुण्ढुल्ल-ढण्ढल्ल-चक्कम्म-भम्मड-भमड-भमाड तल-अण्ट-झण्ट-झम्प भुम गुम-फुम-फुस-ढुम-ढुस-परी-परा:" (१६१)

सोच्चिअ सोक्खं अइच्छइ, पसमं उक्कसइ, अक्कसइ सग्गं ।
मोक्खंपि हु अणुवज्जइ, अईइ न हु जो जुवइ-सङ्गं ॥६॥

**शब्दार्थ**–(सोच्चिय) यह निश्चित है कि; (जो जुवइ संगं न हु अईइ), जो युवति का संग नहीं करता; वही (सोक्खं अइच्छइ) सुख को पाता है; (पसमं उक्कसइ) प्रशम को पाता है; (सग्ग अक्कसइ) स्वर्ग को प्राप्त करता है, (मोक्खंपि हु अणुवज्जइ) अरे अधिक क्या कहे, परमपद मोक्ष में भी जाता है ।

तारुण्णे गिम्महिए, अवज्जसन्तेसु हाणिम् अक्खेसु ।
ही पच्चड्डइ बुड्ढो वि न पसमं काम-पच्छन्दी ॥७॥

**शब्दार्थ** (तारुण्णे णिम्महिए) युवावस्था के बीत जाने पर और; (अक्खेसु हाणिम्) इन्द्रियों के क्षीण; (अवज्जसन्तेसु) हो जाने पर भी; (ही) खेद है कि (वुड्ढो वि पच्चड्डइ) वृद्ध व्यक्ति भी विषयों की ओर जाता है; (काम पच्छन्दी) कामाभिलाषा के कारण; (न पसमं) वह प्रशम को नहीं प्राप्त करता।

णीणन्ति मित्त-भज्जं-रम्भन्ति सुअं बहुं पि पद अन्ति।
णीलुक्कन्ति च गुरु-गेहिणिं पि काम-वस-परिअलिया ॥८॥

**शब्दार्थ**—(काम-वस-परिअलिया) काम-वशवर्ती पुरुष; (मित्त-भज्ज णीणन्ति) मित्र की पत्नी का भोग करते हैं; (सुअं रम्भन्ति) पुत्री के साथ गमन करते हैं; (बहुं पि पद अन्ति) पुत्रवधू के साथ भी भोग करते हैं; (गुरुगेहिणिं पि) अपनी गुरु पत्नी के साथ भी (णीलुक्कन्ति) विषय सेवन करते हैं।

महिलाण वसे परिअल्लिऊण वोलन्त-हरिअं इह पावा।
अवसेहन्ति तिरिच्छीउवि अवहरि उज्जलविवेआ ॥९॥

**शब्दार्थ**—(महिलाण) स्त्रियों के; (वसे परिअल्लिऊण) वशवर्ती होकर, (हरिअम् वोलन्त) लज्जा का त्याग करता हुआ, (इह पावा) इस संसार मे पापी पुरुष; (उज्जल विवेआ अवहरि) उज्ज्वल विवेक को छोड़कर; (तिरिच्छीउवि) तिर्यंच स्त्री का भी; (अवसेहन्ति) सेवन करते हैं।

जे णिरणासिअ-मेरा वम्मह-वस-गा समं न णिवहन्ति।
अहिपच्चुइआ नूणं ते मुहिआ कम्म-भूमिम्मि ॥१०॥

**शब्दार्थ**—(जे) जो, (णिरणासिय-मेरा) नष्ट; मेरा=लज्जा रहित; (वम्मह वस-गा) विषयाधीन है, (ते) वे; (समं न निवहन्ति) प्रशम भाव को प्राप्त नही होते, (नूणं) निःसंदेह वे; (कम्म भूमिम्मि) कर्मभूमि=आर्यक्षेत्र में, (मुहिआ) निरर्थक; (अहिपच्चुहिआ) आये हैं; अर्थात् उनका जन्म निरर्थक हुआ है।

**टिप्पण**—नीइ। अइच्छइ। उक्कसइ। अक्कसइ। अणुवज्जइ। अईइ। णिम्महिए। अवज्जसन्तेसु। पच्चड्डइ। पच्छन्दी। णीणन्ति। रम्भन्ति। पदअन्ति। णीलुक्कन्ति। परिअलिया। परिअल्लिऊण। वोलन्त। अवसेहन्ति। अवहरिउ। णिरिणासिअ। णिवहन्ति। "गमेरई-अइच्छाणुवज्जावज्ज सोक्क-साक्कस-पच्चड्ड-पच्छन्द-णिम्मह-णी-णीण-णीलुक्क पदअ-रम्भ-परिअल्ल-वोल परिअल-णिरिणासणिवहा-वसेहावहराः"। (६२)

महिलाण पेम्म-संगयं आगच्छन्तीण जो न अब्भिडइ ।
उम्मत्थइ नाण-सिरी तस्सब्भागच्छइ विवेओ ॥११॥

**शब्दार्थ**—(पेम्म-संगयम्) प्रेमपूर्वक क्रीडा के लिए; (आगच्छन्तीण) आई हुई; (महिलाण) स्त्रियों का; (जो न अब्भिडइ) जो साथ नहीं करते—उसके साथ क्रीडा नहीं करते; (तस्स) उसके सन्मुख; (नाण-सिरी) ज्ञान और लक्ष्मी; (उम्मत्थइ) चलकर आती है। (विवेओ) विवेक; (अब्भागच्छइ) आता है। अर्थात् उसे ज्ञान, लक्ष्मी और विवेक प्राप्त होता है।

**टिप्पण**—अहिपच्चुइआ । आगच्छन्तीण ।" "आङा अहिपच्चुअः" (१६३)

संगय । अब्भिडइ । " समा अब्भिडः" (१६४)

उम्मत्थइ । अब्भागच्छइ । "अभ्याङोम्मत्थः" (१६५)

न भवे पच्चागच्छइ अपलोट्टिअ-माणसो जुवइ-सङ्गे ।
पडिसाय-मणो परिसामिएहिं कहिओवसम - मग्गो ॥१२॥

**शब्दार्थ**—(जुवइ-सङ्गे) युवति का संग करने में; (अपलोट्टिअ मानसो) जिसका मन निवृत्त है, और (पडिसाय-मणो) जिसका मन शान्त है, (परिसामिएहिं) शान्त भाव से, (कहिओवस मग्गो) उपदिष्ट मार्ग पर जो चलता है, वह ( न भवे पच्चागच्छइ) पुनर्भव में नहीं आता ।

**टिप्पण**— पच्चागच्छइ । अपलोट्टिअ । "प्रत्यङा पलोट्टः" (१६६)

पडिसाय । परिसामिएहिं । उवसम । "शमेः पडिसा परिसामौ" (१६७)

सङ्खुड्डण-कुसलाणं उब्भावन्तीण केवि रमणीण ।
किलकिंचिअ-मोट्टाइअ-कोड्डमिएहिं न खेड्डन्ति ॥१३॥

**शब्दार्थ**—(सङ्खुड्डण-कुसलाण) रमण करने में कुशल; (उब्भावन्तीण) ऐसे भोगियों के साथ क्रीड़ा करने वाली; (के वि रमणीण) रमणियों के साथ भी उनके; (किलकिंचिअ) किलकिंचित; (मोट्टाइअ) मोट्टायित; (कोड्डमिएहिं) कुट्टमित आदि से प्रेरित होकर निरागी महात्मा; (न खेड्डन्ति) क्रीड़ा नहीं करते ।

किलकिञ्चित-स्मित हसित रुदित भय रोष गर्व दुःख श्रमाभिलाष-संकरः किलकिंचितम् ।

मोट्टायित—प्रिय कथादौ तम्द्भावभावनोत्था चेष्टा ।

कुट्टमित—अधरादिग्रहात् दुःखे पि हर्ष. कुट्टमितम् ।

**रममाणीओ रामा णीसरणिज्जं अवेल्लणिज्जं च ।**
**अग्घविअ-वम्महाओ को अग्घाडइ सिणेहेण ।।१४।।**

**शब्दार्थ**—(णीसरणिज्ज) रमणीय=सुन्दर पुरुषों के साथ; तथा (अवेल्लणिज्ज) अरमणीय=कुरूप पुरुषों के साथ; (रममाणीओ) रमण करने वाली, (वम्महाओ अग्घविअ) काम विकार से परिपूर्ण, (रामा) स्त्रियों को; (को सिणेहेण अग्घाडइ) कौन विचक्षण उसे स्नेह से भर सकता है ? अर्थात् गम्यागम्य का विचार न करने वाली स्त्रियों से कौन प्रेम रखता है ? अर्थात् कोई नहीं ।

**टिप्पण**—सङ्खुड्डण । उब्भावन्तीण । किलकिंचिअ । मोट्टाइअ । कोड्डमिएहिं । खेड्डन्ति । रममाणीओ । णीसरणिज्जं । अवेल्लणिज्जं । "रमे सङ्खुड्डखेड्डोब्भाव-किलकिंच-कोड्डम-मोट्टाय णीसरवेल्ला. (१६८)

मायाइ उद्धुमाया, अहरेमिअ- तुच्छयाइ अङ्गुमिआ ।
चवलत्त-पूरिआओ को तुवरइ दट्ठुम् इत्थीओ ? ।।१५।।

**शब्दार्थ**—(मायाइ उद्धुमाया) माया से भरी हुई; (अहरेमिअ) पूर्ण, (तुच्छयाइ-अङ्गुमिआ) तुच्छता मे परिपूर्ण; (चवलत्त-पूरिआओ) तथा चपलता से भरी हुई; (इत्थिओ) स्त्री को, (दट्ठुम्) देखने के लिए, (को) कौन विद्वान् लालायित, (तुवरइ) हो सकता है ? अर्थात् ऐसी स्त्री को कोई भी पुरुष देखना नही चाहेगा ।

**टिप्पण**—अग्घविअ । अग्घाडइ । उद्धुमाया । अहरे मिअ । अङ्गुमिआ । पूरिआओ । "पूरेरग्घाडाग्घवो द्धुमाङ्गुमाहिरेमाः" (१६९)

तूरन्ति, अतूरन्तांपि हु जअडावन्ति, तुरिअ-मयणाओ ।
अहह हलिद्दी-राया खिरन्त-सेएहि अङ्गेहिं ।।१६।।

**शब्दार्थ**—(तुरिअ-मयणाओ) जिसका काम उल्लसित हुआ है; ऐसी (हलिद्दी-माया) हलदी जसी रंगवाली=अर्थात् अस्थिर प्रीति वाली स्त्रियाँ, (अहह) खेद है कि; (खिरन्त-सेएहिं अङ्गेहिं) पसीने से चूते अंगों से, (तूरन्ति) स्वय विषय सुख का उत्साह रखती है, (अतूरन्तं पि हु जअडावन्ति) एव विषयों गें उत्साह नही रखने वाले पुरुषों को भी विषयोत्सुक बनाती है ।

**टिप्पण**—तुवरइ । जअडावन्ति । "त्वरस्तुवर जअडौ" (१७०)

पच्चड्डमाण-सरीरा झरन्त-खाल व्व पज्झरिअ-रमणा ।
धीरा अणिड्ड अन्ते वि णिच्चलावेइ ही महिला ॥१७॥

**शब्दार्थ**—(पच्चड्डमाण-सरीरा) प्रस्वेद से झरती हुई; (झरन्त-खाल व्व पज्झरिअ-रमणा) बहती हुई नाली जैसी क्रीड़ास्थल=योनि वाली; (महिला) स्त्री, (ही) खेद है कि, (अणिड्ड अन्ते वि) अनार्द्र=अनासक्त; (धीरा) धीर पुरुष को भी; (णिच्चलावेइ) आर्द्र कर देती है=विचलित कर देती है।

**टिप्पण**—खिरन्त। पच्चड्डमाण। झरन्त। पज्झरिअ। अणिड्ड अन्ते। णिच्चलावेइ ।"क्षरः खिर-झर-पज्झर-पच्चड्ड-णिच्चल-णिड्डुआः (१७३)

उच्छल्लिअ-परिफाडिअ-भेगोवम-रमणि-रमण-रमिराण ।
सत्ती विअलइ, थप्पइ कन्ती, बुद्धी अ णिड्डुहइ ॥१८॥

**शब्दार्थ**—(उच्छल्लिअ) प्रथम कूदता हुआ=फूला हुआ; (परिफाडिअ) बाद में फटा हुआ, (भेगोवम) मेंढक जैसी; (रमणि) स्त्रियों के साथ; (रमण-रमिराण) रमण करने वाले पुरुष की; (सत्ती) शक्ति, (विगलइ) क्षीण हो जाती है; (कन्ती) कान्ति-तेज, (थिप्पइ) नष्ट हो जाता है; (बुद्धी अणिड्डुहइ) बुद्धि का नाश होता है।

**टिप्पण**—उच्छल्लिअ। "उच्छल उच्छल्लः" (१७४) विअलइ। थिप्पइ। णिड्डुहइ। "विगलेस् थिप्प-णिड्डुहौ" (१७५)

तस्स विसट्टउ हिअयं, सयहुत्तं दलउ बुद्धि-कोसल्लं ।
जो लिहइ वलिअ-भत्तं व वम्फि-लालं रमणि-अहरं ॥१९॥

**शब्दार्थ**—(वलिअ भत्त व) वमन किये हुए भोजन की तरह, (वम्फि-लालं) टपकती हुई लार से युक्त, (रमणि अहर) स्त्री के अधर को, (जो लिहइ) जो चाटता है—चुम्बन करता है, (तस्स) उसका, (हिअयं) हृदय; (सयहुत्त) सौ बार, (विसट्टउ) टूटे और; (बुद्धि-कोसल्ल) बुद्धि कौशल्य, (दलउ) चूर्ण=नष्ट हो जाय। इस प्रकार के अकार्य में रत पुरुष का चैतन्य और पाण्डित्य निष्फल है।

**टिप्पण**—विसट्टउ। दलउ। वम्फि। वलिअ। "दलि-वल्योर्विसट्ट-वम्फौ" (१७६)

अणफुडिअ-इन्दवारण-रम्मा रामा, अफिट्ट-कडु अत्ता ।
रे हिअय फुट्ट, चुक्कसि किं मग्गा ताहि भुल्लविअं ? ॥२०॥

**शब्दार्थ** - (रामा) स्त्रियां; (अणफुडिअ) अखण्ड, (इन्दवारण) इन्द्र-वारण फल की तरह बाहर से, (रम्मा) सुन्दर है किन्तु अन्दर; (अफिट्ट कडु अत्ता) जिसका कडुआपन नही गया है; ऐसी; है। (रे फुट्ट हिअय) हे भ्रष्ट हृदय ! (ताहि) उनके द्वारा; (भुल्लविअं) भ्रमित होकर तू; (कि) क्यों; (मग्गा) मार्ग से, (चुक्कसि) भ्रष्ट हो रहा है ?। अर्थात् ऐसी स्त्रियों में अनुराग छोड़कर तू अपने मन को संयम मार्ग में क्यों नही लगाता ?

अब्भंसि-दूसि अच्छं अफिडिअ-कहं आणणं महेलाणं ।
रच्चइ तत्थवि मूढो नसिअ-मई णिवहिअ विवेओ ॥२१॥

**शब्दार्थ**—(महेलाण) स्त्रियों की; (अब्भंसि दूसिअच्छ) आँखें; चिपड़ों से युक्त होती है, (अफिडिअ-कह आणण) मुह कफ से भरा रहता है, (तत्थवि) फिर भी; (नसिअ-मइ) जिसकी बुद्धि नष्ट हो गई है और; (निव-हिअ विवेओ) जिसका विवेक नाश हो गया है ऐसा, (मूढो) मूर्ख पुरुष ही (रच्चइ) उनमें आसक्त होता है ।

**टिप्पण**—अणफुडिअ । अफिट्ट । फुट्ट । चुक्कसि । भुल्लविअं । अब्भसि । अफिडिअ । "भ्रशेः फिड-फिट्ट फुड-फुट्ट-चुक्क-भुल्लाः (१७७)

सेहइ सीलं पडिसन्ति धी-गुणा, संजमो वि अवहरइ ।
णिरिणासइ सुअम् अवसेहइ सच्चं जुवइ-सत्ताण ॥२२॥

**शब्दार्थ**—(जुवइ-सत्ताण) युवती में आसक्त पुरुषों के, (सीलं) शील; (सेहइ) नष्ट होता है; (धी-गुणा पडिसन्ति) बुद्धि के गुणों का नाश होता है; (संजमो वि अवहरइ) संयम=सद् अनुष्ठान भी चला जाता है; (सुअम् णिरिणासइ) श्रुत का नाश होता है, (सच्चं अवसेहइ) सत्य भी चला जाता है ।

**टिप्पण**—नसिअ । णिवहिअ । सेहइ । पडिसन्ति । अवहरइ । णिरि-णासइ । अवसेहइ । नशेर्णिरिणासणिवहावसेह-पडिसा-सेहावहराः" (१७८)

ओवासइ न विवेओ थी सङ्गे इअ गुरूहि संदिसिअं ।
अप्पाहामो ता तत्त पिच्छिरो ताउ को निअइ ? ॥२३॥

**शब्दार्थ**—(थी-सङ्गे) स्त्री सङ्ग करने वाले में; (विवेओ न ओवा-सइ) विवेक को कोई अवकाश-स्थान नहीं होता; (इअ) ऐसा, (गुरूहिं संदि-

सिअं) हमारे पूर्वाचार्यों द्वारा सन्दिष्ट; (अप्पाहामो) संदेश को हमें गुरुओं ने दिया है; (ता) अतः (को) कौन; (तत्तपिच्छिरो) तत्त्वद्रष्टा; (ताउ निअइ) उन स्त्रियों को देखना पसन्द करेगा ?

**टिप्पण**—ओवासइ। "अवात् काशो वासः" (१७९) संदिसिअ। अप्पाहामो। "संदिशेरप्पाहः" (१८०)

जे भावि-पुलअणा, भूअदक्खणा, वट्टमाण-सच्चवणा।
तेहिं निअच्छिअ भणिअं मा इत्थीओ पुलोएह ॥२४॥

**शब्दार्थ**—(जे भावि-पुलअणा) भविष्य को देखने वाले; (भूअदक्खणा) अतीत को देखने वाले, (वट्टमाण सच्चवणा) वर्तमान को देखने वाले सर्वज्ञ ने अपने ज्ञान मे; (तेहिं नि अच्छिअ भणिअं) स्त्री को अनर्थ का कारण जानकर कहा है कि, (मा इत्थीओ पुलोएह) तुम स्त्रियो को मत देखो।

अवयच्छन्तोवि जणो नो अक्खइ कामिणिं अवक्खन्तो।
न गुरुं चज्जइ, नन्नं पासइ जं तीइ पासत्थो ॥२५॥

**शब्दार्थ**—(अवयच्छन्तो वि) स्त्री के अशुचिमय देह के स्वरूप को जानता हुआ भी; (जनो) व्यक्ति उसे; (नो अक्खइ) नही देखता अर्थात् उस पर वह विचार नही करता किन्तु, (कामिणिं अवक्खन्तो) आसक्ति भाव से स्त्री की ओर देखता ही रहता है; (जं तीइ पासत्थो) जब वह भोग आदि के लिए उसके पास होता है, तब (न गुरुं चज्जइ) वह न गुरु को देखता है; और (नन्नं पासइ) न अन्य को ही देखता है।

असरीरिणम् अवअक्खइ, अवआसइ सील-जाइ-रहिअंपि।
अवयज्झिऊणं तं पि हु जो इत्थि छिवइ तस्स नमो ॥२६॥

**शब्दार्थ**—(असरीरिणम्) शरीरहीन=कुष्ट आदि से जिसका शरीर गल गया है ऐसे हीन पुरुष को भी स्त्रियां, (अवअक्खइ) राग-भाव से देखती है, (सील जाइ-रहिअं पि) जो शील-जाति से रहित-अधम पुरुष है उसे भी वह सराग भाव से; (अवआसइ) देखती है; (अवयज्झिऊणं तं पि हु) ऐसी स्त्री को देखकर भी; (जो इत्थि छिवइ) जो उनका स्पर्श करता है; (तस्स नमो) उसे नमस्कार।

**टिप्पण**—पिच्छिरो। निअइ। पुलअणा। दक्खणा। सच्चवणा। निअच्छिअ। पुलोएह। अवयच्छन्तो। उअक्खइ। अवक्खन्तो। चज्जइ।

पासइ । अवक्खइ । अवआसइ । अवयज्झिऊण । "दृशो निअच्छ-पेच्छा वय-च्छावयज्झ-वज्ज-सच्चवदेक्खो अक्खावक्खा वयक्ख-पुलोअ-पुलअनिआव-आस-पासा । (१८१)

फासिज्जइ कविकच्छू फंसिज्जइ अहव कुविअ वग्घी वि ।
फरिसिज्जइ न उणेत्थी धम्म-सरीर हणइ छिहिआ ॥२७॥

**शब्दार्थ**—(कविकच्छू फासिज्जइ) कपिकच्छू=केवांच का स्पर्श किया जाय, (अहव) अथवा; (कुवीअ वग्घी कुपित बाघिन का; (फंसिज्जइ) स्पर्श किया जाय; (वि) तो भी उत्तम है क्योंकि ये मात्र शरीर को ही नुकसान पहुंचा सकती है, (न उण-इत्थी फरिसिज्जइ) किन्तु स्त्री का स्पर्श करना अच्छा नहीं; क्योंकि (छिहिआ) स्पर्श की हुई स्त्री; (धम्म-सरीर हणइ) धर्म-शरीर—(इह लोक और परलोक दोनों में कल्याण प्रदान करने वाले शरीर) का नाश करती है ।

आलिहइ नरम् अणालुङ्खणिज्जमवि नीअरच्चणी नारी ।
मूढाण रिअइ सा वि हु हिअए पविसन्त कामम्मि ॥२८॥

**शब्दार्थ**—(नीअ रच्चणी नारी) नीच पुरुष से प्रेम करने वाली स्त्री; (अणालुङ्खणिज्जमवि) अस्पर्शनीय; (नरम्) पुरुष को भी, (आलिहइ) स्पर्श करती है । (पविसन्त कामम्मि) जिस में काम प्रविष्ट हुआ है ऐसे कामातुर; (मूढाण हिअए) मूर्ख पुरुष के हृदय में; (सा वि हु) भी वह; (रिअइ) प्रवेश करती है । अर्थात् अगम्य पुरुष के साथ भी गमन करती है ।

**टिप्पण**—रच्चणीत्यत्र "व्रज-नृत-मदां च्चः (४,२२५) इति बहुवचनाद् रञ्जेर्जस्यच्चत्वम् ॥

छिवइ । फासिज्जइ । फंसिज्जइ । फरिसिज्जइ छिहिआ । आलिहइ । अणालुंखणिज्ज । "स्पृश फासफस-फरिस-छिव-छिहालुङ्खालिहाः" (१८२) रिअइ । पविसन्त । 'प्रविशेरिअः" (१८३)

नारिउ हिअय पम्हुस मा ताओ पम्हुसन्ति पर-लोअं ।
रोञ्चन्ति धम्म-बीजं, न य रोहइ चड्डिअं तं च ॥२९॥

**शब्दार्थ**—(हि अय) हे हृदय ! (नारिउ) स्त्रियों को; (मा) मत; (पम्हुस) स्पर्श कर, क्योंकि (ताओ) वे, (परलोअं) परलोक को; (पम्हु-सन्ति) भुला देती है; (धम्म-बीअ) धर्मरूपी बीज को; (रोञ्चन्ति) पीस डालती है, (त च चड्डियं) पीसे हुए वे धर्म बीज पुनः (न य रोहइ) नहीं उगते ।

**टिप्पण**— पम्हुस । पम्हुसन्ति । "प्रान्मृश-मुषो म्हुसः" (१८४)

णिरणासिअ-मेरं णिरिणज्जिअ-हिरिअं च णिवहिअ गुणं च ।
पीसिअ-सीलं नारिं भुक्किर-सुणइं व को सिहइ ? ॥३०॥

**शब्दार्थ**—(मेरं णिरणासिअ) जिसने मर्यादा को पीस=(नष्ट) डाला है, (हिरिअं) लज्जा को; (णिरिणज्जिअ) पीस दिया है; (गुणं च णिवहिअ) और गुण को भी पीस डाला है; ऐसी (पीसिअ-सीलं) पिष्ट शीला=नष्ट—शीला; (नारिं) स्त्री को; (भुक्किर सुणइं व) भूँकती हुई कुत्ती की तरह; (को सिहइ ?) कौन चाहेगा ? अर्थात् कोई भी नहीं ।

**टिप्पण**— रोञ्चन्ति । चड्डिअं । णिरिणासिअ । णिरिणज्जिअ । णिवहिअ । पीसिअ । भुक्किर । "भषेर्भुक्कः" (१८६)

विलयाहिं असाअड्ढिअ-हिअओ अणकड्ढिओ अ विसर्हि ।
अञ्चिअ-निव्वाण-सिरी सो धन्नो थूलभद्द-मुणी ॥३१॥

**शब्दार्थ**— (विलयाहिं) स्त्रियों से जिसका, (हिअओ) हृदय; (असा-अड्ढिअ) आकृष्ट नहीं हुआ है; (अ) और; (विसर्हि) विषयों से भी जो, (अणकड्ढिओ) आकर्षित नहीं है; और जिसने (निव्वाण) मोक्ष; (सिरी) श्री को; (अञ्चिअ) आकृष्ट किया है ऐसा; (थूलभद्द-मुणी सो धन्नो) वह स्थूलभद्र मुनि धन्य है ।

**टिप्पण**—असाअड्ढिअ । अणकड्ढिओ । अञ्चिअ करिसिअ। अणा-इञ्छिओ । अणच्छेइ । अयञ्छिरेहिं । कृषेः कड्ढ-साअड्ढाञ्चाणच्छायञ्छा-इञ्छाः" (१८७)

कामेण करिसिअ-सरेणावि अणाइञ्छिओ अणच्छेइ ।
मह मणम् अयञ्छिरेहिं गुणेहिं सिरि-थूलभद्द मुणी ॥३२॥

**शब्दार्थ**—(करिसिअ सरेणा वि) कान तक जिसने बाण को आकृष्ट किया है ऐसे; (कामेण) कामदेव से भी जो; (अणाइञ्छिओ) आकर्षित नहीं हुए; (सिरि-थूलभद्द मुणी) श्री स्थूलभद्र मुनि, (अयञ्छिरेहिं गुणेहिं) अपने आकर्षक गुणों से, (मह मणं अणच्छेइ) मेरे मन को आकर्षित कर रहे हैं ।

अक्खोडि आसि-तिक्खं धन्नो बम्हं चरिंसु-वइर-रिसी ।
लुण्डुल्लण-कुसला जस्स तुल्लम् अज्ज वि गमेसन्ति ॥३३॥

**शब्दार्थ**—(अक्खोडि आसि-तिक्खं) कोश से खेंची हुई तलवार के समान अति तीक्ष्ण; (बंभं चरिंसु) ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करने वाले; (वइर-

रिसी) वज्र ऋषि को; (धन्नो) धन्य है। (जस्स तुल्लम्) जिनके समान-उस ऋषि के समान व्यक्ति की; (ढुण्ढुल्लण-कुसला) खोज करने में कुशल व्यक्ति (अज्ज वि) आज भी; (गमेसन्ति) खोज कर रहे हैं।

**टिप्पण**—अक्खोडिअ। "असावक्खोडः" (१८८)

ढण्ढोलिआगमत्थं, घत्तिय तत्तं, गवेसिअप्पाणं।
एक्कोच्चिअ वइर रिसी परिअन्तिअ-परम-बम्ह सिरी ॥३४॥

**शब्दार्थ**—(आगमत्थ ढण्ढोलिअ) आगम के अर्थ की गवेषणा करके; (घत्तिय-तत्तं) तत्व को ढूंढ करके; (गवेसि अप्पाण) आत्मा को खोज करके; (एक्कोच्चिअ वइर रिसी) एक ही ऐसे वज्रर्षि हो गये जिन्होने; (परिअन्तिअ परम-बम्हसिरी) ब्रह्मचर्य रूपी लक्ष्मी को अंगीकृत किया। जैसे बाल्यकाल से ही वज्रर्षि ने श्रामण्य को ग्रहण किया वैसा आज तक किसी ने नही किया।

**टिप्पण**—ढुण्ढुल्लण। गमेसन्ति। ढण्ढोलिअ।

घत्तिअ। गवेसिअ। "गवेषे ढुण्ढुल्ल-ढण्ढोल्ल-ढण्ढोलगमेस घत्ताः" (१८९)

बम्ह सिरीइ सिलिसिअं तव-सिरि-सामग्गिअं च आजम्मं।
नाण-सिरीए अवयासिअं च वइरं नमंसामो ॥३५॥

**शब्दार्थ**—जिन्होने (बम्हसिरीइ सिलिसिअं आजम्मं) आजन्म ब्रह्मचर्य रूपी लक्ष्मी का आलिंगन किया; (तव-सिरि सामग्गियं) तप-श्री का आलिंगन किया, (नाण-सिरीए अवयासिअं) ज्ञानश्री का आलिंगन किया ऐसे, (वइरं नमसामो) वज्र स्वामी को हम नमस्कार करते हैं।

**टिप्पण**—परिअन्तिअ। सिलिसिअं। सामग्गिअं। अवयासिअं। 'श्लिषेः सामग्गावयास परि अन्ताः" (१९०)

मक्खंतं व सुहाए चोप्पडमाणं व चन्दन-रसेण।
के मुक्खं आहन्ता गयसुकुमालं न वम्फन्ति ॥३६॥

**शब्दार्थ**—(मक्खत व सुहाए) सुधा से चुपड़ने की तरह, (चन्दन-रसेण चोप्पडमाणं व) चन्दन रस से चुपड़ने की तरह अपने निर्मल चारित्र से परम शान्ति को प्राप्त करने वाले, (गयसुकुमालं) गजसुकुमाल को; (के मुक्खं आहन्ता) कौन मोक्षाभिलाषी; (न वम्फन्ति) नहीं चाहेगा ? अर्थात् सभी उनकी तरह बनने का प्रयत्न करेगा।

**टिप्पण**—मक्खन्तं। चोप्पडमाणं। "म्रक्षेश्चोप्पडः" (१९१)

**जो अहिलङ्घइ धम्मं, मुक्खं अहिलङ्खए महइ सुक्खं ।**

**सो वच्चउ सिहणिज्जं सिरि-गोअम-सामिणो मग्गं ॥३७॥**

**शब्दार्थ**—(जो अहिलङ्घइ धम्मं) जो धर्म की अभिलाषा करता है; (मुक्खं अहिलक्खए) मोक्ष की आकांक्षा करता है; (महइ सुक्खं) सुख की इच्छा; करता है सो वह पुरुष आत्म कल्याण के लिए भव्य जीवों के; (सिहणिज्ज) स्पृहणीय ऐसे, (सिरि-गोअम-सामिणो) श्री गौतम स्वामी के; (मग्गं) मार्ग की; (वच्चउ) अभिलाषा करे उनके मार्ग पर चले ।

अविलुम्पिअ-भव-सुक्खो, जीव-दयं जम्मओवि, कङ्खन्तो ।

अज्जवि सामइअ-जसो भवाविहीरो जयइ अभओ ॥३८॥

**शब्दार्थ**—(भवसुक्खो) जिन्होंने भव का सुख, (अविलुम्पिअ) नहीं चाहा, ऐसे तथा (जम्मओ वि) जन्म से ही; (जीवदयं कङ्खन्तो) जीवों के प्रति दया की अभिलाषा करने वाले, (अज्ज वि) और आज भी जिनका यश इस ससार में अवस्थित है=इस समय सर्वार्थसिद्धि विमान में है और बाद में भी; (भवा-विहीरो) भवो की अभिलाषा नहीं रखने वाले; (अभओ) अभय कुमार मुनि की; (जयइ) जय हो ।

**टिप्पण**—आहन्ता । वम्फन्ति । अहिलङ्घइ । अहिलङ्खए । महइ । वच्चउ । सिहणिज्ज । अविलुम्पिअ । कङ्खन्तो । "काङ्क्षेराहाहिलङ्घा-हिलङ्खवच्च-वम्फ-मह-सिह-विलुम्पाः" (१९२)

विरमालिअ संसारे जेण पडिक्खाविआ समय-सत्था ।

जयइ सुधम्मो तच्छिअ-कम्मो चच्छिअ-कुतित्थि-मओ ॥३९॥

**शब्दार्थ**—(जेण) जिन्होने; (संसारे) संसार में; (विरमालिअ) रहकर; (समय-सत्था) सिद्धान्त-ग्रन्थों की; (पडिक्खाविआ) स्थापना-रचना की; तथा जिन्होंने, (तच्छिअ कम्मो) कर्मो को चूर कर दिया । (कुतित्थि मओ) तथा जिन्होंने कुतीर्थियों के अभिमान का; (चच्छिअ) मर्दन किया, ऐसे (सुधम्मो जयइ) सुधर्मास्वामी की जय हो ।

**टिप्पण**—सत्था इत्यत्र "वाक्यर्थवचना द्याः" (१,३३) इति पुंस्त्वम् ॥

सामइअ । अविहीरो । विरमालिअ । पडिक्खाविआ । "प्रतीक्षेः साभय-विहीरविरमालाः" (१९३)

**सिव-रम्पण-मिच्छा-रिट्ठि-रम्फणो तक्खिऊण अवमग्गे ।**

**विअसाविअ-सिद्धन्तो भयवं जम्बू-मुणी जयइ ॥४०॥**

**शब्दार्थ**—(सिव) मोक्ष के; (रम्फण) विनाशक; (मिच्छा-दिट्ठि-रम्फणो) मिथ्यादृष्टि का खण्डन करने वाले; (अवमग्ग) कुमार्ग का; (तक्खिऊण) खण्डन करके; (विअसाविअ सिद्धन्तो) जिन्होंने आगमों को प्रगट किया है; ऐसे (भयवं जम्बू-मुणी जयइ) भगवान जम्बू-मुनि की जय हो।

**टिप्पण**—तच्छिअ। चच्छिअ। रम्फण। रम्फणो। तक्खिऊण। "तक्षेस्तच्छ-चच्छ-रम्परम्फाः" (१९४)

कोआसिअ-गहिअ-वओ, दर-वोसट्टिअ-सरोज-हसिर-मुहो।
अणगुञ्जाविअ-स-कुलो भयवं पहव-प्पहू जयइ ॥४१॥

**शब्दार्थ**—(कोआसिअ) विकसित-चढ़ते परिणाम से; (गहिअ वओ) जिन्होंने व्रत ग्रहण किये है; ऐसे तथा (दर-वोसट्टिअ) अधखिले, (सरोज) कमल की तरह, (हसिर मुहो) हँसते मुख वाले; (अणगुञ्जाविअ) अलज्जित; (स कुल) सुकुल में उत्पन्न हुए ऐसे, (भयवं पहव-प्पहू) भगवान प्रभवस्वामी की; (जयइ) जय हो।

**टिप्पण**—विअसाविअ। कोआसिअ। वोसट्टिअ। "विकसेः को आस-वोसट्टौ" (१९५)

हसिर। अणगुञ्जाविअ। "हसेर्गुञ्जः (१९६)

अणडिम्भन्त-ल्हसाविअ-कुतित्थिअं, थिरम् असंसि जिण-वयणं।
जर-मरण-वोज्जिराणं भव-डरिआणं हरउ तासँ ॥४२॥

**शब्दार्थ**—(अणडिम्भन्त) अपने मत से अभ्रष्ट; (कुतित्थिय) कुतीर्थियों को जिसने; (ल्हसाविअ) भ्रष्ट कर दिया - बाद में पराजित कर दिया; तथा जो (थिर) स्थिर है, (असंसि) अविनश्वर है, ऐसे (जिण-वयणं) जिन-वचन, (जर-मरण-वोज्जिराण) जरा-मरण से संत्रस्त बने हुए; तथा (भव डरिआण) भव से डरे हुए जीवों के; (तासं) त्रास को; (हरउ) हरे।

सो वज्जइ न भवाओ गुरूहिं साहूहिं णुमिअ सम्मत्तो।
णिमिअ-मणो जिण-समए कयावि जो न हु पलोट्टेइ ॥४३॥

**शब्दार्थ**—(गुरूहिं) गुरुओं से, (साहूहिं) साधुओं से; (णुमिअ) आरोपित किया है; (सम्मत्तो) सम्यक्त्व को जिसने ऐसा, (णिमिअ-मणो जिण-समए) तथा जिनेश्वर के सिद्धान्तों को जिसने अपने मन में स्थापित किया है ऐसा व्यक्ति, (कया वि जो न हु पलोट्टेइ) और जो कभी भी विपरीत नहीं होता; (सो) वह; (वज्जइ न भवाओ) भव से भयभीत नहीं होता।

**टिप्पण**—वोज्जिराणं । डरिआणं । तासं । वज्जइ । त्रसेर्डर-वोज्ज-वज्जाः (१९८)

णुमिअ । णिमिअ । "न्यसो णिम-णुमौ" (१९९)

पल्लट्टिअ पावा पल्हत्थिअ-कलिणो अ नीससण-जोग्गे ।
विग्घेवि अझङ्खिरया णिल्लसिअ-जिणागमा हुन्ति ॥४४॥

**शब्दार्थ**—(पल्लट्टिअ पावा) जिन्होंने पापों को दूर कर दिये हैं, तथा (पल्हहत्थिअ-कलिणो) कलह को दूर कर दिये हैं; (नीससण-जोग्गे) दीर्घ निश्वास के योग्य; (विग्घे वि) विघ्नों में भी जो, (अझंखिरया) दीर्घ निश्वास नही छोडते अर्थात् दुखी नहीं होते वे; (णिल्लसिअ जिणागमा हुन्ति) जिणागमो से उल्लसित होते है अर्थात् जिनागमो के जानकार होते हैं।

**टिप्पण**— पल्लटिअ । पल्लोट्टेइ । पल्हत्थिअ । पर्यस पलोट्ट-पल्लट्ट-पल्हत्था (२००) ॥

नीससण । अझङ्खिरया । "निश्वसेझङ्खः" (२०१)

ऊसलिअ-गुणो सुम्भिअ-संजम-पुलआ अमाण-हिअयस्स ।
गुञ्जोल्लिअ-जिण-वयणस्सारोअइ कस्स नो नाणं ? ॥४५॥

**शब्दार्थ**—(ऊसलिअ-गुणो सुम्भिअ) जिन में क्षमा आदि गुण उल्लसित=उत्पन्न हुए हैं (ऊसुंभिअ संजम) संयम-चारित्र उल्लसित=प्रकट हुआ है तथा; (पुलआअमाण-हिअयस्स) पुलकित हृदयवाले; (गुञ्जोल्लिअ-जिण-वयणस्स) तथा जिनके हृदय में जिनवचन उल्लसित=स्फुरित हुए हैं, (आरोअइ कस्स नो नाण ?) ऐसे किस व्यक्ति का ज्ञान उल्लसित प्रकट नहीं होता ? अर्थात् ऐसे गुणोवाले व्यक्ति का ज्ञान विकसित होता ही है।

उल्लसिअ-भिसन्त-सिरि, भासिर-नाणेण गसिअ-मिच्छत्तो ।
मोहाघिसिअ - विवेओ, जिण-मयम् ओवाहए धन्नो ॥४६॥

**शब्दार्थ**—(उल्लसिअ-भिसन्त-सिरी) जिनमें धर्मसाधना रूप देदिप्यमान लक्ष्मी उल्लसित—प्रकट हुई है; (भासिर-नाणेण) दीप्तिमान ज्ञान से जिन्होंने, (गसिअ मिच्छत्तो) मिथ्या दार्शनिकों के अभिमान को चूर कर दिया है तथा जो; (मोहाघिसिअ विवेआ) मोह से अग्रस्त विवेकवाले हैं (जिणमयम् ओवाहए धन्नो) ऐसे धन्य पुरुष ही जिनमत का अवगाहन करते हैं।

**टिप्पण**—णिल्लसिअ । ऊसलिअ । ऊसुम्भिअ पुलआअमाण । गुञ्जोल्लिअ । अरोअइ । उल्लसिअ ।

"उल्लसेरूसलोसुम्भ-णिल्लस-पुलआअ-गुञ्जोल्ला रोआः" (२०२)

भिसन्त । भासिर । भासेर्भिसः (२०३) ॥

गसिअ । अघिसिअ । "ग्रसेर्घिसः" (२०४) ॥

ओगाहिअ-जिण-वयणो, गुण-ठाण-वलग्गिओ चडइ मुक्खं ।

भव-सुह अणगुम्मडिओ अगुम्मिओ मोहणिज्जेहि ॥४७॥

**शब्दार्थ**—(ओगाहिअ-जिण-वयणो) जिसने जिन वचन का अवगाहन किया है; (गुण-ठाण-वलगिओ) और जो गुणस्थानों पर आरूढ है; (भव-सुह अणगुम्मडिओ) भव-सुख-संसार के सुख में अनासक्त है; (मोहणिज्जेहि अगुम्मिओ) मोहनीय-मोह उत्पन्न करने वाली वस्तु में जो अमूर्च्छित-अनासक्त है वही; (मुक्खं चडइ) मोक्ष की सीढी पर चढता है—मोक्ष में जाता है ।

**टिप्पण**—ओहावए । ओगाहिअ । "अवाग्दाहेर्वाहिः ।" (२०५) वलग्गिओ । चडइ । "आरुहेश्चड-वलग्गौ" (२०६) अणगुम्मडिओ । अगुम्मिओ । मोहणिज्जेहिं । "मुहेर्गुम्म गुम्मडौ" (२०७) ।

अहिऊलइ कम्मगणं आलुङ्खइ इन्धणं जहा डहणो ।

वलणिज्ज-हरण - बुद्धी गिण्हंतो भयवओ वयणं ॥४८॥

**शब्दार्थ**—(वलणिज्ज) ग्रहणीय वस्तु को, (हरण) ग्रहण करने की; (बुद्धी) बुद्धिवाले, (गिण्हंतो भगवओ वयणं) भगवान के वचन को ग्रहण करते हुए, (जहा) जैसे, (डहणो) अग्नि; (इन्धनं) इन्धन को; (आलुङ्खइ) जलाती है वैसे ही वे; (कम्मगण) कर्मों को; (अहिउलइ) जलाते हैं ।

**टिप्पण**—अहिऊलइ । आलुङ्खइ । डहणो" दहे रहिऊलालुङ्खौ"

पिङ्गिअ संजम भारा, निरुवारिअ-पवयणे अणुसरन्ता ।

अहिपच्चु अन्ति मुत्तिं जोअं घित्तूण सील-धणा ॥४९॥

**शब्दार्थ**—(पिङ्गअ संजम भारा) जिन्होंने संयम के भार को ग्रहण किया है, (निरुवारिअ पवयणे) द्वादशांगीरूप प्रवचन के सूत्र और अर्थ को ग्रहण किए हुए का; (अणुसरन्ता) स्मरण करते हुए; (सील-धणा) शील ही जिसका धन है ऐसे चारित्र सम्पन्न मुनि, (जोगं) योग को; (घेत्तूण) ग्रहण कर; (मुत्तिं) मुक्ति को; (अहिपच्चुअन्ति) प्राप्त करते हैं - मोक्ष में जाते हैं ।

**टिप्पण**—वलणिज्ज । हरण । गिण्हन्तो । पङ्गअ निरुवारिअ । अहिपज्चु अन्ति ।" ग्रहोवल-गेण्ह-हर-पङ्ग् निरुवाराहि पच्चुआः ॥ (२०९)

गेण्हि वयाइँ घेत्तुं घेत्तव्वं वोत्तुमवि अ वोत्तव्वं ।
जे उज्जआ खु ताणं वोत्तूण गुणे कयत्थु म्हि ॥५०॥

**शब्दार्थ**—(गेण्हिअ वयाइं) व्रतों को ग्रहण करके; (घेत्तुं घेत्तव्वं) ग्रहण करने योग्य अर्हंत प्रणीत उपादेय तत्त्व को जान करके, (वोत्तुमवि अ वोत्तव्वं) कहने योग्य तत्त्व का उपदेश करना चाहिए। ऐसे विचार वाले (जे उज्जआ) तथा जो व्रत ग्रहण करने के लिए उद्यत हुए हैं; (खु) निश्चित; (ताणं गुणे वोत्तूण) उनके गुणों का वर्णन करके (कयत्थु म्हि) मैं कृतकृत्य हूं ॥

**टिप्पण**—घेत्तूण । घेत्तुं । "क्त्वा तुम् तव्येषु घेत्' (२१०) ॥ क्वचिन्न भवति । गेण्हिअ ॥

वोत्तुं । वोत्तव्वं । वोत्तूण । "वचो वोत्" (२११)

भोत्तूण भोत्तव्वं भोत्तुं निव्वुइ-सुहाइँ मोत्तु-मणा ।
मोत्तव्वारम्भं मोत्तूण महन्ता तवस्सन्ति ॥५१॥

**शब्दार्थ**—(भोत्तूण भोत्तव्व) भोगने योग्य शुभाशुभ कर्मफल को भोगकर (निव्वुइ-सुहाइँ) निर्वृत्ति मोक्ष सुख को; (भोत्तुं) भोगने के लिए (मोत्तव्वा आरम्भ) छोडने योग्य आरंभ को; (मोत्तूण) छोडकर; (मोत्तु-मणा) मोक्ष की अभिलाषा वाले; (महन्ता) महामुनि; (तवस्सन्ति) तप करते हैं ।

सोअ-वसा रोत्तूण वि रोत्तुमणा विम्हरन्ति रोत्तव्वं ।
दट्ठूण जाण मुत्तिं अरहन्ताणं नमो ताणं ॥५२॥

**शब्दार्थ**—(सोअ वसा) शोक वशात्; (रोत्तूण) रोकर; (वि) भी; (रोत्तुमणा) रुदन करने की इच्छा होते हुए भी; (जाण) जिनकी; (मुत्तिं) मूर्ति को; (दट्ठूण) देखकर; (रोत्तव्वं) रुदन करने योग्य=मृतक को; (विम्हरन्ति) भूल जाते हैं; (ताणं अरहन्ताणं नमो) ऐसे उस अर्हन्त भगवन्त को-नमस्कार ।

**टिप्पण**—भोत्तूणं । भोत्तव्वं । भोत्तुं । मोत्तुं । मोत्तव्व । मोत्तूण । रोत्तूण । रोत्तुं । रोत्तव्वं । "रुद-भुज-मुचां तोन्त्यस्य" (२१२) ॥

जे दट्ठव्वे दट्ठुं इन्दो काहीअ लोअण-सहस्सं ।
दंसण-तत्तिं काउं अरहन्ताणं नमो ताणं ॥५३॥

**शब्दार्थ**—(दंसण-तत्ति काउं) दर्शन से आत्मा को तृप्त करने के लिए; (जे दट्ठव्वे दट्ठु) जो सौभाग्यादि गुणों से युक्त ऐसे दर्शन करने योग्य को देखने के लिए; (इन्दो) इन्द्र ने; (लोअण-सहस्सं) सहस्र आंखें; (काहीअ) की; (अरहताण नमो ताण) ऐसे अर्हन्तों को नमस्कार।

काऊणं कायव्वं कम्म काहिन्ति जे ण पुणरुत्तं।
जग-बोहम् इच्छिराणं अरहन्ताणं नमो ताणं ॥५४॥

**शब्दार्थ**—(कायव्वं) करने योग्य, (कम्म) कर्म को; (काऊणं) करके, और (जे ण पुणरुत्तं) जो पुन:; (कम्मं) कर्म को; (ण काहिन्ति) नहीं करेंगे ऐसे, (जग-बोहम् इच्छिराण) जगत् को बोध देने की इच्छा रखने वाले; (ताणं) उन; (अरहन्ताण नमो) अर्हन्तों को नमस्कार।

**टिप्पण**—काहीअ। काउं। काऊण। कायव्वं। काहिन्ति। 'आ कृगो भूत भविष्यतोश्च" (२१४)

जो अणुगच्छइ, जच्छइ, छिन्दिउम् अच्छइ तणुं च तेसिं पि।
अणभिन्दिअ-भावाणं अरहन्ताणं नमो ताणं ॥५५॥

**शब्दार्थ**—(जो अणुगच्छइ) जो भक्ति से पीछे-पीछे चलता है; (जच्छइ) जो आदर पूर्वक वस्तु को प्रदान करता है, (छिन्दिउम् अच्छइ तणुं च) जो द्वेष बुद्धि से शरीर का छेदन करता है; (तेसिं पि) उन पर भी, (अणभिन्दिअ-भावाणं) जो समभाव रखते है; (ताण अरहन्ताणं नमो) ऐसे अर्हन्तो को नमस्कार।

**टिप्पण** – इच्छिराण। अणुगच्छइ। जच्छइ। अच्छइ। "गमिष्यमासां छः" (२१५)

छिन्दिउ। अणभिन्दिअ। 'छिदि-भिदोन्द.," (२१६)

सविहे न जाण कुज्झइ, जुज्झइ, मुज्झइ भवे अगिज्झन्तो।
देही, बुज्झइ, सिज्झइ, अरहन्ताणं नमो ताणं ॥५६॥

**शब्दार्थ**—(सविहे) जिनके समीप पहुंचने पर; (भवे अगिज्झन्तो) भव मे अनासक्त होता हुआ; (देही) व्यक्ति; (कुज्झइ) किसी पर क्रोध नहीं करता, (जुज्झइ) किसी से युद्ध नहीं करता; (मुज्झइ) किसी पर मोह नहीं करता, (बुज्झइ) बोध को प्राप्त करता है; (सिज्झइ) सिद्ध अवस्था को प्राप्त करता है; (ताण अरहन्ताण नमो) ऐसे अर्हन्तो को नमस्कार।

टिप्पण—जुज्झइ। बुज्झइ। जुज्झइ। अणिज्झन्तो। कुज्झइ। सिज्झइ। "युध-बुध-गृध-क्रुध-सिध-मुहां ज्झः" (२१७)

रुन्धिअ-करणं, रुम्भिअ-पवणं, रुज्झिअ-मणं, अपडिएहिं।

झायव्वाणं मुणीहिं अरहन्ताणं नमो ताणं ॥५७॥

शब्दार्थ—(रुन्धिअ करण) इन्द्रियों को रोककर; (रुम्भिअ पवण) श्वासोच्छ्वास को रोककर; (मणं रुज्झिअ) मन को रोककर; (अपडिएहिं) अस्खलित रूप से; (मुणीहिं) मुनियों द्वारा जिनका; (झायव्वाण) ध्यान किया जाता है; (ताण) उन, (अरहन्ताणं) अर्हन्तों को; (नमो) नमस्कार।

टिप्पण—रुन्धिअ। रुम्भिअ। रुज्झिअ। "रुधो न्ध-म्भौ च।" (२१८)

सड़िअ-रया-कढिअमला, वड्ढिअ-तव-तेअ-वेढिअङ्गा य।

जाणज्ज वि वर-मुणिणो अरहन्ताणं नमो ताणं ॥५८॥

शब्दार्थ—(सडिअ-रया) जिन्होंने बध्यमान कर्म रज को गला दिया है-सड़ा दिया है; (कढिअमला) बध्यकर्मों को औटा दिया है, भस्म कर दिया है; (वड्ढिअ-तव-तेअ) और बढ़ते हुए तप-तेज से जिनका; (वेढिअङ्गा) शरीर व्याप्त है ऐसे; (वर-मुणिणो) श्रेष्ठ मुनि; (जाणज्ज वि) आज भी जिनके शासन मे है; (अरहन्ताणं नमो ताण) ऐसे अर्हन्तों को नमस्कार।

टिप्पण—अपडिएहिं। सडिअ। "सद-पतोर्डः" (२१९)
कढिअ। वड्ढिअ। "क्वथ-वर्धां ढः" (२२०)
वेढिअ। "वेष्टः" (२२१)

दुक्कड-संविल्लिअओ भव पासोव्वेढणोज्जओ लोओ।

उव्वेल्लिज्जइ जेहिं, अरहन्ताणं नमो ताणं ॥५९॥

शब्दार्थ—(दुक्कड-संविल्लिअओ) अशुभ कर्मों से व्याप्त होने पर भी; (भव) भव; (पास) बन्धन से; (उव्वेढणोज्जओ) मुक्त होने के लिए प्रयत्नशील; (लोओ) लोग; (जेहिं) जिनके द्वारा; (उव्वेल्लिज्जइ) बन्धन मुक्त किये जाते हैं; (ताणं) उन, (अरहन्ताणं) अर्हन्तों को; (नमो) नमस्कार।

टिप्पण—संवेल्लिअओ। "समोल्लः" (२२२)
उव्वेढण। उव्वेल्लिज्जइ। "वोदः" (२२३)

जे झाउं संपज्जइ अणखिज्जिर-सिज्जिराण सा सिद्धी ।

ते वच्चामो सरणं नच्चिर-मच्चिर-मणा सिद्धे ॥६०॥

**शब्दार्थ**—(अणखिज्जिर सिज्जिराण) खेद और प्रस्वेद रहित; (सिद्धी) सिद्धि का; (झाउं) ध्यान करके हमें (सा) वह खेद और प्रस्वेद रहित सिद्धि; (संपज्जइ) मिलती है; (नच्चिर) अत्युत्कट भक्ति से नृत्य करते हुए; और (मच्चिर) संतुष्ट; (मणा) मन से युक्त होकर; (ते) उन; (सिद्धे) सिद्धों के हम; (सरणं) शरण में; (वच्चामो) जाते हैं ।

**टिप्पण**—संपज्जइ । अणखिज्जिर । सिज्जिराण । "स्विदां ज्जः" (२२४)

वच्चामो । नच्चिर । मच्चिर । "व्रज-नृत-मदां च्चः ।" (२२५)

आणन्द-रोविराणं जेसु नवन्ताण होइ नोव्वेवो ।

धाइ समुहं च मुत्ती, ताण नमो सव्व-सिद्धाणं ॥६१॥

**शब्दार्थ**—(आणन्द-रोविराणं) आनन्द से अश्रुपात करने वाले, (जेसु) ऐसे सज्जनों को, (नवन्ताण) नमस्कार करने वालो के मन में, (नोव्वेवो होइ) उद्वेग उत्पन्न नहीं होता किन्तु, (धाइ समुहं च मुत्ती) उनको नमस्कार करने से मुक्ति स्वयं उनके सामने चली आती है । अर्थात् ऐसे व्यक्ति मुक्ति को प्राप्त करते हैं, (ताण) उन, (सव्व) समस्त, (सिद्धाणं) सिद्धों को; (नमो) नमस्कार ।

**टिप्पण**—"जेसु इति" द्वितीया तृतीययोः सप्तमी [३:१३५] इति सप्तमी ।

रोविराण । नवन्ताण । "रुद नमोर्वः"

उव्वेवो । "उद्विजः" (२२७)

कुपहे धावन्ति अखादिमं च खादन्ति तेहि वि समं जो ।

धावइ खाइ अ तं पि हु बोहन्ते झामि आयरिए ॥६२॥

**शब्दार्थ**—जो (कुपहे) कुमार्ग पर; (धावन्ति) दौड़ते हैं अर्थात् अनीति का आचरण करते हैं; (च) तथा; (अखादिमं) अखाद्य-अभक्ष को (खादन्ति) खाते हैं (तेहि वि समं) उनके साथ जो; (धावइ) दौड़ता है उनके साथ; (खाइ) खाता है अर्थात् कुमार्गगामी का साथ करता है (तं पि हु) उनको भी जो; (बोहन्ते) बोध देते हैं; (झामि आयरिए) उन आचार्य का ध्यान करता हूं ।

टिप्पण—खाइ । खाइ । खाद-धावोर्लुक् (२२८)॥ बहुलाधिकाराद् वर्तमाना भविष्यद्विध्याद्येकवचन एव । तेनेह न । खादन्ति । अखादिमं खादन्ति ॥ क्वचिन्न । खादइ ॥

कम्माइं वोसिरन्ता अतुट्टिरेणं तवेणं सक्कन्ता ।

अफुडिअ-अचलिअ-महिमा आयरिआ दिन्तु ते बोहिं ॥६३॥

**शब्दार्थ**—(कम्माइं वोसिरन्ता) कर्मों को त्यागते हुए; (अतुट्टिरेणं) अत्रुटित-अस्खलित; (तवेण) तप से सामर्थ्य रखते हुए; (अफुडिअ) अस्फुटित) अखंड चारित्र एवं; (अचलित) स्थिर; (महिमा) महिमा वाले; (आयरिआ) आचार्य, (ते) तुम्हें; (बोहिं) बोधि को; (दिन्तु ) दें ।

**टिप्पण**—वोसिरन्ता । "सृजो रः (२२९) अतुट्टिरेणं । सक्कन्ता । "शकादीनां द्वित्वम्" (२३०)

फुट्टिअ-मोहो लोओ चल्लइ अपमिल्लिअ-व्वओ मोक्खे ।

जेहिं अपमीलिअच्छं पेच्छामो ते उवज्झाए ॥६४॥

**शब्दार्थ**—(फुट्टिअ-मोहो) जिनका मोह विदारित हो गया और जो; (अपमिल्लिअ-व्वओ) अपमीलित-विकसित व्रत-चारित्र वाले हैं ऐसे; (लोओ) लोग; (मोक्खे) मोक्ष में; (चल्लइ) जाते हैं ऐसे; (ते) उन; (उवज्झाए) (उपाध्यायों को हम; (अपमीलिअ-अच्छं) अपलक नेत्रों से; (पेच्छामो) देखते हैं ।

**टिप्पण**—अफुडिअ । अचलिअ । फुट्टिअ । चल्लइ । "स्फुटि-चलेः" (२३१)

अणउम्मिल्लिअ-नाणोम्मीलणओ हरिस पसविरा लोए ।

सुअ जलम् ओज्झाया पवरिसन्तु वित्थरिअ-गुण-भरिआ ॥६५॥

**शब्दार्थ**—(अणउम्मिलिअ) (अप्रकट) (नाणो) ज्ञान को; (उम्मीलणओ) प्रकट करने वाले; (हरिस पसविरा) हर्ष को उत्पन्न करने वाले; (वित्थरिअ) सर्वत्र विस्तरित; (गुण-भरिआ) गुणों से भरे हुए (ओज्झाया) उपाध्याय; (लोए) लोक में; (सुअ-जलम्) श्रुतरूप जल की; (पवरिसन्तु) वर्षा करें ।

**टिप्पण**—अपमिल्लिअ । अपमीलिअ । अणउम्मिल्लिअ । उम्मीलणआ । "प्रादेर्मीलेः" (२३२)

पसविरा । "उवर्णस्यावः"(२३३)

वित्थरिअ । भरिआ । "ऋवर्णस्यारः" (२३४)

पवरिसन्तु । "वृषादीनामरिः" (२३५)

नो रूसइ, नो तूसइ जेऊण मणं लयम्मि जो नेन्तो ।
मोत्तुं भवं विणीअं तं साहु-जणं नमंसामि ॥६६॥

**शब्दार्थ**—(भवं मोत्तुं) भव को छोड़ने के लिए; (जेऊण मणं) मन को जीतकर; (लयं जो नेन्तो) जो साम्य अवस्था को प्राप्त करता है; (नो रूसइ) तथा शत्रु पर क्रोध नहीं करता; और (नो तूसइ) न मित्र पर सन्तुष्ट ही होता है; (तं) उस, (विणीअं) विनीत; (जितेन्द्रिय); (साहु जणं) साधु-जन को मैं; (नमंसामि) नमस्कार करता हूँ ।

**टिप्पण**—रूसइ । तूसइ । "रुषादीनां दीर्घः" (२३६) जेऊण । नेन्तो । मोत्तुं । "युवर्णस्य गुणः" (२३७) क्वचिन्न विणीअं ॥

उप्पाइअ-सद्दहणो असद्दहाणे वि देइ जो बोहिं ।
संसार-नासिरो हं तं साहुं चिय विहेमि गुरुं ॥६७॥

**शब्दार्थ**—(असद्दहाणे वि) अश्रद्धालु में भी; (उप्पाइअ-सद्दहणो) श्रद्धा उत्पन्न करके अर्थात् उन्हें आस्तिक बनाकर; (जो बोहिं देइ) जो बोधि को देते हैं; (तं साहुं) उस साधु को; (संसार-नासिरो हं) संसार से नाशशील स्वभाव वाला मैं; (चिय) निश्चित रूप से; (गुरुं विहेमि) उसे गुरु के रूप में स्वीकार करता हूँ ।

**टिप्पण**—सद्दहणो । असद्दहाणे । "स्वराणां स्वराः" (२३८) क्वचिन्नित्यम् । देइ । नासिरो । विहेमि । रूसइ । तूसइ । 'व्यञ्जनाद् अद् अन्ते" (२३९)

पञ्च वि अरहन्ताइं परमेट्ठी झाह, झाअह किं अन्नं ? ।
होऊण निव्विकप्पा, पसम-रया होइऊण तहा ॥६८॥

**शब्दार्थ**—(होऊण निव्विकप्पा) हे भव्यो ! निर्विकल्प—संशय रहित होकर तथा; (पसम रया) प्रशम रत, (होइऊण) होकर; (पंच वि अरहन्ताइं) अर्हतादि पाँचों; (परमेट्ठी) परमेष्ठी का; (झाह) ध्यान करो । (किम् अन्नं झाअह) अन्य का क्यों ध्यान करते हो ? अर्थात् हरि-हरादि का ध्यान छोड़कर अर्हत् का ध्यान करो ।

**टिप्पण**—झाह । झाअह । होऊण । होअऊण । स्वरात् अनतो वा (२४०) ।

**श्रुतदेवी प्रशंसा ६९-८३**

**जिणउ कलिं अघ-चिणिअं धुणिअ-सिरं सुणिअ-गुण-गणा थुणिआ ।**
**इन्देहि वि जग-पुणणी सुअ-देवी सयल-अघ-लुणणी ॥६९॥**

**शब्दार्थ**—(सुणिअ-गुण-गणा) सुना गया है गुणों का समुदाय जिनके द्वारा ऐसे; (इन्देहि वि) इन्द्रों के द्वारा भी; (धुणिअ-सिरं) माथा धुना गया है; ऐसी (थुणिआ) प्रशंसित; (जग पुणणी) जगत पावनी, (सयल-अघ-लुणणी) समस्त पापों का विच्छेद करने वाली, (सुअ-देवी) श्रुतदेवी; (अघ-चिणिअं) पाप से परिपुष्ट, (कलि) कलह को; (जिणउ) जीते। अर्थात् हमें मत्सर रहित करे।

सो हुणइ भप्प-मज्झे ख-पुप्फमुच्चेइ पङ्कयाइँ थले ।
तह उच्चिणेइ मोत्तुं सुअ-देविं महइ जो अन्नं ॥७०॥

**शब्दार्थ**—(सो) वह पुरुष; (भप्प मज्झे हुणइ) भस्म-राख में होम करता है, (ख-पुप्फमुच्चइ) आकाश-पुष्पों को चुनता है; (पङ्कयाइ थले) तथा कमलों को भूमि स्थल पर चुनता है; (जो) जो; (सुअ देविं) श्रुत देवी को; (मोत्तुं) छोड़कर; (अन्न) अन्य देवी देवता को, (महइ) पूजता है। उसका पूजन निष्फल होता है।

**टिप्पण**—जिणउ। चिणिअं। धुणिअ। सुणिअ। थुणिआ। पुणणी। लुणणी। हुणइ। "चि-जि-श्रु-हु-स्तु-लू-पू-धूगां णो ह्रस्वश्च"(२४१) बाहुलकात् क्वचिद् वा। उच्चेइ उच्चिणेइ ॥

लक्खेहिं पि हुणिज्जइ हुव्वइ कोडीहिं अहव मन्ताणं ।
सुअ-देवया थुणिज्जइ न जा न ता चिव्वए नाणं ॥७१॥

**शब्दार्थ**—(लक्खेहिं पि हुणिज्जइ) लाखों मन्त्रों से होम कराया जाय; (अहव) अथवा; (कोडीहिं) करोड़ों; (मंताणं) मन्त्रों से; (हुव्वइ) होम कराया जाय; (जा) किन्तु जब तक; (सुअ देवया) श्रुत देवता की; (न थुणिज्जइ) स्तुति नहीं की जाती; (ता) तब तक; (नाणं) ज्ञान की; (चिव्वए) वृद्धि; (न) नहीं होती।

**तेण चिणिज्जइ नाणं जिव्वइ मोहो जिणिज्जए कालो ।**
**सुअ-देवी अन्नेहि वि थुव्वन्ता सुव्वए जेण ॥७२॥**

**शब्दार्थ**—(अन्नेहि) दूसरे के द्वारा; (थुव्वन्ता) स्तुति कराती हुई; (सुअ देवी) श्रुत देवी; (जेण सुव्वए) जिनके द्वारा सुनी जाती है; (तेण) उस पुरुष के द्वारा; (नाण) ज्ञान; (चिणिज्जइ) संचित किया जाता है; (मोहो) मोह; (जिणिज्जए) जीता जाता है; (कालो) और मृत्यु को भी जीता जाता है।

स-जसं सयं सुणिज्जइ लुव्वइ कम्मं लुणिज्जए पावं।
पुव्वइ अप्पप्प-कुलं पुणिज्जए महिअ सुअ-देविं ॥७३॥

**शब्दार्थ**—(महिअ सुअ देविं) जिसने श्रुतदेवी को पूजा है। स जस) वह अपने यश को; (सयं सुणिज्जइ) स्वयं सुनता है। (अर्थात् जो श्रुतदेवी की पूजा करता है उसका यश बढ़ता है) उसके द्वारा; (कम्मं लुव्वइ) कर्मों का नाश किया जाता है—पाप दूर किये जाते हैं; (अप्पप्प पुव्वइ) आत्मा को पवित्र किया जाता है। (कुलं पुणिज्जए) कुल को पुनीत किया जाता है।

भव-भय- धुव्वन्तेहिं पवण-धुणिज्जन्त-तूल-त्तरलस्स।
फलमाउअस्स चिम्मइ सुअ-देवीए पसाएण ॥७४॥

**शब्दार्थ**—(भव-भय-धुव्वन्तेहिं) भव के भय से धूजते हुए पुरुषों द्वारा; (पवन धूणिज्जन्त) पवन से उड़ती हुई; (तूल) रूई के समान चंचल ऐसे; (फलमाउअस्स) आयुष्य का फल; (सुअदेवीए) श्रुतदेवी की; (पसाएण) कृपा से; (चिम्मइ) प्राप्त किया जाता है। (परम पुरुषार्थ रूप महाआनन्द प्राप्त किया जाता है)

चिव्वइ अह न चिणिज्जइ जिव्वइ अहवा जिणिज्जए नावि।
सुव्वइ अह न सुणिज्जइ हुव्वइ न हुणिज्जए अहवा ॥७५॥

**शब्दार्थ**—(चिव्वइ) किसी के द्वारा; (पुण्य) इकट्ठा किया जाता है; (अह) अथवा; (न चिणिज्जइ) नहीं भी किया जाता हो; (जिव्वइ) विजय प्राप्त किया जाता है, (अहवा) अथवा; (जिणिज्जए ना वि) विजय नहीं भी प्राप्त किया जाता है; (सुव्वइ) शास्त्र श्रवण किया जाता है; (अह न सुणिज्जइ) अथवा नहीं भी किया जाता है; (हुव्वइ) होम किया जाता है; (अहवा) अथवा, (न हुणिज्जए) नहीं भी किया जाता है।

थुव्वइ अह न थुणिज्जइ पुव्वइ णाइं पुणिज्जए अहवा।
लुव्वइ अह न लुणिज्जइ धुव्वइ न धुणिज्जए अहवा ॥७६॥

**शब्दार्थ**—(थुव्वइ) स्तुति की जाती है; (अह न थुणिज्जइ) अथवा नहीं की जाती है; (पुव्वइ) पवित्र किया जाता है; (णाइं पुणिज्जए अहवा) अथवा नहीं भी किया जाता है; (लुव्वइ) अशुभ का नाश किया जाता है; (अह) अथवा (न लुणिज्जइ) नहीं भी किया जाता है। (धुव्वइ) पाप रज धोया जाता है; (अहवा) अथवा; (न धुणिज्जए) न भी धोया जाता है।

खम्मइ अह न खणिज्जइ हम्मइ नो वा हणिज्जए जेण ।
सव्वं पि तस्स सहलं सुअ-देवि-विइण्ण-पुण्णस्स ॥७७॥

**शब्दार्थ**—(खम्मइ) धन प्राप्ति के लिए भूमि आदि का खनन किया जाता है। (अह) अथवा; (न खणिज्जइ) न भी खोदा जाता है; (हम्मइ) शत्रु का नाश किया जाता है; (नो वा हणिज्जए) अथवा नहीं किया जाता हो; (सुअ-देवि विइण्ण-पुण्णस्स) यदि श्रुतदेवी द्वारा पुण्य प्रदान किया गया हो तो; (तस्स) उसके; (सव्वं पि सहलं) सभी कार्य सफल हो जाते हैं। (उपरोक्त तीन गाथाओं का विशेषक है)

**टिप्पण**—हुणिज्जइ हुव्वइ । थुणिज्जइ थुव्वन्ता । चिव्वए चिणिज्जइ । जिव्वइ जिणिज्जए । सुव्वइ सुणिज्जइ । लुव्वइ लुणिज्जए । पुव्वइ पुणिज्जए । धुव्वन्तेहिं धुणिज्जन्त । चिव्वइ चिणिज्जइ । जिव्वइ जिणिज्जए । सुव्वइ सुणिज्जइ । हुव्वइ हुणिज्जए । थुव्वइ थुणिज्जए । पुव्वइ पुणिज्जए । लुव्वइ लुणिज्जइ । धुव्वइ धुणिज्जए । "नवा कर्मभावे व्वः क्यस्य च लुक् (२४२)

चिम्मइ चिव्वइ । चिणिज्जइ "म्मश्चेः" (२४३)

खम्मइ कुबोह-सेलो खणिज्जए मूलओ वि पाव-तरू ।
हम्मइ कली हणिज्जइ कम्मं सुअ-देवि-झाणेण ॥७८॥

**शब्दार्थ**—(सुअ-देवि झाणेण) श्रुतदेवी के ध्यान से पुरुष द्वारा; (कुबोह सेलो खम्मइ) कुबोध रूपी पर्वत को खोदा जाता है, (पाव-तरू) पाप रूपी वृक्ष को; (मूलओ वि) मूल से ही; (खणिज्जए) खोदा जाता है; (कली हम्मइ) कलि-कलह का नाश किया जाता है, और (कम्मं हणिज्जइ) कर्म का नाश किया जाता है।

सुअ-देविं झाअन्तो अव्वाहय-भत्ति-निच्चल-मणेण ।
हम्मइ संसार-दुहं मोहं हन्तूण हन्तव्वं ॥७९॥

**शब्दार्थ**—(अव्वाहय) अखण्डित; (भत्ति) भक्ति और; (निच्चल मणेण) निश्चल मन से; (सुअ-देविं झाअन्तो) श्रुतदेवी का ध्यान करता हुआ

पुरुष; (हन्तव्वं) हनन करने योग्य; (मोहं) मोह को; (हन्तूण) हनन करके; (संसार-दुहं) संसार के दुःख को; (हम्मइ) नाश करता है।

**टिप्पण**—खम्मइ। खणिज्जइ। हम्मइ हणिज्जए। खम्मइ। खणिज्जए। हम्मइ हणिज्जइ। "हन् खनोऽन्त्यस्य" (२४४) बाहुलकात् हन्तेः कर्यपि। हम्मइ॥ क्वचिन्न। हन्तूण। हन्तव्वं॥

दुब्भउ गाई-वुब्भउ भारो लिब्भउ खडं च तेणं खु।
पवयण-गाई बोहि-क्खीरं न दुहिज्जए जेण॥८०॥

**शब्दार्थ**—(जेण) जिसके द्वारा; (पवयण-गाई) प्रवचन रूप गाय का; (बोहि) बोधि रूप, (क्खीरं) दूध, (न दुहिज्जए) नहीं दुहा जाता है, (तेण) उस पुरुष द्वारा, (खु) निश्चित ही; (गाई) गाय; (दुब्भउ) दुही जाय, (वुब्भउ भारो) भार उठाया जाय, (खडं च लिब्भउ) खड-भूसा चाटा जाय। अर्थात् कर्तव्यकरणविकल वह पुरुष परमार्थतः गोपालक-भारवाहक और बैल जैसा है।

जेण वहिज्जइ हिअए सुअ-देवी, तेण रुब्भए कम्मं।
रुन्धिज्जइ कलि-ललिअं लिहिज्जए अमयं आकण्ठं॥८१॥

**शब्दार्थ**—(जेण) जिनके द्वारा; (सुअ-देवी) श्रुत-देवी, (हिअए) हृदय में; (वहिज्जइ) धारण की जाती है; (तेण) उस पुरुष के द्वारा, (कम्मं रुब्भइ) कर्म रोका जाता है; (कलि-ललिअं) कलि-काल की प्रवृत्ति को; (रुन्धिज्जइ) रोका जाता है; (लिहिज्जए अमयं आकण्ठं आकण्ठ अमृत का आस्वाद किया जाता है।

**टिप्पण**—दुब्भउ दुहिज्जए। वुब्भउ वहिज्जइ। रुब्भए रुन्धिज्जइ। लिब्भउ लिहिज्जए। "ब्भो दुह लिह-वह-रुधामुच्चात (२४५)।

डज्झइ भवो डहिज्जइ पावं ताणं खु बज्झइ न धम्मो।
बन्धिज्जइ जेहि थुई पवयण-देवीइ भावेणं॥८२॥

**शब्दार्थ**—(जेहि) जिसके द्वारा; (भावेणं) भावना से; (पवयण-देवीइ) प्रवचन देवी की, (थुई) स्तुति; (बन्धिज्जइ) की जाती है (रचना की जाती है; (खु) निश्चित ही; (ताणं) उसके द्वारा पाप का बंध नहीं किया जाता; (भवो) भव का; (डज्झइ) दहन किया जाता है; (पावं डहिज्जइ) पाप जलाया जाता है; तथा (न धम्मो वज्झइ) कर्मान्तर से धर्म का बंध नहीं किया जाता है।

टिप्पण—रुज्झइ रुन्धिज्जइ। "रुधो न्धम्भौ च" (२४६) रुज्झइ रुन्धिज्जइ। "रुधो न्धः" (२४७)।

भावाउ जाणुरुज्झइ अणुरुन्धिज्जइ थवाउ पूआए।
उवरुज्झइ उवरुन्धिज्जइ तवओ सा जयउ वाणी ॥८३॥

शब्दार्थ—(सा जयउ वाणी) उस वाग् देवता की जय हो; (जाण) जिसे; (भावाउ) भाव से प्रसन्न की जाती है; (थवाउ अणुरुन्धिज्जइ) स्तुति से अनुरोध की जाती है; (पूआए) पूजा के लिए; (उवरुज्झइ) रोकी जाती है; (तवओ) तप से; (उवरुन्धिज्जइ) रोकी जाती है।

भत्ती-संरुज्झन्ता संरुन्धिज्जन्तआण मोहेण।
न कह वि अवगम्मन्ती, सुअ-देवी देउ मह बोहिं ॥८४॥

शब्दार्थ—(भत्ती संरुज्झन्ता) भक्ति से रोकी जाती हुई; (मोहेण सरुन्धिज्जन्ताण) तथा मोह से अवरुद्ध-आवृत्त व्यक्ति के लिए; (न कहवि अवगम्मन्ती) किसी भी तरह से अनवगम्य—नहीं जानी हुई; (सुअ-देवी) श्रुत-देवी; (मह बोहिं देउ) मुझे बोधि को दे।

टिप्पण—अणुरुज्झइ अणुरुन्धिज्जइ। उवरुज्झइ उवरुन्धिज्जइ। सरुज्झन्ता सरुन्धिज्जन्ताण। "समनूपाद् रुधे" (२४८)॥

भणन्ती सुअ-देवि त्ति भणिज्जन्ती ति-लोअ-माअ-त्ति।
कम्मेण व भावेणाणुगम्ममाणा दिसउ कज्जं ॥८५॥

शब्दार्थ—(सुअ-देवित्ति भणन्ती) श्रुतदेवी इस नाम से कही जाती हुई; (ति-लोअ-माअत्ति) त्रिलोक-माता ऐसी कही जाती हुई; (कम्मेण) पूजादि क्रिया से तथा; (भावेण) भाव से-आन्तरिक बहुमान से; (अणुगम्ममाणा) अनुगम्यमान—आश्रीयमान भगवती सरस्वती, (दिसउ कज्जं) मुझे कार्य का आदेश दे।

टिप्पण—अवगम्मन्ती। भणन्ती। भणिज्जन्ती। अणुगम्ममाणा। "गमादीनां द्वित्वम्" (२४९)।

**कुमारपालं प्रति श्रुतदेव्याः प्रत्यक्षदर्शनम् १६-२१।**

भत्तीए कीरन्तीइ अहीरन्तीइ सइ हरिज्जन्ती।
वेडी-करिज्जमाणा तीरन्ते मोह-जलहिम्मि ॥८६॥

**शब्दार्थ**—(अहीरन्तीइ) किसी से भी अपहृत नहीं होने वाली; (सइ हरिज्जन्ती) किन्तु भक्ति से सदा आकर्षित होने वाली; (मोह) मोह-अज्ञान रूपी; (जलहिम्मि) समुद्र में; (तीरन्ते) पार करने वाली; (वेडी) नौका; (करिज्जमाना) के समान ऐसी सरस्वती देवी—

अजरिज्जन्त-मयं पि हु जीरन्त-मयं जयं पि पकुणन्ती ।

पतरिज्जन्त-भवोदहि सेऊवम-चरण-रेणु-कणा ॥८७॥

**शब्दार्थ**—(हु अजरिज्जन्त-मयं) निश्चित ही अजीर्ण मद वाले के, (मयं) मद को; (जीरन्त) जीर्ण करने वाली अर्थात् अभिमानी को भी नम्र बनाने वाली; (जयं पि पकुणन्ती) जय देने वाली; (भवोदहि) भवरूपी समुद्र में; (पतरिज्जन्त) आराधकों को पार करने में जिसके, (चरण-रेणु-कणा) चरणों के रज-कण; (सेऊवम) सेतु-पुल के समान है ऐसी सरस्वती देवी—

जेहि विढप्पइ कित्ती विढ विज्जइ जेहि उज्जलं नामं ।

अज्जिज्जइ जेहि सिरी सव्वेहि वि तेहि झायव्वा ॥८८॥

**शब्दार्थ**—(जेहि) जिनके द्वारा; (कित्ती) कीर्ति; (विढप्पइ) उपार्जन की जाती है; (जेहि) जिनके द्वारा; (उज्जलं नाणं विढविज्जइ) उज्ज्वल ज्ञान मिलता है; (जेहि) जिनके द्वारा, (सिरी) श्री—लक्ष्मी; (अज्जिज्जइ) अर्जित की जाती है; (तेहि सव्वेहि वि) उन सबके द्वारा; श्रुतदेवी; (झायव्वा) ध्यान करने योग्य है।

सव्वं णव्वइ जेहिं अणज्जमाना वुहेहि तेहिं पि ।

अमुणिज्जन्त सरूवा सिद्धेहि वि वाहरिज्जन्ती ॥८९॥

**शब्दार्थ**—(जेहिं) जिनके द्वारा; (सव्वं) सभी वस्तु, (णव्वइ) जानी गई है ऐसे; (तेहि पि वुहेहिं अणज्जमाना) उन ज्ञानियों के द्वारा भी जो नहीं जानी जा सकती; तथा (सिद्धेहि वि अमुणिज्जन्त सरूवा) सिद्ध-पुरुषों के द्वारा भी जिसका स्वरूप नहीं जाना जा सकता; इस रूप में; (वाहरिज्जन्ती) कही जाती हुई श्रुत-देवी—

वाहिप्पन्ताढप्पन्त-मंगले गिण्हणिज्ज-अभिहाणा ।

आढविअ-थुईहि सया सिप्पन्ती भत्ति-घिप्पन्ती ॥९०॥

**शब्दार्थ**—(वाहिप्पन्ता) बोलते समय; तथा (आढप्पन्त) आरम्भ किये जाते हुए सभी; (मंगलि) मंगल कार्यों में जिनका; (अभिहाणा) नाम; (गिण्हणिज्ज) लिया जाता है; तथा (आढविअ) प्रारम्भ की हुई; (थुइहिं) स्तुतियों से जो; (सया) सदा; (सिप्पन्ती) सिञ्चन की जाती है और (भत्ति घिप्पन्ती) भक्ति से ग्रहण की जाती हुई ऐसी श्रुत देवी—

सुर-वहु-छिप्पन्त-पया छिविज्जमाणा थुईहि सुअ-देवी ।
पसमाप्फुण्णस्स निवोक्कुसस्स अह आसि पच्चक्खा ॥९१॥

**शब्दार्थ**—(सुर-वहु) देवांगनाओं से; (छिप्पन्त-पया) प्रणाम करते समय जिसके चरण स्पर्श किये जाते हैं ऐसी तथा; (थुइहि) स्तुति द्वारा; (छिविज्जमाणा) स्पर्शित की जाती है, ऐसी, (सुअ-देवी) श्रुत-देवी; (पसम-आप्फुण्णस्स) उपशम से व्याप्त; (निव-उक्कुसस्स) राजाओं में श्रेष्ठ कुमारपाल को; (अह आसि पच्चक्खा) प्रत्यक्ष हुई।

**टिप्पण**—कीरन्तीइ। अहीरन्तीइ। हरिज्जन्ती। करिज्जमाणा। तीरन्ते। अजरिज्जन्त। जीरन्त। पतरिज्जन्त। "हृ-कृ-तृ-ज्रामीरः" (२५०)

विढप्पइ विढविज्जइ अज्जिज्जइ। "अर्जेविढप्पः" (२२५)
णव्वइ। अणज्जमाणा। अमुणिज्जन्त। "ज्ञो णव्व-णज्जौ" (२५२)
वाहरिज्जन्ती वाहिप्पन्त। "व्याहृगेर्वाहिप्पः" (२५३)
आढप्पन्त आढविअ। "आरभेराढप्पः" (२५४)
सिप्पन्ती। 'स्नेह-सिचोः सिप्पः" (२५५)
गेण्हणिज्ज घेप्पन्ती। 'ग्रहेर्घेप्पः" (२५६)
छिप्पन्त छिविज्जमाणा। "स्पृशेश्छिप्पः" (२५७)
अप्फुण्ण। उक्कुसस्स। "क्तेनाप्फुण्णादयः (२५८)

अणथक्कन्त-गिराए अमयासाराणुहारिणीइ तदो ।
इअ उत्तं देवीए वच्छल्लेणं महन्देणं ॥९२॥

**शब्दार्थ**—(तदो) उसके बाद; (महन्देणं) महान; (वच्छल्लेणं) वात्सल्य से; (देवीए) देवी के द्वारा, (अमयासाराणुहारिणीइ) अमृत की जोरदार वर्षा का अनुसरण करने वाली; (अणथक्कन्त) अस्खलित; (गिराए) वाणी से; (इअ) इस प्रकार राजा को; (उत्तं) कहा गया।

**टिप्पणी**—अणथक्कन्त । "धातवोर्थान्तरेपि" (२५९) केचित् कैश्चिद् मित्यम् । अणुहारिणीइ ॥

**॥ इति प्राकृत भाषा समाप्त ॥**

तदो । "तो दो अनादौ शौरसेन्याम् अयुक्तस्य (२६०)

अयुक्तस्येति किम् । उत्तं

**श्रुतदेवीवाक्यम् ९३-१००**

**शौरसेनी भाषा निबद्ध गाथाष्टक—**

तइ इन्दो निच्चिन्दो विहरदु अन्देउरम्मि सो दाव ।

इन्दस्स ताव मित्तं हवेसि महि-सामिआ तुमयं ॥९३॥

**शब्दार्थ**—(सो) वह विश्व प्रसिद्ध, (इन्दो) इन्द्र; (निच्चिन्दो) निश्चिन्त होकर—अर्थात् उसके शत्रु दानव तेरे द्वारा मारे जाने के कारण वह निश्चित हो, (अन्देउरम्मि) अन्तःपुर में, (विहरदु) विचरण करे—रमण करे, (महिसामिआ) हे पृथ्वीपति ! (तुमयं) आप; (इन्दस्स ताव मित्तं हवेसि) तब तक इन्द्र के मित्र बनकर रहो ।

**टिप्पण**—महन्देण । निच्चिन्दो । अन्देउरम्मि । अध क्वचित्" (२६१) दाव ताव । "वादेस्तावति ।" (२६२)

हंहो मणस्सिरायं ! जं अव भयवं ति विन्नवेदि भवं ।

रक्खिज्जसु तेण तुमं जिण-वइणा मेइणी-मघवं ॥९४॥

**शब्दार्थ**—(हंहो) सम्बोधन में—हे (मणस्सिरायं) मनस्वी राजन ! (भयवं अव इति) हे भगवन् ! हमारी रक्षा करे ऐसी भक्तिपूर्वक; (विन्नवेदि भवं) आप जिन्हे प्रार्थना करते है, (तेण) उन; (जिण-वइणा) जिनेश्वर द्वारा, (तुमं) आप, (मेइणीमघवं) मेदनी-मघव—पृथ्वीपति; (रक्खिज्जसु) रक्षित हो । अर्थात् जिनेश्वर आपकी रक्षा करें ।

**टिप्पण**—भवसीति सत्सामीप्ये (हे० ५-४) इत्यादिना वर्तमाना महि-सामिआ । मणस्सि । "आ आमन्त्र्ये सौ वेनो नः" (२६३) रायं । "मो वा" (२६४) ।

भयव । भवं । "भवद्भगवतोः" । (२६५) क्वचिद् अन्यत्रापि । मघवं ॥

अप्पावत्ते सयल कद-कज्जो तं खु थाम-सिरि-णाह ।

जिण-नाध-सुमरणे इधमज्जिद-इह लोअ-पर-लोअ ॥९५॥

**शब्दार्थ**—(कम-सिरि-नाह) हे पराक्रम रूप लक्ष्मी के स्वामी !; (इध) यहाँ; (जिण-नाध-सुमरणे) जिननाथ के स्मरण से, (अज्जिद-इह- पर-लोअ) अर्जित—सफल किया है इहलोक और परलोक जिसने ऐसे आप; (खु) निश्चित ही; (सयल अय्यावत्ते) सम्पूर्ण आर्यावर्त में; (कदकज्जो) कृतकृत्य हो गये हो।

**टिप्पण**—अय्यावत्त कज्जो। "न वा र्यो य्यः" (२६६)। सिरि-नाह-जिण-नाध। "थोधः" (२६७) अपदादावित्येव थाम ॥

तायध समग्ग-पुहविं तायह सग्गं पि भोदु तुह भद्दं ।
होदु जयस्सोत्तंसो तुह कित्तीए अपुरवाए ॥९६॥

**शब्दार्थ**—हे नरेन्द्र ! (समग्ग-पुहविं) समग्र पृथ्वी को; (तायध) पालो; (सग्गं पि तायह) स्वर्ग को भी पालो; (तुह) तुम्हारा; (भद्दं) कल्याण; (भोदु) हो; (तुह) तुम अपनी; (अपुरवाए) अपूर्व; (कित्तीए) कीर्ति से; (जयस्स उत्तंसो) जगत के मुकुट शिरोमणि, (होदु) बनो।

**टिप्पण**—इध इह। तायध तायह। "इह-ह चोर्हस्य" [२६८]॥
भोदु होदु। 'भुवो भः" [२६९]॥

सत्तीइ अपुव्वाए होदूण हरिव्व हविय सेसो व्व ।
होत्ता भरहो व्व तुमं एग-च्छत्तं कुणसु रज्जं ॥९७॥

**शब्दार्थ**—(अपुव्वाए सत्तीए) अपनी अपूर्व शक्ति से-पराक्रम से; (होदूण हरि व्व) हरि-कृष्ण-इन्द्र जैसा होकर; और (सेसो व्व हविय) शेष-नाग की तरह होकर, (भरहो व्व) भरत चक्रवर्ती की तरह; (होत्ता) होकर; (तुम) तुम; (एग-च्छत्त) एक छत्र; (रज्ज कुणसु) राज्य करो।

**टिप्पण**—अपुव्वाए अपुरवाए। "पूर्वस्य पुरवः" [२७०]
होदूण। हविय। होत्ता। "क्त्व इय-दूणौ" (२७१)

करियावणि-उद्धारं गुरु-भावं गडुय कडुय बलि-बन्धं ।
गच्छिय लच्छिमुविन्दो भोदि भवं भोदु इन्द-समो ॥९८॥

**शब्दार्थ**—(अवणि-उद्धार करिय) अवनि-पृथ्वी का उद्धार करके; (गुरु भाव) गुरु-भाव को; (गडुय) प्राप्त करके; (बलि-बन्ध कडुय) बलि का बन्ध करके; (लच्छि गच्छिय) लक्ष्मी को प्राप्त करके; (भवं) आप; (उविन्दो भोदि) उपेन्द्र बनो; (इन्द-समो भोदु) इन्द्र जैसे हो।

**टिप्पण**—करिअ। गडुअ कडुअ। गच्छिअ। "कृ-गमो डडुअः" (२७२)
भोदि। "दिरिचेचोः" (२७३)

अम्हेहिँ तुह पसंसा किज्जदि अन्नेहि किज्जदे न कहं ।
कित्ती रमिस्सिदि तुहा सग्गादु रसातलादो वि ॥९९॥

**शब्दार्थ**—हे राजन् (अम्हेहि) हमारे द्वारा; (तुह) तुम्हारी; (पसंसा) प्रशंसा; (किज्जदि) की गई है; (कहं न अन्नेहि किज्जदे) अतः अन्य विबुधों के द्वारा क्यों नहीं की जाती ? अन्य विबुधों के द्वारा भी की जाती है । (तुहा) तेरी; (कित्ती) कीर्ति; (सग्गादु) स्वर्ग से लेकर; (रसातलादो वि) पाताल तक, (रमिस्सिदि) विचरण करेगी ।

**टिप्पण**—किज्जदि । किज्जदे । "अतो देश्च" (२७४) ॥ अत इति किम् । भोदि ॥

रमिस्सिदि । "भविष्यति स्सि" (२७५) ॥

सग्गादु । "रसातलादो ।" अतो ङ सेर्डादो-डादू" (२७६)

दाणिं तुह तुट्ठा ता देमि वरं इअ तुमम्मि जुत्तमिमं ।
जुत्तं णिमं खु मग्गसु इह किं णेदं ति मा चिन्त ॥१००॥

**शब्दार्थ**—हे नृप ! (दाणिं) इस समय; (तुह) तेरे पर मैं; (तुट्ठा) प्रसन्न हूं । (ता) इसलिए; (वरं देमि) तुझे वर देती हूँ । (इअ) यह; (तुमम्मि जुत्तमिमं) तुम्हारे लिए योग्य ही है, (खु) निश्चित ही; (मग्गसु) तू वर माँग ले; (जुत्त णइमं) वर की याचना करना योग्य नहीं; (इह किं ण इदं) ऐसा मेरे विषय में तू; (मा चिन्त) विचार मत कर ।

दाणिं । "इदानीमो दाणिं" (२७७) ॥ ता ।"तस्मात् ताः ।" (२७८)

**राज्ञः श्रुतदेवीं प्रति विज्ञपयितुमारम्भः**—

भणिओ निवो किमेदं तिहुयण-रज्जं पि तुमइ तट्ठाए ।
तुज्झ य्येव पसाया सुरीओ हज्जे त्ति भण्णन्ति ॥१०१॥

**शब्दार्थ**—हे भगवती ! (तुमइ तुट्ठाए) तुम्हारी इस प्रसन्नता से क्या ? अर्थात् वर प्रदान मात्र से ही क्या ? अर्थात् कुछ भी नहीं; क्योंकि मात्र पृथ्वी का राज्य तो क्या; (तिहुयण-रज्जं पि) त्रिभुवन का राज्य भी तुच्छ है ऐसा; (निवो भणिओ) राजा ने कहा ! (तुज्झ) तेरी;(पसाया) कृपा से; (य्येव) ही; (सुरीओ) देवियां भी; ('हज्जे' इति भण्णन्ति) दासी ऐसा कहलाती है अर्थात् दासी की तरह बरतती है ।

उपदेशकरणे प्रार्थना—

टिप्पण—जुत्तमिमं जुत्तं णिमं। किं णेदं किमेदं। "मोन्त्याण्णो वेदेतो:" [२७६]

तुज्झ य्येव। 'एवार्थे य्येव' (२८०)

हञ्जे त्ति। "हञ्जे चेट्याह्वाने" (२८१)

हीमाणहे देवि तुमं सि दिट्ठा हीमाणहे हं चकिदो भवादो।
णं अम्महे किं पि भणोवएसं ही ही भणन्ता वि समन्ति जेण ॥१०२॥

शब्दार्थ—(हीमाणहे) आश्चर्य है; (देवि) हे श्रुतदेवी! (तुमं सि दिट्ठा) तुम मुझ से देखी गई हो—तुम्हारे दर्शन हुए हैं; (हीमाणहे) निर्वेद के अर्थ में—(हं) मैं; (भवादो) भव से; (चकिदो) त्रस्त हो गया हूं। (णं) निश्चित अर्थ में; (अम्महे) हर्ष प्रकट करने के अर्थ में; अतः हे भगवति निश्चित रूप से सहर्ष; (किं पि उवएसं भण) कुछ भी उपदेश कहो; (जेण) जिससे; (ही ही भणन्ता) ही ही करते हुए विदूषक; (वि) भी; (समन्ति) शान्त हो जाय।

टिप्पण—ही माणहे हीमाणहे। "हीमाणहे विस्मय-निर्वेदे" [२८२]।

णं। "णं नन्वर्थे" (२८३)

अम्महे। "अम्महे हर्षे" (२८४)।

ही ही। "ही ही विदूषकस्य" (२८५)

"शेषं प्राकृतवत्" (२८६) शौरसेन्यां यत् कार्यम् उक्तं ततोन्यत् प्राकृतवदिति। अतः जेणेति "टा-आमोर्ण." (३·६) "टा-ण-शस्येत्" (३, १४) च प्रवर्तते॥

॥ इति शौरसेनी भाषा समाप्ता॥

॥ सप्तम सर्ग समाप्त ॥

## अष्टमः सर्गः

**सरस्वतीकृतोपदेशस्य प्रस्तावः—**

कधिदे शुभोवदेशे शलश्शदीए तदो अपस्खलिदे ।
भव-कस्ट-गिम्ह-पदहण-विघस्टणे शुस्टु-मेघेव ॥१॥

**शब्दार्थ**—(तदो-ततः) राजा द्वारा प्रार्थना करने के पश्चात्; (भव-कस्ट) भव के कष्ट रूप; (गिम्ह-पदहण=ग्रीष्म-प्रदहनं) ग्रीष्म ऋतु के संताप को, (विघस्टणे=विघट्टणे) दूर करने में; (शुस्टु=सुष्ठु) अच्छे; (मेघ-इव) बादल की तरह; (अपस्खलिदे=अप्रस्खलित) अस्खलित वाणी से; (शलश्शदीए) सरस्वती ने राजा को; (शुभोवदेशे) शुभ-उपदेश; (कधिदे) कहा ।

**टिप्पण**—कधिदे (कथितः) शुभोवदेशे । "अत एत् सौ पुंसि मागध्याम्" (२८७) ॥

शलश्शदीए । "र-सोर्ल-शौ" , (२८८)

अपस्खलिदे (अप्रस्खलित) कस्ट (कष्ट) । "स-षोः सयोगे सोऽग्रोष्मे" (२८९) अग्रीष्म इति किम् । गिम्ह विघस्टणे । शुस्टु । "ट्ट-ष्ठयोः स्टः" (२९०)

**उपदेशप्रकारः २-८२—**

अदि शुस्तिदं निविस्टे चदुस्त-वग्गं विवय्यिद-कशाए ।
शावय्य-योग-लहिदे शाहू शाहदि अणञ्ञ-मणे ॥२॥

**शब्दार्थ**—(अदि शुस्तिदं=अति सुस्थितम्) अत्यन्त सुस्थित-स्थिर चित्तवाले, (निविस्टे)=निविष्ट धर्मध्यान में लीन रहने वाले; (विवय्यिद-कशाए)=विवर्जित कषाय—कषाय से रहित; (शावय्य) सावद्य; (योग) योग से; (लहिदे) रहित; पापमय प्रवृत्ति नहीं करने वाले; (अणञ्ज-मणे) अनन्य-मण-मोक्ष के सिवा अन्य किसी में भी मन न लगाने वाले ऐसे; (शाहू) साधू; (चदुस्त-वग्ग) चतुर्थ पुरुषार्थ—मोक्ष की; (शाहदि) साधना करते हैं ।

**टिप्पण**—अदिशुस्तिद । चदुस्त । "स्थ-र्थयोः स्तः" (२९१)

विवय्यिद । शावय्य-योग । "ज-द्य-यां यः (२९२)

पुञ्ञे निशाद-पञ्ञो शुपञ्ञाले यदि-पवेण वञ्ञन्ते।
शयल-यय-वश्चलत्ते गश्चन्ते लहदि पलम-पदं ॥३॥

शब्दार्थ—(पुञ्ञे) पुण्यशाली; (निशाद-पञ्ञे) निशातप्रज्ञ—कुशाग्र बुद्धि वाले; (शुपञ्ञाले) सुप्राञ्जल—कुटिलता रहित; (यदि-पवेण वञ्ञन्ते) साधु मार्ग का अनुसरण करने वाले; (शयल-यय-वश्चलत्ते) सकल जगद्वत्स-लत्व—समस्त जगत के प्रति वात्सल्य भाव रखते हुए; (गश्चन्ते) अच्छे मार्ग पर चलते हुए—अथवा तीनों लोक के अनुकूल मार्ग पर चलते हुए साधु; (पलम-पदं) परम-पद-मोक्ष को; (लहदि) प्राप्त करते हैं।

टिप्पण—अणञ्ञ-मणे। पुञ्ञे। पञ्ञो। शुपञ्ञाले। "न्य-ण्य-ज्ञ-ञ्जां ञ्ञः" (२९३)

वञ्ञन्ते। "व्रजो जः" (२९४)

गश्चन्ते। "छस्य श्चोनादौ" (२९५) लाक्षणिकस्यापि। वश्चलत्ते॥

श-पल-विव≍का-लहिदे पेस्कन्ते शव्वम् ओल्ल-दिस्टीए।
मिद-पियम् आचस्कन्ते चिष्ठदि मग्गम्मि मो≍कस्स ॥४॥

शब्दार्थ—(श-पल-विव≍का-लहिदे) स्व-पर विवक्षा से रहित—अर्थात् शत्रु मित्र के प्रति समभाव रखने वाला (शव्वम्) समस्त जगत को; (ओल्ल) आर्द्र—करुणा; (दिस्टीए) दृष्टि से; (पेस्कन्ते) देखने वाला, (मिद) मित-मर्यादित; (पियम्) प्रिय; (आचस्कन्ते) बोलने वाला व्यक्ति, (मो≍कस्स) मोक्ष के; (मग्गम्मि) मार्ग में; (चिष्ठदि) रहता है।

टिप्पण—विव≍का। मो≍कस्स। "क्षस्य ≍कः" (२९६) पेस्कन्ते। आचस्कन्ते। "स्कः प्रेक्षाचक्ष्योः" (२९७) चिष्ठदि। "तिष्ठश्चिष्ठः" (२९८)

एदस्स वधं कलिमो भत्ति एदाह इदि मदी जाहे।
ताणं दोण्हंपि हमे हिदेत्ति वुद्धी पवट्टन्ता ॥५॥

शब्दार्थ—(एदस्स) हम इसका, (वध) वध, (कलिमो) करते हैं; (एदाह) हम इसकी (भत्ति) भक्ति करते हैं, (इदि) ऐसी जब दोनों व्यक्तियों के प्रति (जाहे) [illegible] (मदी) [illegible] ... [illegible]
प्रति (हमे) [illegible]
प्रयोग करता [illegible]
यह: ये दोनों वास्त[illegible]

**टिप्पण**—एदस्स एदाह । "अवर्णाद्वा ङसो डाहः" (२९९)

जाह् ताणं । 'आमो डाह् वा" (३००)

हगे । "अहं वयमोर्हगे ।" (३०१)

"शेषं शौरसेनीवत्" (३०२) मागध्यां यदुक्तं ततोन्यत् शौरसेनीवद् द्रष्टव्यम् । अतःहिदेत्ति ।" तो दोऽनादौ ॥ शौरसेन्यामयुक्तस्य" इति तस्य दः (४·२६०) पयोद्द्वा । "अधः क्वचिद्" (४·२६१) इति तस्य दः ॥

। इति मागधी भाषा समाप्ता ।

पञ्ञान राचिञ्ञा गुन-निधिना रञ्ञा अनञ्ञ-पुञ्ञेन ।
चिन्तेतव्वं मतनाति-वेरिनो किल विजेतव्वा ॥६॥

**शब्दार्थ**—(पञ्ञान) बुद्धिमानों का; (राचिञ्ञा) स्वामी, (गुन-निधिना) गुणों का भण्डार, (अनञ्ञ पुञ्ञेन) अनन्य पुण्यशाली कुमार को; (मतनाति) मद-काम-क्रोध-लोभ आदि, (वेरिनो) प्रसिद्ध षट् रिपुओं को; (किल) निश्चित रूप से; (विजेतव्वा) जीतना चाहिए ऐसा राजा को: (चिन्तेतव्वं) विचार करना चाहिये ।

**टिप्पण**—पञ्ञा । "ज्ञो ञ्ञः पैशाच्याम्" (३०३)

राचिञ्ञा (रञ्ञा) "राज्ञो वा चिञः" (३०४)

अनञ्ञ-पुञ्ञेन "न्य-ण्योर्ञ्ञः" ३०५)

गुण । वेरिनो । "णो नः" (३०६) मतनाति

विजेतव्वा । "त-दोस्तः" (३०७)

किल । "लोलः" (३०८)

[illegible]कसाय-हितपक-जित-करन-कुतुम्ब-वेसटो योगी ।
[illegible]कुटुम्ब-सिनेहो न वलति गन्तून मुक्ख-पतं ॥७॥

[illegible]—(सुद) शुद्ध; (अकसाय) कषाय से रहित [illegible] (करन-कुटुम्ब) [illegible] चेष्टा को [illegible] [illegible] कुटुम्ब [illegible] स्नेह से [illegible] [illegible] [illegible] नहीं [illegible] ।

टिप्पण—सुद्धाकसाय। श-षोः सः (३०९)
हितपक। हृदये यस्य पः (३१०)
कुतुम्ब। कुटुम्ब। "टो स्तु वा" (३११)
गतून। क्त्वस्तूनः (३१२)

यन्ति कसाया नत्थून यन्ति नद्धून सव्व-कम्माइं।
सम-सलिल-सिनातानं उज्झित कत-कपट भरियान ॥८॥

शब्दार्थ—(सम-सलिल) शम-रूप जल में; (सिनातानं) स्नान किये हुए; (कत-कपट) की हुई कपट वाली अर्थात् कपट से युक्त; (भरियान) भार्या-स्त्री को; (उज्झित) छोड़ने वाले उन पुरुष से; (कसाया) कषाय; (नत्थून) नष्ट होकर उसे छोड़कर; (यन्ति) चले जाते हैं इस तरह; (सव्व कम्माइं) समस्त कर्म भी; (नद्धून) नष्ट होकर; (यन्ति) चले जाते हैं।

टिप्पण—नत्थून। नद्धून। "ट्टूनस्तूनौ ट्ट्वः" (३१३) वेसटो। सिनेहो। सिनातान। भरियान। "र्य-स्न-ष्टां रिय-सिन-सटाः क्वचित्" (३१४)

यति अरिह-परम-मन्तो पढिय्यते, कीरते न जीव-वधो।
यातिस-तातिस-जाती ततो जनो निव्वुतिं याति ॥९॥

शब्दार्थ—(यति) यदि कोई; (अरिह-परम-मन्तो) अर्हत् आदि पञ्च परमेष्ठि के मन्त्र को बार-बार; (पढिय्यते) पढ़ता है; (न जीव-वधो) और जीव वध न; (कीरते) करता है; तो मन्त्र का स्मरण करने वाला जीव वध न करने वाला; (यातिस-तातिस-जाती) जिस किसी जाति का क्यों न हो; (ततो जनो निव्वुतिं याति) वह (व्यक्ति) निवृत्ति—मोक्ष को प्राप्त करता है।

टिप्पण—पढिय्यते। "क्यस्येय्यः" (३१५)

कीरते। 'कृगो डीरः' (३१६)
यातिस। तातिस। [illegible]
याति। "इचेचः" [illegible]

[illegible]

पर्वत पर निवास करता हो; (दढ) तीव्र; (तपं) तप को; (तपन्तो वि) तपता हुआ भी; (ताव) तब तक; (न लभेय्य मु—कं) उसे मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती; (याव) जब तक वह; (तूरातो) दूर से ही; (विसयान) विषयों को; (न) नहीं छोड़ देता।

अच्छति। अच्छते। "आत् तेश्च" (३१९) आत् इति किम्। याति॥
लभेय्य। "भविष्यत्येय्य एव" (३२०)

तूरातु नेन घेप्पति मुत्ति-सिरी नाइ योग-किरियाए।
चत्तारि-मङ्गलं [illegible]-मत्तम् उक्खोसमनेन ॥११॥

शब्दार्थ—([illegible]) अरिहन्तादि चार मंगलों का; (उक्खोसमानेन) उच्चारण करता हुआ; (योग-किरियाए) सद् अनुष्ठान रूप योग क्रिया से; (नाइ) [illegible] ऐसी; (मुत्ति-सिरी) मुक्ति श्री को; (नेन) उसके द्वारा; (तूरातु) दूर से ही; (घेप्पति) ग्रहण किया जाता है। अर्थात् ऐसे व्यक्ति के लिए मोक्ष अति दूर नहीं है।

टिप्पण– तूरातो। तूरातु। "अतो ङ सेर्डातो—डातू (३२१)
तेन। नाए। "तदिदमोष्टा नेन स्त्रियां तु नाए" (३२२)
"शेषं शौरसेनीवत्" (३२३) पैशाच्यां यद् उक्तं ततोन्यत् शौरसेनीवत् [illegible]यम्।
तदुदाहरणानि [illegible] सम्यूह्यानि॥
योग-किरियाए। [illegible] क-ग-च-आदि-षट्-शाम्यन्त-सूत्रोक्तम् (३२४) [illegible] क ग [illegible] शम्यन्त इत्याद्यन्तसूत्रैर्यदुक्तं तत् न [illegible]।

॥ इति पैशाची भाषा समाप्ता॥

[illegible]

अम्बारउ । सव्वु । तणु । सव्वु । भव-सुहु । "स्यमोरस्योत्" (३३१)

गङ्-गहे जॅम्वुणहे भीतरु मेल्लइ,

सरसइ-मज्झि हंसु जइ झिल्लइ।

तय सो केत्थुवि रमइ पहुत्तउ

जित्थु ठाइ सो मुक्खु निरुत्तउ ॥१५॥

**शब्दार्थ**—जो (गङ्-गहे) गंगा—ईडा और; (जॅम्वुणहे) जमुना= पिंगला नाडी; (भीतरु) भीतर में आत्मा को; (मेल्लइ) रखता है, उसके बाद (सरसइ) सरस्वती—सुषुम्णा के; (मज्झि) मध्य में; (जइ) जब; (हंसु) आत्मा जाता है तब वह उपशमरस में; (झिल्लइ) स्नान करता है; (तय) तब; (सो) वह ऐसे; (केत्थुवि) किसी भी स्थान में; (पहुत्तउ) पहुंचता है जहाँ वह अपने स्वरूप में, (रमइ) रमण करता है। (सो) वह आत्मा (जित्थु) जहाँ, (ठाइ) रहता है। वहाँ (निरुत्तउ) निरुपम मोक्ष सुख का अनुभव करता है। अर्थात् जब आत्मा सुषुम्णा नाडी में पहुंचता है तब समभाव को प्राप्त कर मोक्षसुख का—अनुपम सुख का अनुभव करता है।

हंसु । सो । सो । मोक्खु । "सौ पुंस्योद् वा (३३२) ॥ पुंसीति किम् । भीतरु ॥

केणवि जोग-पओगेण कहवि हु घरि रुद्धे सव्वेहिवि वारिहिं ।
जो अन्तहेवि निहेलण-नाहहु घर-सव्वस्सुवि निज्जइ चोरेहिं ॥१६॥

**शब्दार्थ**—(केणवि) किसी भी प्रकार के; (जोग-पओगेण) योगप्रयोग से—उपाय से (कह वि) तथा किसी भी प्रकार से; (सव्वेहिं) समस्त; (वारिहिं) द्वारों से (घरिरुद्धे) घर के बन्द किये जाने पर भी; (निहेलण) घर के (नाहहु) स्वामी के सतत; (जोअन्तहेवि) जागृत रहने पर भी; (चोरेहिं) चोरों के द्वारा (घर-सव्वस्सुवि) घर का सर्वस्व—घर का सारा सामान; (निज्जइ) अपहरण कर लिया जाता है।

अर्थात् किसी ध्यान आदि उपाय से शरीररूपी घर के इन्द्रियरूपी दरवाजे के बन्द किये जाने पर तथा शरीररूपी घर के स्वामी आत्मा के सतत सावधान रहने पर भी यदि राग-द्वेषरूपी चोर घर में घुस जाते हैं तो वे आत्मा के ज्ञानादि गुणों का अपहरण कर लेते हैं।

केण । पओगेण । "एट्टि" (३३३) । घरि । रुद्धे । "ङि नेच्च" (३३४)

सव्वेहिं। वारिहिं। "भिस्येद् वा" (३३५)
जोअन्तहे। निहेलण—नाहहु।" ङ से हें-हू" (३३६)

करणा भासहुं मणु उत्तारओ,
करणाभासेहिँ मुक्खु न कसु हि वि।
आसणु सयणुवि सव्वहो करणेंहिं,
करणहुँ मुक्खु तो निरुसव्वस्सु वि ॥१७॥

शब्दार्थ—(करणाभासहु) करणाभ्यास से (विपरीत शयन-आसन से); (मणु) मन को; (उत्तारउ) हटाओ; क्योंकि (करणाभासेहिं) करणाभ्यास से—विपरीत आसन से, (कसुहिवि) किसी को भी; (मुक्खु) मोक्ष की प्राप्ति (न) नहीं हुई है। योगियों का, (सव्वहो) सर्वथा; (करणेंहिं) शास्त्र की विधि के अनुसार ही (आसणु सयणु वि) आसन और शयन आदि होता है। (तो) अतः योगीजन, (करणहुं) करण से ही शास्त्रविहित आसन-शयनादि से ही; (निरुसव्वस्सुवि) निश्चित रूप से; (मुक्खु) मोक्ष प्राप्त करते हैं।

करणाभासहुं। "भ्यसो हुं" (३३७)
कसु। सव्वहो। सव्वस्सु। "ङसः सु-हो-स्सव" (३३८)

विसयहं पर-वस मच्छहु मूढा, बन्धुहं सहिहुं वि घङ्घलि वूढा।
दुहुं ससि-सूरिहिं मणु संचारहु बन्धुहं सहिहँ व वढ विणु सारहु ॥१८॥

शब्दार्थ—(मूढा) मूर्खो! (विसयहं) विषयों में; (परवस) परवश; (मच्छहु) मत बनो; (बन्धुहँ सहिहु वि) बन्धु-बान्धवों-मित्रों के; (घङ्घलि) मोह में मत; (वूढा) पडो; (ससि-सूरिहिं) चन्द्र और सूर्य—अर्थात् इडा और पिंगला इन; (दुहु) दो नाडियों में; (मणु) मन का (संचारहु) संचार करो तथा (बन्धुहं सहिहं व) बन्धु और बान्धवों के; (विणु) बिना; (वढ) हे मूढ; (सारहु) अकेले ही रहो।

विसयहं। "आमो हं" (३३९)
बन्धुह। सहिहुं। बन्धुहुं। सहिहुं। "हुं चेदुभ्याम्" (३४०)
प्रायोऽधिकारात् क्वचित् सुपोऽपि हुं। दुहुं॥

गिरिहें वि आणिउ पाणिउ पिज्जइ,
तरुहेंवि निवडिउ फलु भक्खिज्जइ।
गिरिहुँ व तरुहुँ व पडिअउ अच्छइ,
विसयहिं तहवि विराउ न गच्छइ ॥१९॥

[illegible]—(गिरिवरेहिं) पर्वत पर से; (आणिउ) लाकर [illegible] (पिज्जइ) पीजिए चाहे; (तरुहेंवि) वृक्षों से; (णिवडिउ) गिरे हुए; (फलु) [illegible] (भक्खिज्जइ) खाइए; चाहे (गिरिहुं व) पर्वत और; (तरुहुं व) वृक्ष के नीचे (पडिअउ अच्छइ) पड़े रहिये (तहवि) तो भी; ([illegible]) विषयों से; (विराउ) विराग; (न गच्छइ) नहीं होता।

जइ हिम-गिरिहि चडेविणु निवडइ
अह पयाय-तरुहिवि इक्कमणु।
निक्कइअवें विणु समयाचारेण
विणु मण-सुद्धिएँ लहइ न सिवु जणु ॥२०॥

शब्दार्थ—(जइ) यदि; (हिम-गिरिहि) हिमालय पर्वत पर; (चडेविणु) चढ़कर; (निवडइ) गिरता है; (अह) अथवा; (इक्कमणु) एकाग्र मन हो; (पयाय-तरुहिवि) प्रयाग-वृक्ष से गिरता है। किन्तु; (निक्कइअवें) निष्कपट के बिना; (समयाचारेण विणु) सिद्धान्त के अनुसार आचार के पालन के बिना; (मणसुद्धिए विणु) मन की शुद्धि के बिना, (जणु) व्यक्ति; (न सिवु लहइ) शिव पद को प्राप्त नहीं कर सकता।

गिरिहे। तरुहे। गिरिहुं। तरुहुं। हिम-गिरिहि। पयाय-तरुहि। ङसि-भ्यस् ङीनां हे-हुं-हयः (३४१)

निक्कइअवें। समयाचारेण। "आट्टो णानुस्वारौ (३४२)

विणसइ माणुसु विसयासत्ति डज्झइ तरु-गण जिंम्वें दावग्गिण।
विसु जिंम्वें विसय परिमिल्लिउ दूरें, अच्छहु चित्तें जोअ-विलग्गेण ॥२१॥

शब्दार्थ—(जिंम्वें) जिस तरह; (दावग्गिणा) दावाग्नि से; (तरुगण) वृक्षों का समूह; (डज्झइ) जल जाता है वैसे ही; (विसयासत्ति) विषयासक्ति से; (माणुसु) मनुष्य; (विणसइ) नष्ट होता है; (विसु) विष की; (जिम्वें) तरह; (विसय परिमिल्लिउ दूरें) विषय को दूर से छोड़कर; (जोअ विलग्गेण) तुम योग—समाधि में लीन; (चित्तें) चित्त से; (अच्छउ) रहो।

टिप्पण—मण-सुद्धिएँ। विसयासत्ति। दावग्गिण। "एँ चेदुतः" (३४३) एवं उतोपि द्रष्टव्यः॥

माणुसु। [illegible]। विसु। विसय। "स्यम्-जस्-शसां लुक्" (३४४)

**शब्दार्थ**—(गयण) ब्रह्मरन्ध्र=मस्तक के मध्य में माने जाने वाला एक छिद्र जिस; (निक्कहें) नीक=छिद्र से; (सुधारस) अमृत की धारा; (ढलन्त) बहती है उस बहती हुई; (अमिय) अमृत धारा का; (जोगिअ पन्तिहु) योगी लोग ईडा नाम की वाम नासिका से पान करते हैं; (ससहर) चन्द्रनाड़ी को; (अब्भि) ब्रह्मरन्ध्र में; (धरन्ति हु) धारण करते हुए योगियों को(जम्म-मरणत्ति हु) जन्म-मरण आदि, (कच्छवि) किसी से भी, (भउ) भय;

(नोप्पज्जइ) उत्पन्न नहीं होता।

**टिप्पण**—निक्कहे। "ङस्-ङस्यो हें" (३५०)

पिअन्ति हु। जोगिअ पन्ति हु। धरन्ति हु। जर-मरण त्ति हु। "भ्यसामोर्हुं:" (३५१)

**वज्जइ वीणा अदिट्ठिहि तंतिहि, उट्ठइ रणिउ हणंतउँ ट्ठाणइं।**
**जहि वीसांवु लहइ तं झायहु मुत्तिहे कारणि चप्पल अन्नइं ॥२५॥**

**शब्दार्थ**—(अदिट्ठिहि) अदृष्ट—इन्द्रियातीत; (तन्तीहि) तन्त्री—नाड़ीरूप धागे से शरीररूप; (वीणा) वीणा; (वज्जइ) बजती है उससे छाती, कण्ठ प्रमुख; (ट्ठाणइं) स्थानों को, (हणंतउँ) ताडन करता हुआ नाद उठता है, अनाहत ध्वनि उत्पन्न होती है; (जहि वीसांवु लहइ) वही ध्वनि जिस स्थान में विश्राम लेती है, (तं झायहु) उसका ध्यान करो अर्थात् ब्रह्म-रन्ध्र में मन लगा दो; (मुत्तिहे कारणि) मुक्ति के कारण; (अन्नइ) अन्य तप आदि हैं वे तो; (चप्फल) चाटुवाक्य मात्र हैं; केवल उपचार वाक्य हैं। अर्थात् ध्यान के बिना केवल तप आदि बाह्य अनुष्ठान मात्र से मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती।

**टिप्पण**—अदिट्ठिहि। तंतिहि। "ङ हिं" (३५२)

ठाणइं। अन्नइं। "क्लीबे जश्शसोरिं" (३५३)

हणंतउं। "कान्तस्यात उं स्यमोः (३५४)

**जो जहां होतउ सो तहां होतउ सत्तुवि मित्तुवि किहें वि हु आवउ।**
**जहिंवि हु तहिंवि हु मग्गे लीणा एक्कए दिट्ठिहिं दोन्निवि जोअहु ॥२६॥**

**शब्दार्थ**—(जो) जो; (जहां) जहां से; (होतउ) है; (सो) वह; (तहां) वहां से; (होतउ) है; (सत्तु वि) शत्रु और (मित्तु वि) मित्र; (किहें वि) चाहे जो; (आवउ) आवे; (जहि वि हु तहि वि हु) वे किस किसी को; (मग्गे) मार्ग

में [illegible] में; (लीना) लीन हों; (दोण्णि वि) मैं दोनों को; (एक्कए) एक; (दिट्ठिहि) दृष्टि से; (जोअहु) देखता हूं।

अर्थात् कोई भी व्यक्ति जिस किसी कारण से शत्रु या मित्र बना हो या किसी भी धर्म का आचरण करता हो उन सब को समभाव से देखो।

टिप्पण—जहां। तहां। सर्वादेर्ङसेर्हां" (३५५)
किहे। "किमो डिहे वा" (३५६)
जहिं। तहिं। "ङेर्हिं" (३५७)

कासुवि जासुवि तासुवि पुरिसहों
कहेंविहु जहेंविहु तहेंविहु नारिहे।
जं हितु वयणु चविज्जइ थोवउं
ध्रुं परिणंवइ समत्त पयारेंहिं ॥२७॥

शब्दार्थ—(कासुवि) किसको; (जासुवि) जिसको; (तासुवि) उसको; (पुरिसहों) पुरुष को—अर्थात् जिस किसी पुरुष को; (यह आत्मीय है, यह आत्मीय नहीं है ऐसा विचार किये बिना सबको) (कहेंविहु जहेंविहु तहेंविहु नारिहे) तथा किसी भी स्त्री को; (थोवउं हित वयणु) यदि थोड़ा भी हितकारी वचन है तो; (जं) उसे; (चविज्जइ) कहना चाहिए; क्योंकि (ध्रुं) वह (समत्त) समस्त; (पयारेंहिं) प्रकार से—सब तरह से; (परिणंम्वइ) रुचिकर होता है, परिणत होता है।

टिप्पण—कासु। जासु। तासु। "यत्तत्किंभ्यो ङसो डासुर्न वा" (३५८)
कहे। तहे। जहे। स्त्रियां डहे" (३५९)

तं बोल्लिअइ जु सच्चु पर इमु धम्मक्खरु जाणि।
एँहो परमत्था, एहु सिवु एँहु सुह-रयणहं खाणि ॥२८॥

शब्दार्थ—(जु सच्चु पर) जो परम सत्य है; (तं बोल्लिअइ) वही बोले (इमु धम्मक्खरु जाणि) यही मानो धर्माक्षर है, धर्म का रहस्य है (एँहो परमत्था) यही परमार्थ है; (एहु सिवु) यही शिव है (एँहु सुह-रयणहं खाणि) यही सुख-रत्नों की खान है।

टिप्पण—जं। ध्रुं। तं। त्रं। "यत्तदः स्यमोर्ध्रुं त्रं" (३६०)
इमु। "इदम इमुः क्लीबे" (३६१)
एहो। एहु। एह। "एतदः स्त्री-पुं-क्लीबे एह एहो एहु (३६२)

पद तक; (नेउं) ले जाने के लिए; (पइं [illegible]) [illegible];
(पसमु करि) तू सब पर प्रशमभाव-समभाव रख।

पइं करिअव्वी जीव-दय, तइं [illegible] सच्चु।
पइं सुहु तइं कल्लाण तउ, तउ होहिसि कयकिच्चु ॥२३॥

शब्दार्थ—(पइँ) तुझे, (जीव-दय) जीवदया, (करिअव्वी) करनी चाहिए, (तइँ) तुझे, (सच्चु) सत्य, (बोल्लेवउ) बोलना चाहिए, (तउ) जीव दया आदि से, (पइँ सुहु) तुझे सुख की प्राप्ति होगी, (तइँ कल्लाण) तेरा कल्याण होगा। (तउ) उसके बाद तू, (कयकिच्चु) कृतकृत्य, (होहिसि) हो जायेगा।

सेवेअव्वा साहु पर तुम्हेंहिँ इह जम्मम्मि।
तुज्झु समत्तणु तुध्र खम तउ संजमु चिन्तेमि ॥२४॥

शब्दार्थ—(तुम्हेंहिँ) तुम्हारे द्वारा, (इह जम्मम्मि) इस जन्म में, (पर) केवल एक मात्र, (साहु) साधु की ही, (सेवेअव्वा) सेवा होनी चाहिए। सुसाधु की सेवा में ही, (तुज्झु) तेरा; (समत्तणु) सम्यक्त्व है; (तुध्र) तेरी; (खम) क्षमा है; (तउ सजमु) और तेरा संयम है ऐसा मैं; (चिन्तेमि) सोचती हूँ।

कलि-मलु तुज्झु पणसिही, तउ वच्चेही पावु।
मुक्खुवि तुध्र न दूरि ठिउ, करि धम्मक्खरि ठावु ॥२५॥

शब्दार्थ—(करि धम्मक्खरि ठावु) धर्माक्षरों को—धर्म के प्रतिपादक सिद्धान्त को, (ठावु) ग्रहण कर जिससे; (तुज्झु) तेरे; (कलि-मलु) [illegible]—पाप नाश होंगे; (तउ वच्चेही पावु) तथा पूर्व जन्म के पाप दूर होंगे। और (मुक्खुवि) मोक्ष भी; (तुध्र) तुझसे; (न दूरि ठिउ) दूर नहीं रहेगा; अर्थात् तेरे समीप में ही होगा।

तुम्हहं मुक्खु न दूरि ठिउ [illegible] तुम्हाहु।
[illegible] ॥२६॥

[illegible]

टिप्पण—तुहुं । "युष्मदः सौ तुहुं ।" (३६८)

तुम्हे । तुम्हइं । तुम्हे तुम्हइं । जश्शसोस्तुम्हे तुम्हइं" (३६९)

पइं । तइं । पइ । तइं । पइं । तइ । "टा ङ्यमा पइं तइं (३७०)

तुम्हेहिं । "भिसा तुम्हेहिं" (३७१) ।

तुज्झु । तुघ्र । तउ । तुज्झु । तउ । तुघ्र ।" ङसि-ङस्भ्यां तउ तुज्झु-तुघ्राः (३७२)

तुम्हहं । "भ्यसाम्भ्यां तुम्हहं" (३७३)

तुम्हासु । "तुम्हासु सुपा" (३७४)

हउं । "सावस्मदो हउं" (३७५) । [षड्भिः कुलकम्]

**षड्भिः कुलकम्—**

अम्हे निन्दउ कोवि जणु अम्हइं वण्णउ कोवि ।

अम्हे निन्दहुं कवि नवि, नम्हइं वण्णहुं कं वि ॥३७॥

**शब्दार्थ**—हे कुमारपाल नृप ! तुम अपनी आत्मा को ऐसी सीख दो—कि (कोवि जणु) कोई व्यक्ति, (अम्हे) हमारी; (निन्दउ) निन्दा करे; या (कोवि) कोई; (अम्हइं) हमारी; (वण्णउ) प्रशंसा करे; फिर भी, (अम्हे निन्दहुं कंवि नवि) न हम किसी की निंदा करें, और (नम्हइं वण्णहुं कं वि) न हम किसी की प्रशंसा करें। अर्थात् निन्दा और प्रशंसा करने वाले के प्रति हमें समभाव रखना चाहिए।

मइं मिल्लेवा भव-गहणु मइं थिर एही बुद्धि ।

मत्था हत्थउ सु-गुरु मइं पावउं अप्पहों सुद्धि ॥३८॥

**शब्दार्थ**—(मइं) मेरे द्वारा; (भव-गहणु) भव ग्रहण; (मिल्लेवा) त्याग किया जाना चाहिए अर्थात् मुझे पुनर्भव ग्रहण नहीं करना चाहिए; (एही) ऐसी; (मइं) मेरी; (थिर बुद्धि) स्थिर बुद्धि हो; (मइं) मेरे; (मत्था) मस्तक पर; (सु-गुरु) सुगुरु; (हत्थउ) हाथ फेरे जिससे (अप्पहों सुद्धि पावउं) मेरी आत्मा शुद्ध बने।

अम्हेहिं केणवि विहि-वसिण एहु मणु अत्तणु पत्तु ।

मज्झु अदूरे होउ सिवु महु वच्चउ मिच्छत्तु ॥३९॥

**शब्दार्थ**—(अम्हेहिं) हमारे द्वारा (केणवि) किसी (विहि-वसिण) विधिवश-शुभकर्म के योग से (एहु) यह (मणु अत्तणु) मनुष्यत्व (पत्तु) प्राप्त किया है अतः (मज्झु) मुझ से (सिवु) मोक्ष (अदूरे होउ) दूर न हो और (महु) मेरा (मिच्छत्तु) मिथ्यात्व दूर हो।

अम्हहँ मोह-परोहु गउ संजमु हुउ अम्हासु।
विसय न लोलिम महु करहिँ म करहि इअ वीसासु ॥४०॥

**शब्दार्थ**—(अम्हहँ) हमारे से; (मोह-परोहु मोह का अंकुर; (गउ) चला गया है—नष्ट हो गया है; (अम्हासु) हमारे में, (संजमु) संयम आया है; (महु) मेरे; (विसय) विषय; (लोलिम) चंचलता को; (करहिं) करते हैं अतः (म करहि इअ वीसासु) इन पर विश्वास मत करो।

रे मण करसि कि आलडी विसया अच्छहु दूरि।
करणइँ अच्छह रुन्धिअइँ कड्ढउँ सिव-फलु भूरि ॥४१॥

**शब्दार्थ**—(रे मण) हे मन ! (कि आलडी करसि) अनर्थ क्यों कर रहा है ? (विसया अच्छ हु दूरि) हे विषयो ! दूर रहो, (करणइँ अच्छह रुंधि अइँ) हे इन्द्रियो ! नियंत्रण में रहो; ताकि (कड्ढउँ सिवफलु भूरि) मैं प्रचुर मात्रा में शिव-फल को प्राप्त करूँ।

इण परि अप्पउ सिक्खविसु तुह अक्खहुँ परमत्थु।
सुमरि जिणागम, धम्मु करि संजमु वच्चु पसत्थु ॥४२॥

**शब्दार्थ**—(सुमरि जिनागम) जिनागमों को याद कर; (धम्मु करी) धर्म का आचरण कर (सजमु वच्चु पसत्थु) प्रशस्त संयम-पथ पर चल; (तुह अक्खहु परमत्थु) मैं तुझे परमार्थ कहती हूँ कि; (इण परि अप्पउ सिक्खविसु) इस तरह मैं आत्मा को सिखाऊँगी।

अम्हे। अम्हइं। अम्हे। अम्हइं।" जश्शसोरम्हे अम्हइं" (३७६)
मइं। मइं। मइं 'टा-ङ्यमा मइं" (३७७)
अम्हेहिं। अम्हेहिं भिसा" (३७८)
मज्झु। महु। "महु मज्झु ङसिङस्भ्याम्" (३७९)
अम्हहं। अम्हहं। "अम्हहं भ्यसाम्भ्याम्" (३८०)
अम्हासु। "सुपा अम्हासु" (३८१)॥
करहिं। "त्यादेराद्यत्रयस्य बहुत्वे हिं न वा" (३८२)
करहि। "मध्यत्रयस्याद्यस्य हि" (३८३) पक्षे करसि।
अच्छहु। "बहुत्वे हुः" (३८४) पक्षे अच्छह।
कड्ढउं। "अन्त्यत्रयस्याद्यस्य उं" (३८५)
अक्खहुं। "बहुत्वे हुं" (३८६)
सुमरि। करे। वच्चु। "हि-स्वयोरिदुदेत्" (३८७)

संजम-लीणहों मोक्ख-सुहु निच्छइं होसइ तासु।
पिय वलि कीसु [illegible] [illegible] पहुच्चहि जासु ॥४३॥

(हे नृप ! (कुमारपाल को सम्बोधन) यह संबोधन प्रत्येक श्लोक के प्रारम्भ में सर्ग के अन्त तक समझना।)

शब्दार्थ—(पिय भणि कीसु) हे प्रिय ! मैं तेरे पर निछावर हूं ऐसा (भणन्तिअउ) कहती हुई स्त्रियां (णाइँ पहुच्चहिं जासु) भी जिसकी समाधि भंग करने में असमर्थ है ऐसे; (संजम लीणहो) संयम में स्थिर रहने वाले; (तासु) उस व्यक्ति को; (मोक्खं सुहु होसइ) मोक्ष का सुख (निच्छइँ) अवश्य मिलेगा।

सच्चइँ वयणइँ जो ब्रुवइ, उवसमु वुब्बाइ पहाणु।

प्रस्सदि सत्तुवि मित्तु जिम्वँ सो गृन्हइ निव्वाणु ॥४४॥

शब्दार्थ—(जो सच्चइँ वयणइँ ब्रुवइ) जो सत्यवचन बोलता है; (उवसमु वुब्बाइ पहाणु) जो उत्तम उपशम को प्राप्त करता है; (प्रस्सदि सत्तुवि मित्तु जिम्वँ) शत्रु को भी जो मित्र के समान देखता है; (सो गृन्हइ निव्वाणु) वह निर्वाण को प्राप्त करता है।

टिप्पण—होसइ। "वत्स्र्यति स्यस्य स." (३८८)

कीसु। "क्रियेः कीसु" (३८९)

पहुच्चहिं। भुव. प्रयाप्तौ हुच्चः (३९०)

ब्रुवइ। "ब्रुगो ब्रुवो वा" (३९१)। "व्रजेवुब्जः" (३९२)॥

प्रस्सादि। 'दृशेः प्रस्सः (३९३)॥ गृन्हइ। "ग्रहेगृन्हः." (३९४)

तवँ-छुरें छोल्लहु अप्पणा कम्म खुडुक्कन्ताइं।

साहुहुं पासहु सुद्धि-गर सुघे गृन्हिअ वयणाइं ॥४५॥

शब्दार्थ—(सुद्धि-गर) आत्मा को शुद्ध करने वाले—पापमल को नष्ट करने वाले; (वयणाइं) वचनों को—उपदेश को (साहुहुं पासहु) साधुओं से (सुघे) सुखपूर्वक; (गृन्हिअ) ग्रहण कर (अप्पणा कम्म खुडुक्कन्ताइं) अपने में शल्य की तरह चुभने वाले कर्मों को; (तवँ-छुरें) तपरूपी छुरी से; (छोल्लहु) छीलो। उसे दूर करो।

[illegible] । "[illegible]" (३९५) आदि [illegible] देशीषु ये क्रियावचनाः [illegible] यथा खुडुक्कन्ताइं। इत्यादि।

[illegible]

[illegible] ॥४६॥

[illegible]

मत; (चल्लहु) चलो;—संसार में निरर्थक मत भ्रमण करो; तथा (गुरु-वण) गुरु-वचनों द्वारा; (कथिय) कथित; (सुअत्थ) अच्छे उपदेश को — अथवा जीवादि पदार्थ को; (पुलय-पफुल्लिय) रोमाञ्च से प्रफुल्लित होकर; (मणि धरहु) मन में धारण करो।

गुरु वय अँम्वँलइ निचु छिवहु भत्ति सिर-कमलेण।

प्रिउ बोलहु पिउ आचरहु तासु जि उवएसेण ॥४७॥

**शब्दार्थ**—(सिर-कमलेण) तुम मस्तककमल से; (भत्ति) भक्तिपूर्वक; (गुरु-वय अँम्वँलइं) गुरु के चरणकमलों को; (निचु) नित्य; (छिवहु) स्पर्श करो—प्रणाम करो; (तासु) उन गुरुओं के; (जि) जो उपदेश हैं उनके अनुसार; (प्रिउ बोलहु) सबको प्रिय लगे ऐसा बोलो; तथा; (पिउ आचरहु) सबको प्रिय लगे ऐसा आचरण करो।

**टिप्पण**—सुद्धि-गर। सुधें। सभला। जीविदु। कथिदु। गुरु वय। "अनादौ स्वरादसंयुक्तानां क-ख-त-थ-प-फां ग-घ-द-ध-ब-भा" [३९६] ॥ "अनादाविति किम्। अकयत्थ। सु अत्थ। भत्ति। प्रायोधिकारात् क्वचिन्न। पफुल्लिअ। अँम्वँलइ कमलेण। मोनुनासिको वो वा।" [३९७]

प्रिउ। पिउ। "वाधो रो लुक्" [३९८]

वाया-संपय व्रास जिँम्वँ धरहिं जि संपइ-लुद्ध।

ते गुरु परिहरि विवइ-गर, आवइ-डरिआ मुद्ध ॥४८॥

**शब्दार्थ**—(जि) जो; (संपइ-लुद्ध) सम्पत्ति-धनादि में, (लुद्ध) लुब्ध = आसक्त है; (वाया-सपयँ) वचनसम्पदा—वाक्-छटा में, (व्रास जिँम्वँ धरहि) व्यास की तरह है, (आवइ) जन्म-मृत्यु आदि आपत्ति से; (डरिआ) डरे हुए, (मुद्ध) हे मुग्ध ! (विवइ-गर) विपत्ति को उत्पन्न करने वाले ऐसे; (ते) उन; (गुरु) गुरु को, (परिहरि) छोड़ दो; उनका त्याग कर दो।

जेम्वँइ तेम्वँइ करुणकरि, जिम्वँ तिम्वँ आचरि धम्मु।

जिहवि हु तिहवि हु पसमु धरि, जिध तिध तोडहि कम्मु ॥४९॥

**शब्दार्थ**—(जेम्वँइ तेम्वँइ) जैसे-तैसे भी जीवों पर; (करुणकरि) करुणा—दया करो; (जिम्वँ तिम्वँ) जिस तरह भी हो; (धम्मु आचरि) धर्म का आचरण करो; (जिहवि हु तिहवि हु) जैसे भी हो; (पसमु धरि) प्रशम को धारण करो; (जिध-तिध तोडहि कम्मु) जैसे भी हो कर्म को तोड़ो—नाश करो।

किम्वँ जम्मणु केम्वँ मरणु किह भवु किम निव्वाणु।

एहउ सव्व परिजाणियइ जसु जिण-वयण पमाणु ॥५०॥

**शब्दार्थ**—(किम्वँ जम्मणु) किस प्रकार से जन्म होता है; (किम्वँव मरणु) किस तरह से मृत्यु होती है; (किह भवु) चातुर्गति रूप संसार कैसा है ? (किध निव्वाणु) निर्वाण क्या है ? (एहउ तेण परिआणियइ) यह उसके द्वारा ही जाना जाता है; (जसु) जिसने; (जिण-वयण) जिन-वचन; (पम्वाणु) को प्रमाणभूत माना है।

**टिप्पण**—जेम्वँइ। तेम्वँइ। जिम्वँ। तिम्वँ। जिह। तिह। जिध। तिध। किम्वँ। केम्वँय। किह। किध। कथं-तथा-यथां थादेरेमेमेहेधा डितः। [४०१]

जेहउ केहउ होइ तरु तेहउ फल-परिणामु।
कइसउ जइसउ तइसउवि मन करि मिच्छा-धम्मु ॥५१॥

**शब्दार्थ**—(जेहउ केहउ होइ तरु) जैसा वृक्ष होता है; उसका (तेहउ फल-परिणामु) वैसा ही फल-परिणाम होता है। उसी तरह, (कइसउ जइसउ तइसउ वि) जैसा-कैसा भी धर्म करोगे उसका फल भी वैसा ही मिलेगा। अर्थात् मिथ्याधर्म का आचरण करने से उसका फल चतुर्गति रूप परिभ्रमण मिलता है अतः (मन करि मिच्छा-धम्मु) मिथ्याधर्म का आचरण मत करो।

**टिप्पण**—एहउ। जेहउ। केहउ। तेहउ। "यादृक्तादृक्कीदृगी दृशां दादेर्डेहः। [४०२]

अइसउ भणमि समत्तु करि थक्का जेत्थुवि तेत्थु।
जत्तुवि तत्तुवि रइ करसु सुह-गर परइ तहेत्थु ॥५२॥

**शब्दार्थ**—(अ सउ भणमि) मैं ऐसा कह रहा हूं कि; (जेत्थु वि तेत्थु) जहाँ कहीं भी; (थक्का) तुम रहो किन्तु; (समत्तु करि) सम्यक्त्व को धारण करो, (जत्तु वि तत्तु वि) इस जन्म में या पर जन्म में; (परइ तहेत्थु) जहाँ कहीं भी स्थित रहो; (सुहकर रइ करसु) पुण्य को उत्पन्न करने वाली शुभ-कर रति-प्रेम को करो; अर्थात् जहाँ कही भी रहो तीर्थंकर आदि से प्रेम करो, भक्ति करो।

**टिप्पण**—कइसउ। जइसउ। तइसउ। अइसउ। "अतां डइसः" [४०३] जेत्थु। तेत्थु। जत्तु। तत्तु। "यत्र-तत्रयोस्त्रस्य डिदेत्थवत्तु" [४०४] ॥ एत्थु। "एत्थु कुत्रात्रे" [४०५] केत्थु इति प्राक्पुरेष्युदाहृतम् आस्ते ॥

जाम्वँ न इन्दिय वसि ठवइ ताम्वँ न जिणइ कसाय ।
जाउँ कसायहं न किउ खउ ताउँ न कम्म-विघाय ॥५३॥

**शब्दार्थ**—(जाम्वँ न इन्दिय वसि ठवइ) जब तक इन्द्रियों को वश में नहीं करता (ताम्वँ) तब तक व्यक्ति (न जिणइ कसाय) कषाय को नहीं जीतता और (जाउं कसायहं न किउ खउ) जब तक कषाय क्षय नहीं होते (ताउँ न कम्म-विघाय) तब तक कर्मों का नाश नहीं होता।

ताम्वँहिँ कम्मइँ दुद्धरइँ जाम्वँहिँ तवु नवि होइ; ।
जेवडु फलु तविँ साहि अइ तेवडु मुणइ न कोइ ॥५४॥

**शब्दार्थ**—(जाम्वँहिँ) जब तक (तवु नवि होइ) तप नही होता (ताम्वँहिँ) तब तक ही (कम्मइँ दुद्धरइँ) कर्म दुर्धर—दुर्जेय रहते हैं; (जेवडु फलु तवि साहि अइ) जितना तप का फल कहा गया है (तेवडु मुणइ न कोइ) उतना कोई भी नहीं जानता अर्थात् तप का इतना बड़ा फल है कि उसे केवलज्ञानी के सिवा अन्य कोई नही जान सकता।

**टिप्पण**—जाम्वं। ताम्वँ। जाउँ। ताउ। ताम्वँहिं। जाम्वँहिं। यावत्तावतोर्वादेर्म उँ महिं।" (४०६)

जेत्तुलु मोक्खे सोक्खडा तेत्तुलु केत्थुवि णाइं; ।
एत्तुलु केत्तुलु देवहँवि अवरुप्परहु सुहाइं ॥५५॥

**शब्दार्थ**—(जेत्तुलु) जितना (सोक्खडा) सुख (मोक्खे) मोक्ष में है; (तेत्तुलु) उतना (केत्थुवि णाइ;) कहीं पर भी नहीं है। (देवहँवि) देव और देवियों को; (अवरुप्परहु सुहाइं) परस्पर मिलन से जो उन्हें सुख होता है वह, (एत्तुलु केत्तुलु) इतना कितना ? अर्थात् देव सुख तो अल्पकालीन ही रहता है और मोक्ष सुख शाश्वत होता है।

**टिप्पण**—जेवडु। तेवडु। "वा यत्तदोतोर्डेवडः" (४०७) पक्षे जेत्तुलु। तेत्तुलु॥ अवरुप्परहु। "परस्परस्यादिरः" (४०९)

तसु केवडउ विवेगु भणि, जसु मणि एवडु ठावु ।
न करावउं न करउं कमवि सुघे अच्छउं नीराउ ॥५६॥

**शब्दार्थ**—जो (न करावउं न करउं कमवि) करना, कराना और अनुमोदना से किसी को पाप की आज्ञा नहीं देता; (सुघे अच्छउं नीराउ) तथा 'नीराग होकर सुखपूर्वक रहूँ'; (जसु मणि एवड ठावु) ऐसा जिसके मन

में आग्रह रहा हो; (तसु केवडउ विवेगु भणि), ऐसे पुरुष में कितना विवेक है अर्थात् उसके विवेक की कहीं भी तुलना नही हो सकती।

**टिप्पण**—एत्तुलु । केत्तुलु । केवडउ । एवडु।" वेदं-किमोयदिः (४०६) ॥

अक्खहुं तसु नमि गुरु-जणहों तव-तेएँहिँ दुसहस्सु ।
बहुहुँ वि मिच्छा-दंसणहं जो मउ दलइ अवस्सु ॥५७॥

**शब्दार्थ**—(बहुहुं वि मिच्छा-दंसणहं) बहुत से मिथ्यादर्शन के; (जो मउ दलइ अवस्सु) अभिमान को जो अवश्य दूर करते हैं ऐसे; (तव-तेएँहिँ दुसहस्सु) तप-तेज से दुस्सह, (गुरु-जणहों तसु) उन गुरुजनों को; (नमि) नमस्कार कर; (अक्खहुं) ऐसा हम तुझे कहते हैं।

**टिप्पण**—सुधें। जणहों। "कादिस्थैदोतोरुच्चार लाघवम्।" (४१०)

अच्छउँ। अक्खहुं। तेएहिँ । बहुहुँ । दंसणहँ। पदान्ते उँ-हुं-हिं-हं-काराणाम्। (४११)॥

बम्भु अणन्नाइसु चरइ जों अणवराइस-चित्तु ।
प्राइव प्राइव तहिं जि भवि सो निव्वाणु पवित्तु ॥५८॥

**शब्दार्थ**—(अणन्नाइसु) अनन्यसम—राग-द्वेष से रहित, (अणवराइस-चित्तु) सबसे निराला—अद्वितीय जिसका चित्त है ऐसा, (जों) जो आत्मा; (बम्भु चरइ) लोकोत्तर ब्रह्मचर्य—शील का आचरण करता है वह, (प्राइव) प्रायः करके (प्राइव) प्रायः, (तहिं जि भवि); उसी भव में; (सो) वह; (निव्वाणु पवित्तु) पवित्र निर्वाण को प्राप्त करता है।

**टिप्पण**—बम्भु। "म्हो म्भो वा" (४१२)

अणन्नाइसु। अणवराइस। "अन्यादृशोन्नाइसावराइसौ" (४१३)

प्राइम्व भवि सुहु दुल्लहउँ पग्गिम्व जण सुह-लुद्ध ।
तं संतोसामएंण विणु प्राउ प्रमग्गहिँ मुद्ध ॥५९॥

**शब्दार्थ**—(प्राइम्व) प्रायः करके (भवि) संसार में; (सुहु दुल्लहउँ) सुख दुर्लभ है; (पग्गिम्व जण सुह-लुद्ध) और प्रायः करके लोग सुख में लुब्ध हैं, (तं) उस सुख को; (संतोसामएँण विणु) सन्तोषामृत के बिना; (प्राउ) प्रायः (मुद्ध) मुग्ध-अविवेकी जीव उस सुख को; (प्रमग्गहिँ) खोज करते हैं।

**टिप्पण**—प्राइव । प्राइम्व । पग्गिम्व । प्राउ । "प्रायस प्राउ-प्राइव-प्राइम्व- पग्गिम्वाः ।" (४१४)

रयण-त्तउ फुडु अणुसरहु अन्नह मुत्ति कहंति ।
भण्डइ लब्भहिँ पउर धण, अनु किं नहउ पडन्ति ॥६०॥

**शब्दार्थ**—(रयण-त्तउ) रत्न-त्रय—ज्ञान-दर्शन-चारित्र रूप रत्नत्रय का; (फुडु) स्पष्ट रूप से; (अणुसरहु) अनुसरण करो; (अन्नह मुत्ति कहंति) अन्यथा उनके बिना तुम्हें मुक्ति कैसे मिलेगी ? (भण्डइ लब्भहिं पउर धण) भाण्ड—किराणा से ही प्रचुर धन की प्राप्ति होती है; (अनु किं नहउ पडन्ति अन्यथा—अर्थात् किराणा न हो तो क्या धन आकाश से गिरेगा ?

**टिप्पण**—अन्नह । अनु । "वाऽन्यथोनुः ॥ (४१५)

कउ वढ भमि अइ भव-गहणि मुक्ख कहन्तिहु होइ ।
एँहु जाणेवउं जइ मणसि तो जिण-आगम जोइ ॥६१॥

**शब्दार्थ**—(कउ भमि अइ) किस कर्म से; (भव-गहणि) जीव संसार रूपी गहन वन में भटकता है और; (मुक्ख) मोक्ष, (कहन्तिहु होइ) कहाँ से प्राप्त होता है, (एँहु जाणेवउँ वढ जइ मणसि) यदि मन में यह जानने की इच्छा हो; (तो) तो; (जिण आगम जोइ) जिन भगवान के आगम—शास्त्र को देख ।

**टिप्पण**—कउ । कहन्ति हु । " कुतसः कउ कहन्तिहु" (४१६)
तो । "ततस्तदोस्तो." (४१७)

चचल संपय ध्रुवु मरणु सव्वु वि एम्व भणेइ ।
मिलिवि समाणु महामुणिहिं पर संजमु न करेइ ॥६२॥

**शब्दार्थ**—(चञ्चल संपय) सम्पत्ति चंचल है; (ध्रुवु मरणु) मरण निश्चित है; (सव्वु वि एम्व भणेइ) ऐसा तो सभी कहते हैं; (पर) किन्तु; (महामुणिहि मिलि वि समाणु) महामुनियों के संग में रहकर (संजमु न करेइ) संयम का कोई पालन नहीं करता ।

म करि मणाउ वि मणु विवसु मं करि दुक्कय-कम्मु ।
वायारम्भु वि मा करहि जइ किर इच्छसि सम्मु ॥६३॥

**शब्दार्थ**—तू (मणाउ वि) थोड़ा भी (मणु) मन को (विवसु म करि) विवश मत कर; अर्थात् विषयाधीन मत कर; (मं करि दुक्कय-कम्मु) और दुष्कृत—खराब कर्म भी मत कर; तथा (जइ किर इच्छसि सम्मु) यदि तू मुक्ति का सुख चाहता है तो; (वायारम्भु वि मा करहि) वाणी का आरम्भ (वाणी से भी हिंसा) मत कर।

टिप्पण—ध्रुवु । एम्व । समाणु । पर । मणाउ । मं । "एवं-पर-समं-ध्रुवं-मा-मनाक एम्व-पर-समाणु-ध्रुवु-मं-मणाउ" (४१८) प्रायोग्रहणात् म मा।

तित्थि वि अच्छउ अहव वणि अहवइ निअ-गेहे वि ।
दिवेंदिवें करइ जु जीव-दय सो सिज्झइ सव्वो वि ॥६४॥

**शब्दार्थ**—यदि तू (तित्थि वि अच्छउ) तीर्थ स्थान में रहता है (अहव) अथवा (वणि अहवइ) वन में रहता है, या (निअ) अपने (गेहेवि) घर में; परन्तु (दिवें दिवें करइ जु जीव-दय) प्रतिदिन जो जीव दया करते हैं (सो सिज्झइ सव्वो वि) वे सब सिद्ध होते हैं।

तवें सहुँ संजमु नाहिँ जसु एम्वइ गँम्वइ जु दीह ।
पच्छइ-तावु न जो करइ तासु फुसिज्जइ लीह ॥६५॥

**शब्दार्थ**—(जसु तवें सहु संजमु नाहिँ) जिसका तप के साथ संयम नहीं; (एम्वइ गँम्वइ जु दीह) इसी तरह जो संयम के बिना अपना दिवस व्यर्थ खोता है; (पच्छइ-तावु न जो करइ) और न अपने पापों का पश्चात्ताप ही करता है; (तासु फुसिज्जइ लीह) ऐसे व्यक्ति की रेखा साधुत्व से मिट जाती है; अर्थात् उसकी गणना साधु में नहीं होती।

टिप्पण—किर । अहवइ । दिवें दिवें । सहुं । नाहि । "किलाथवा दिवा-सहऽनहेः किरा हवइ-दिवे-सहुं-नाहिं ।" (४१९) प्रायोधिकारात् अहव ।

सिज्झउ सो नरु एम्वहिँ जि एत्तहि माणुस-जम्मि ।
जो पडिकूलिवि कुव करइ पच्चल्लिउ गय-धम्मि ॥६६॥

**शब्दार्थ**—किन्तु (पच्चल्लिउ) प्रत्युत उल्टा; (गय-धम्मि) धर्मरहित, पुण्यरहित; (पडिकूलिवि) प्रतिकूल—वैरी पर भी; (कुव करइ) कृपा करता है; (सो) वह; (नरु) व्यक्ति; (जि एत्तहि माणुस-जम्मि) इसी मनुष्य-भव में ही; (एम्वहिँ) इसी समय में; (सिज्झउ) सिद्धि को प्राप्त करता है।

टिप्पण—एम्वइ। पच्छइ। एम्वहिं। जि। एत्तहि। पच्चलिउ। "पश्चादेवमेवैवेदानीं प्रत्युतेतसः पच्छइ-एम्वइ-जि-एम्वहिं-पच्चलिउ-एत्तहे" (४२०)॥

जइ संसारहों विच्चि ठिउ वुन्नउ वुत्तु सों एहु।
पवण- वहिल्लउं अप्पणउ मणु वढ सुथिरु करेहु ॥६७॥

शब्दार्थ—(जइ) यदि (संसारहों) संसार के (विच्चि ठिउ) मार्ग के बीच रहा हुआ प्राणी जन्मादि दुःखों से (वुन्नउ) उद्विग्न हुआ हो तो (सो एहु वुत्तु) उसे मैं यह कहता हूँ कि (वढ) हे मूर्ख! (पवण-वहिल्लउं) पवन की तरह चंचल; (अप्पणउ मणु) अपने मन को; (सुथिरु करेहुं) स्थिर कर॥

टिप्पण—विच्चि। वुन्नउ। वुत्तु। "विषण्णोक्त- वर्त्मनो वुन्न-वुत्त-विच्चं" (४२१) वहिल्लउं अप्पणउ। वढ। "शीघ्रादीनां वहिल्लादयः (४२२)

निअम-विहूणा रत्तिहि दि खाहिं जि कसरक्केहिं।
हुहुरु पडन्ति ति पावें-द्रहि भमडहिं भव-लक्खेहिं ॥६८॥

शब्दार्थ—(निअम-विहूणा) नियम-रहित; (रतिहिं वि) जो रात में भी; (कसरक्केहिं) कसर-कसर शब्द करते हुए; (खाहिं) खाते हैं; (ति) वे; (पावें-द्रहि) पाप रूपी तालाब में; (हुहुरु) अहरकर—हुहुरु शब्द करते हुए, (पडन्ति) पड़ते हैं; और (भव-लक्खेहिं भमडहिं) लाखों भव में परिभ्रमण करते हैं।

तव-परिपालणि जसु मणु वि मक्कड-घुग्घिउ देइ।
आहर-जाहर भव-गहणि सो घइं न हुं प्राम्वेइ ॥६९॥

शब्दार्थ—(जसु मणु) जिसका मन (तव-परिपालणि) तप करने में (मक्कड-घुग्घिउ देइ) मर्कट-बन्दर जैसी चेष्टा करता है अर्थात् तप करने में जो सदैव उत्सुक रहता है; (सो) वह पुरुष; (भव-गहणि) भवारण्य में; (आहर-जाहर न हु प्राम्वेइ) गमनागमन को नहीं करता—भव भ्रमण नहीं करता, यहाँ (घइं) शब्द पादपूर्ति में आया है।

टिप्पण—हुहुरु। घुग्घिउ। "हुहुरु-घुग्घादयः शब्दचेष्टानुकरणयोः" (४२३) आदि ग्रहणात् आहर। जाहर॥

घइं। "घइमादयोऽनर्थकाः" (४२४)

सग्गहो केहिँ करि जीव-दय दमु करि मोक्खहो रेसि ।
कहि कसु रेसि तुहुँ अवर कम्मारम्भ करेसि ॥७०॥

**शब्दार्थ**—(सग्गहो केहिँ करि जीव-दय) स्वर्ग के लिए तू जीव दया कर; (दमु करि मोक्खहो रेसि) मोक्ष के लिए दम—इन्द्रियों का दमन कर; तथा (तुहुं) तू; (कहिँ कसु रेसि अवर कम्मारम्भ करेसि) अन्य कर्मारम्भ जीवहिंसा आदिपा प को किसके लिए करता है ;

कसु तेहिं परिग्गहु अलिउ कासु तणेण कहेसु ।
जसु विणु पुणु अवसें न सिवु अवस तमिक्कसि लेसु ॥७१॥

**शब्दार्थ**—(कसु तेहिं परिग्गहु) परिग्रह किसके लिए है ? (अलिउ कासु तणेण) और झूठ भी किसके लिए बोल रहा है ? (कहेसु) यह कह; (जसु विणु) जिसके बिना; (पुणु अवसें न सिवु) अवश्य मुक्ति मिलती ही नहीं, उस मुक्ति की साधना को, (अवस तमिक्कसि लेसु) एक बार भी ग्रहण करेगा तो अवश्य मुक्ति को प्राप्त करेगा ।

**टिप्पण**—केहिं । रेसि । रेसिं । तेहिं । तणेण । "तादर्थ्ये केहिं तेहिं-रेसि-रेसिं-तणेणाः" (४२५) इति तादर्थ्ये पञ्च निपाताः ।

विणु । पुणु । "पुनर्विनः स्वार्थे डुः" (४२६)
अवसें । अवस । "अवश्यमो डें-डौ" (४२७)
एक्कसि । "एकशसो डिः" (४२८)

काय-कुडुल्ली निरु अथिर जीवियडउ चलु एहु ।
ए जाणिवि भव-दोसडा असुहउ भावु चएहु ॥७२॥

**शब्दार्थ**—(काय-कुडुल्ली) काया रूपी कुटिया, (निरु) नितान्त; (अथिर) अस्थिर है; (जीवियडउ चलु एहु) यह जीवन भी चंचल है; (ए जाणिवि-भव-दोसडा) इस प्रकार संसार के दोष जानकर, (असुहउ भावु चएहु) तू अशुभ भावों का त्याग कर ।

**टिप्पण**—कुडुल्ली । जीवियडउ । दोसडा । "अ-डडा डुल्लाः स्वार्थिक-कलुक्च (४२९) ॥

ते धन्ना कन्नुल्लडा हिअउल्ला ति कयत्थ ।
जे खणि-खणि वि नवुल्लडअ घुण्टहिं धरहिं सुअत्थ ॥७३॥

**शब्दार्थ**—(जे) जो; (कन्नुल्लडा) कान; (खणि-खणि वि) प्रतिक्षण; (वि-) पादपूरणे; (नवुल्लडअ) नये-नये; (सुअत्थ) शास्त्रों के सुअर्थों को; (घुण्टहिं) घोंट घोटकर पान करते हैं; (हिअउल्ला ति धरहिं) हृदय में धारण करते हैं। वे कान; (धन्ना) धन्य हैं, वे हृदय (कयत्थ) कृतार्थ हैं।

**टिप्पण**—कन्नुल्लडा। हिअउल्ला। नवुल्लडअ। "योगजा श्चैषाम्" (४३०) इति अडडडुल्लानां योगभेदेभ्यो ये स्युस्ते डडअ इत्यादयः स्वार्थे भवन्ति ॥

पइठी कन्नि जिणागमहो वत्तडिआ वि हु जासु।
अम्हारउ तुम्हारउँ वि एहु ममत्तु न तासु ॥७४॥

**शब्दार्थ**—(पइठी कन्नि जिणागमहो) जिसके कान में जिनागम की; (वत्तडिआ वि हु जासु) एक भी बात प्रवेश कर गई उनको; (अम्हारउँ) यह हमारा है यह, (तुम्हारउँ) तुम्हारा है, (एहु) ऐसा, (ममत्तु) ममत्व (न तासु) नहीं रहता।

**टिप्पण**—पइठो "स्त्रियाँ तदन्ताड्डीः" (४३१) इति प्राक्तन सूत्र-द्वयोक्त प्रत्ययान्ते भ्यो डीः ॥

वत्तडिआ। "आन्तान्ताड्डाः" (४३२) इति डाः। "अस्येदे" (४३३) इति अस्य इः।

अम्हारउं। तुम्हारउं। "युष्मदादेरीयस्य डारः" (४३४)

जीवु जित्तुलु जिअइ जिय-लोइ जइ तित्तुलु दमु करइ।
गणइ विहवु एत्तुलु न केत्तुलु तो इत्तहे नाणु लहि जाइ।
लोइ तेत्तहि निरुत्तउ ॥७५॥

**शब्दार्थ**—(जीवु जित्तुलु जिअइ) जीव जितने काल तक (जीय-लोइ) जीवलोक में, (जिअइ) जीता है; (जइ) यदि; (तित्तुलु दमु करइ) उतने काल तक इन्द्रियों का दमन करता है; और (एत्तुलु-केत्तुलु) यह इतना है यह कितना है; ऐसा (विहुउ न गणइ) वैभव-धन की गणना नहीं करता है; (तो) तो (इत्तहे नाणु लहि) यहाँ ज्ञान को प्राप्त करके; (तेत्तहि) वहाँ; (लोइ) सिद्ध लोक में; (निरुत्तउ) अवश्य ही; (जाइ) जाता है अर्थात् निर्वाण को प्राप्त करता है।

टिप्पण— जित्तुलु । तेत्तुलु । एत्तुलु । केत्तुलु । "अतोर्डेत्तुलः" (४३५) एत्तहे । तेत्तहे । "त्रस्य डेत्तहे" (४३६)

भल्लत्तणु जइ महसि, भल्लप्पणु पसमेण ।
जइ करिएव्वउं पसमु, विजउ तो करव्वउं करणहं ;
जइ अ करेवा करण-विजउ, तो मणु निच्चलु धरहु ।
निच्चलु मणु पुणु धरहु करिउ जउ राग-दोसहं ;
तह विजउ करहि रागाइ अहं अविचलु सामाइउं करिवि;
अविचलु सामाइउं करहि निम्ममत्तु निम्मलु करवि ।।७६।।

शब्दार्थ—(जइ भल्लत्तणु महसि) यदि तू भद्रता—भलाई चाहता है (भल्लप्पणु पसमेण) तो वह प्रशम से ही प्राप्त हो सकती है; (जइ करिएव्वउं पसमु) यदि प्रशम को चाहता है (विजउ तो करव्वउ करणहं) तो इन्द्रियो पर विजय प्राप्त करना चाहिए। (जइ अ करेवाकरण विजउ) और इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करना है तो (तो मणु निच्चलु धरहु) तो मन को निश्चल करना होगा और (करिउ जउ राग-दोसहं) राग-द्वेष को जीतकर ही (निच्चलु-मणु पुणु धरहु) मन को निश्चल किया जा सकता है, (अविचलु सामाइउं करि वि) अविचल-स्थिर सामायिक करके ही (तह विजउ करहि रागाइ-अहं) राग-द्वेष को जीता जा सकता है; और (अविचलु सामाइउं करहि) अविचल सामायिक करके ही (निम्ममत्तु निम्मलु करि वि) तू निर्मल निर्ममत्व बन।

टिप्पण—भल्लप्पणु। "त्व-तलोः प्पणः" (४३७) प्रायोधिकारात् भल्लत्तणु ॥

करिएव्वउं । करेव्वउं । करेवा । "तव्यस्य इएव्वउं एव्वउं-एवाः" (४३८)

लहि । करिउ । करिवि । करवि ।।" क्त्व इ-इउ-इवि अवयः (४३९)

अन्तु करेप्पि निरानिउ कोहहों ।
अन्तु करेप्पिणु सव्वह माणहों ।
अन्तु करेविणु माया-जालहों ।
अन्तु करेवि नियत्तसु लोहहों ।।७७।।

शब्दार्थ—(नरानिउ) निश्चित रूप से (कोहहों अन्तु करेप्पि) क्रोध का विनाश करके; (सव्वह माणहों अन्तु करेप्पिणु) सर्व मान का अन्त करके;

(माया-जालहों अन्तु करेविणु) माया-जाल का अन्त करके (अन्तु करेवि लोहहों) तथा लोभ का अन्त करके (नियत्तसु) तू निर्वृत्त हो।

टिप्पण—करेप्पि। करेप्पिणु। करेविणु। करेवि। "एप्प्येप्पिण्वे व्येविणवः" (४४०)

जइ चएवं मणसि संसारु सिव-सुक्ख भुञ्जण तुरिउ।
तो किर सङ्गु मुञ्चणहिं करि मणु।
तह सुह गुरु सेवणहं निम्ममत्तु अइ-दढु करेविणु ॥७८॥

शब्दार्थ—(जइ चएवं मणसि संसारु) यदि तू संसार के त्याग की अभिलाषा रखता हो; और (सिव-सुक्ख भुञ्जन तुरिउ) शिवसुख का अनुभव करने के लिए उत्सुक हो (तो किर सङ्गु मुञ्चणहिं) तो पुत्रादि के संग को छोड़ने के लिए; (तह सुह गुरु सेवणहं) तथा शुभ-गुरु की सेवा करने के लिए (निम्ममत्तु करेविणु) तथा निर्ममत्व को प्राप्त करने के लिए (अइ-दढु मणु करि) मन को अति दृढ रख।

चित्तु करेवि अणाउलउं वयणु करेप्पि अचप्पलउ।
कम्मु करेप्पिणु निम्मलउं झाणु पजुञ्जसु निच्चलउं ॥७९॥

शब्दार्थ—(चित्तु करेवि अणाउलउं) चित्त को अनाकुल करने के लिए; (वयणु करेप्पि अचप्पलउं) वचन को सत्य करने के लिए; (कम्मु करेप्पिणु निम्मलउं) तथा काया से निर्मल प्रवृत्ति करने के लिए (झाणु पजुञ्जसु निच्चलउं) तू निश्चल ध्यान का प्रयोग कर।

टिप्पण—चएवं। भुञ्जण। मुञ्चणहिं। सेवणहं। करेविणु। करेवि। करेप्पि। करेप्पिणु। 'तुम एव मणाणहमणहिं च"। (४४१) चकाराद् एप्पि-एप्पिणु। एवि। एविणवः।

जमुण गमेप्पि गमेप्पिणु जन्हवि
गम्प्पि सरस्सइ गम्पिणु नर्मद;
लोअ अजाणउ जं जलि बुड्डइ
नं पसु किं नीरइं सिव-सर्मद ॥८०॥

शब्दार्थ—(जमुण गमेप्पि) जमुना में जाकर (गमेप्पिणु जन्हवि) गंगा

में जाकर (गम्प्पि सरस्सइ) सरस्वती में जाकर; (गम्प्पिणु नर्मद) नर्मदा में जाकर (लोउ अजाणउ) अज्ञानी लोग (नं पसु) पशु की तरह (जं जलि बुड्डइ) पानी में डुबकी लगाते हैं; (किं नीरइं सिव-सर्मद) तो क्या पानी शिव-सुख देने वाला है ? अर्थात् पानी में डुबकी लगाने मात्र से व्यक्ति को मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है ? अर्थात् नहीं।

**टिप्पण**—गमेप्पि। गमेप्पिणु। गम्प्पि। गम्प्पिणु। "गमेरेप्पिण्वेप्योरेलुंग्वा" (४४२)

अजाणउ। "तृणोणअः" (४४३) तृन्प्रत्ययस्य अणअः।

नाइ निवेसिउ नउ लिहिउ नावइ टङ्कुक्किाण्णु।
जणि पडिबिम्बिउ जणु सहजु करि जिणु मणि ओइण्णु ॥८१॥

**शब्दार्थ**—(नाइ निवेसिउ) स्थापित किये हुए की तरह; (नउ लिहिउ) लिखित-चित्रित की तरह; (नावइटङ्कुक्किण्णु) प्रस्तर में उत्कीर्ण की तरह; (जणि पडिबिम्बिउ) दर्पणादि में प्रतिबिम्बित की तरह; (जणु सहजु) सहज स्वभाव की तरह; (करि जिणु मणि ओइण्णु) जिन-भगवान को मन में अंकित करो।

**टिप्पण**—नं। नाइ। नउ। नावइ। जणि। जणु। "इवार्थे नं-नउ-नाइ-नावइ-जणि-जणवः" (४४४)

लिङ्गु अतन्तउं जइ नो कृवा।
लहइ कृवालू निव्वुदि नृवा ॥८२॥

**शब्दार्थ**—(नृवा) हे राजन् ! (जइ नो कृवा) यदि प्राणियों पर दया नही है तो, (लिङ्गु अतन्त्रउं) उसका, वेश धारण करना अतन्त्र अप्रधान है (लहइ कृवालू निव्वुदि) दयालु व्यक्ति ही मुक्ति को प्राप्त करता है।

इअ सव्व-भास-विनिमय-परिहिं।
परमतत्तु सव्वु वि कहि वि।
निअ कण्ठ-माल ठवि नृव-उरसि।
गइअ देवि मङ्गलु भणिवि ॥८३॥

**शब्दार्थ**—(इय सव्व भास) इस तरह प्राकृतादि सर्वभाषाओं का; (विनिमय) विनिमययुक्त; (परिहिँ) गीत वाली और गीतों द्वारा; (सव्वु वि परमतत्तु कहि वि) समस्त परमतत्व को कहकर; (निअ-कण्ठमाल ठवि नृव उरसि) अपने गले की माला को राजा के वक्षस्थल पर स्थापित कर— अर्थात् गले में माला पहना कर देवी श्रुतदेवी 'मंगलकारी जिन वचन का अनुसरण कर, सदा आनन्द को प्राप्त कर' इत्यादि मंगलकारी आशीर्वाद दे अपने भुवन को चली गई।

**टिप्पण**—इह अपभ्रंशोदाहरणेषु क्वापि पूर्वलिङ्ग व्यभिचारो दर्शितोस्ति अतस्तत्सिद्ध्यर्थम् अत्र 'लिङ्गम् अतंत्रम्' (४४५) इति लक्षणं वचोभङ्ग्यन्तरेण उक्तम्।

निव्वुदि। "शौरसेनीवत्" (४४६) इत्यनेन अपभ्रंशे शौरसेनीवत् कार्यम्। अतः "तो दो अनादौ शौरसेन्याम्" (४·२६०) इत्यादिना तस्य दः एवं अन्यदपि ऊह्यम्॥

प्राकृतादिभाषाकार्याणाम् अन्योन्यं तेषु तेषु प्रागुदाहरणेषु विनिमयो दर्शित.। स च न सूत्रं विना सिध्यति। अत. विनिमयेतिपदेन पर्यायान्तरेण "व्यत्ययश्च" (४४७) इति सूत्रं विनिमयार्थम् उक्तं।

उरसि। "शेषं संस्कृतवत् सिद्धम्" (४४८) शेषम् यद् अत्र प्राकृतादि भाषासु अष्टमाध्याये नोक्तं तत् सप्ताध्यायी निबद्ध सस्कृतवदेव सिद्धम्। अतः यथा उरस् शब्दस्य ङ्याम् उरे उरम्मि भवतः तथा क्वचिद् एतदपीति। एवं अन्योदाहरणेष्वपि रूपविशेषो ज्ञेयः।

इति शुभम्

इत्याचार्य श्री हेमचन्द्रविरचित श्री कुमारपालचरितप्राकृत द्व्याश्रय-महाकाव्यवृत्तौ—

॥ अष्टमः सर्गः समाप्तः ॥

## श्री वर्धमान जैन ज्ञानपीठ (तिरपाल) द्वारा प्रकाशित साहित्य-सूची

सत्-साहित्य समाज का पथ-दर्शक है, मस्तिष्क एवं मन के लिए अच्छी खुराक/टॉनिक है। जिस समाज में सत्-साहित्य पठन-पाठन की प्रवृत्ति होती है, उस समाज की मानसिकता सुसंस्कृत/परिष्कृत तथा प्रबुद्ध होती है। सामाजिक जागृति में सत्साहित्य का बहुत बड़ा योगदान है।

**श्री वर्धमान जैन ज्ञानपीठ** ने सत्साहित्य के सर्जन, प्रोत्साहन, प्रकाशन और प्रसारण में महत्वपूर्ण योगदान देने का संकल्प किया है। साहित्य को सर्वसुलभ बनाने के लिए अनेक उदार अर्थ सहयोगियों का साहित्यिक अनुरागपूर्ण अनुदान प्राप्त हुआ है। आशा है, भविष्य में भी इसी प्रकार सहयोग का सम्बल मिलता रहेगा।

श्री वर्धमान जैन ज्ञानपीठ अभी बाल्यकाल मे है फिर भी उसके कार्यकर्ताओं की भावना/तड़पन समाज के लिए कुछ करने की है। श्री वर्धमान निर्मल पुस्तकालय एवं वाचनालय सुरम्य पिछड़े पहाड़ी अंचल में ज्ञानदीपक प्रदान कर लोगों को सुसस्कारी बनाने के लिए स्तुत्य प्रयास कर रहा है। उसकी पुस्तके अलमारी की शोभा न बनकर जनता का कण्ठहार बन रही हैं।

भगवान महावीर की वाणी जन-जन के मन तक गाँव-गाँव घर-घर में पहुंचे, लोग उसे समझे। अमृत सुखद होते हुए भी प्रचार के अभाव मे कुम्भ मे बन्द रहकर घुटता रहता है। अत. यह ज्ञान-दान का नारा विश्व के कौने-कौने में पहूंचे, यह उसका नारा है। इस भावना से स्वल्प काल में ज्ञानपीठ ने जो कार्य किया है, वह एक कीर्तिमान है।

निर्मल साहित्य माला के अन्तर्गत प्रकाशित—

१. आगम युग की कहानियाँ भाग १ (कथा)
२. आगम युग की कहानियाँ भाग २ (कथा)
३. आगम युग की कहानियाँ भाग ३ (कथा)
४. आगम युग की कहानियाँ भाग ४ (कथा)
५. आगम युग की कथाओ भाग १ (गुजराती)

६. आगम युग की कथाओ भाग २ (गुजराती)
७. प्रेरणा के प्रकाश स्तम्भ (अप्राप्य)
८. लो कहानी सुनो (कथा)
९. प्रेरणा की अमिट रेखायें (संस्मरण)
१०. लो कथा कह दूँ (कहानी)
११. जीवन तेरे रूप अनेक (उपन्यास)
१२. नटवो नाचे झूम के (उपन्यास)
१३. अनुभूति के शब्द शिल्प (सुभाषित-चिन्तन वचन)
१४. बिखरे पुष्प (अप्राप्य) सुभाषित)
१५ विचार 'सूत्र (सुभाषित)
१६. निरयावलिका सूत्र (हिन्दी भाषा टीका विवेचन सहित) (आगम)
१७ श्री जैन दिवाकर तत्व ज्ञान की दिव्य किरणें (उपदेश, तत्वज्ञान)
१८ आगम स्वाध्याय मणिमाला (आगम)
१९ बैठे ठाले (सूक्ति संचय)
२०. जब होत सबेरा (उपन्यास)
२१ नारी की शक्ति (उपन्यास)
२२. शूल और फूल (उपन्यास)
२३ स्वार्थ के नजरिये (कहानी)
२४ गीत धारा (कविता)
२५ गीत-सरोज (कविता)
२६. गीत लता (कविता)
२७ प्रतिक्रमण सूत्र (श्रावक) (आगम)
२८ प्रातः स्मरण (स्वाध्याय स्तोत्र संग्रह)
२९ चक्रव्यूह (उपन्यास)
३० कुमारपालचरितम् (प्रस्तुत)

इसके अतिरिक्त प्रवचन रत्न माला, आगम युग की कहानियाँ भाग ५ से १२ आदि कई पुस्तके प्रकाशकाधीन हैं। सुविधानुसार शीघ्र ही लोगों की सेवा में प्रस्तुत करना चाहते हैं।

सम्पर्क सूत्र—

**श्री वर्धमान जैन ज्ञानपीठ,**

**पो० तिरपाल जि० उदयपुर (राज०)**

## संशोधन-परिष्कार

**कुमारपाल चरितं सर्ग ३, गाथा ४ का अन्वयार्थ शुद्ध करके इस प्रकार पढ़ें—**

शब्दार्थ—(मुह-गड्ड-निबुड्डेहिं) अनवरत रीति से रति-कार्यों में डूबे हुए पुरुषों द्वारा; (उच्चविअड्डि-ट्ठिएहिं) उच्च वेदी पर बैठे हुए; (व) समान; (पिज्जन्तो) जो वायु पीया जा रहा है—अर्थात् सेवन किया जा रहा है; ऐसा वायु (छड्डिअ-मल-उज्जाणो) जिसने मलय उद्यान की ओर से बहना बन्द कर दिया है; (ऐसा) (मड्डिअ-वेइल्ल-विच्छड्डो) विकसित-पुष्पों के विस्तार को जिसने मर्दन कर दिया है; ऐसा वायु चल रहा था।